

६६४५.१

ॐ

दिगम्बरत्क श्रीरत्न

दिगम्बरसूत्रि



स्वर्गीया विदुषी चम्पावती जैन

लेखक :-

श्रीशुभ्र बाबू कामताप्रसाद जैन,

सम० आर० प० एच०,

बौद्ध सं० 'वीर' अखीमंज (१६६)

प्रथमवार

२०००

कर २६३२ ई०

द्वय

एक रुपया

प्रकाशकः—

पं० मंगलसैन जैन मंत्री,
चम्पावती जैन पुस्तकमाला प्रकाशन विभाग
श्री भा० वि० जैन शास्त्रार्थ संघ,
अभ्यासा छावनी



सुदकः—

शान्तिचन्द्र जैन,
“चेतन्य” मिन्डिङ्ग प्रेस, दिल्ली

विषय-सूची ।

—10—

नं०	विषय	पृष्ठ
(१)	प्रकाशकोष शब्दरत्न	१
(२)	सूक्ति	३
(३)	श्री गुरु	१५
(४)	संज्ञासूची	१६
(५)	मुद्रागुह्य पत्र	२०
(६)	सन्दर्भ	२१
(७)	दिव्यम्बर (मनुष्य की आदर्श स्थिति)	२
(८)	धर्म और दिव्यम्बर	४
(९)	दिव्यम्बरके आदिप्रचारके रूपमन्त्र	२४
(१०)	हिन्दू धर्म और दिव्यम्बर	२१
(११)	इस्लाम और दिव्यम्बर	२७
(१२)	ईसाई मतके और दिव्यम्बर का	४४
(१३)	दिव्यम्बर और मुनि	४७
(१४)	दिव्यम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम	५१
(१५)	इतिहासकालीन काल में दिव्यम्बर मुनि	५५

नं०	विषय	पृष्ठ
(१६)	सम्राज्य महावीर और उनके समकालीन दि० मुनि	८५
(१७)	नन्द साम्राज्य में दिगम्बर मुनि ...	१०१
(१८)	मौर्य सम्राट और दिगम्बर मुनि ...	१०५
(१९)	सिकन्दर महान एवं दिगम्बर मुनि ...	११०
(२०)	सुह्र और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि ...	११५
(२१)	यवन छत्रप आदि राजागण तथा दि० मुनि	११८
(२२)	सम्राट पेल्ल खारवेला आदि कर्नाटक नृप और दि० मुनियों का चत्कर्ष ...	१२१
(२३)	गुप्त साम्राज्य में दिगम्बर मुनि	१२७
(२४)	हर्ष वर्धन तथा हूणनसंग के समय में दि० मुनि	१३३
(२५)	मध्य काशीन हिन्दू राज्य में दिगम्बर मुनि	१३६
(२६)	भारतीय संस्कृत साहित्य में दिगम्बर मुनि	१५४
(२७)	दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन मुनि ...	१६०
(२८)	तानिख साहित्य में दिगम्बर मुनि ...	१६३
(२९)	भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि ...	१०१
(३०)	विदेशों में दिगम्बर मुनियों का विहार ...	२४१
(३१)	मुसलमानी बादशाहत में दिगम्बर मुनि ...	२४६
(३२)	ब्रिटिश शासन काल में दिगम्बर मुनि ...	२६५
(३३)	दिगम्बरत्व और आधुनिक विज्ञान ...	२७८
(३४)	उपसंहार	२८८
(३५)	परिशिष्ट	२९१

प्रकाशकीय दस्तावेज़ ।

जिस समय माँझी जिला सूत में सरकार के मुनियों के स्वतन्त्र विहार में अद्वयन दात्री की एक समय विप० जैन राज्यायसंध की तरफ से विगम्बर मुनियों के विगम्बरत्व के समर्थन के साथ ही साथ बरके स्वकार को अतिसाधारण तक पहुँचाने के हेतु 'विगम्बरत्व और विगम्बरमुनि' नामकी पुस्तक के निर्माण की सूचना दी गई थी । बड़े हर्ष की बात है कि मुझे अब इस बात का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि मैं उस पुस्तक को आपके जन कमलों में उपरिचल कर रहा हूँ । पुस्तक के मुख्यतः लेखक, समाज के अद्वितीय ऐतिहासिक विद्वान, बा० कामताप्रसाद जी के ही असीम परिश्रम का फल है कि जो इस थोड़े से समय में बह प्रथमजल आपकी सेवा में उपस्थित किया जा सका है । लेखक महोदय के इस सहयोग का सब अत्यन्त आभारी है । यहाँ मैं अनास्था के उन महानुभावों को जिन्होंने कि आर्थिक सहायता देकर पुस्तक के प्रकाशन में हमारी सहायता की है अन्यथाद विनं विना नहीं गढ़ सका । सहायताकी रकम शशी महासुभावोर्षी, शुभामायाबलिके साथ ही साथ टाइटिल के दूसरी तरफ प्रकाशित कर दी गई है ।

उन पुस्तकों में से जिनके प्रमाणाँ का उल्लेख कि प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है कुछ तो सूक्त से करीबी गई हैं तथा बाकी की भारत के प्रसिद्ध २ पुस्तकालयों से संग्रहित परी थीं,

यही कारण है कि प्रस्तुत पुस्तक में इसी प्रकार की अन्य पुस्तकों से कहीं अधिक व्यय हुआ है।

सिद्ध प्रस्ताव में संघ ने इस पुस्तक के निर्माण का निश्चय किया था उसही में यह भी निश्चित किया था कि पुस्तक को एक अच्छी संस्था में बिना मूल्य अर्जन विद्वानों और योग्य व्यक्तियों को भेंट किया जाय और इस पर उनको सम्मति प्राप्त हो जाय।

इन्हीं कारणों की वजह से सहायता मिलने पर भी पुस्तक का मूल्य एक रुपया नकसा गया है।

यद्यपि आवश्यकता तो यह था कि यह पुस्तक हर एक भाषा में छपती, ताकि विद्यार्थियों की मान्यता और उसके आदर्श को विभिन्नभाषामातृपियों तक पहुँचाया जा सकता, किन्तु दुःख है कि हमारे पास इतनी शक्ति नहीं थी ताकि हम ऐसा कर सकते। यदि हमारे विचारशील पाठकों ने हमारे इस कार्यको अपनाना और इस कार्यमें हमारा हाथ बटाया तो हमें पूर्ण आशा है कि हम शीघ्र ही इस पुस्तक को, संस्कार को नहीं तो कम से कम भारत की प्रचलित भाषाओं में तो अवश्य, पाठकों के कर कमलों में अर्पण कर सकेंगे।

दिनीत—

मंगलसैन जैन मन्त्री,

जम्पावती पुस्तकालय—प्रकाशनविभाग—

श्री भारतवर्षीय वि० जैन साक्षर्य संघ।

भूमिका ।

संमेलन, संग्रहण, वितरण विज्ञान ।

तमो तादि तातेनये आहन्तादि महान् ।

साधुओं के लिये विद्यमानत्व आवश्यक है या अनिवार्य ? यदि आवश्यक है तो वह क्या भी हो सकता है । ऐसी बहुतसी वस्तुएँ हैं चाहे वे भौतिक व भी हों और आध्यात्मिक से ही सम्बन्ध रखने वाली क्यों न हों, किन्तु यदि उनका अस्तित्व हम दो कोटि में है तो उनका परिवार भी किया जा सकता है; क्योंकि ऐसा करने से मार्ग में कोई रुकावट नहीं आती । किसी एक उपयोगी शब्द को ही ले लीजिये, उसका अस्तित्व साधुओं के लिये आवश्यक है, किन्तु उसका वह सब बदलाव नहीं कि उसके अभाव से उनके साधुत्व में भी बाधा आती है । साधुओं के लिये विद्यमानत्व यदि अनिवार्य है और उसके अभाव से उनके साधुत्व में ही बाधा उपस्थित होती है तो वह कौनसी वस्तु है जो कि मनुष्य के मस्तिष्क को हम परिष्कार तक लेजाती है । यही एक बात है जिसके हल करने की आवश्यकता है और जिसके हल होवाने में उक्त विषय को समस्त अड़चनें दूर हो जाती हैं ।

साधु शब्द का अर्थ साधनोपेक्षा साधु अर्थात् जो सिद्ध करता है वह साधु है ।

साधुशब्द जिस शब्द से (Verb) बना है वह अक-

मैक (Intransitive) है, अतः उसके दस्तों की क्रिया के आशय के हेतु किसी अन्य पदार्थ का अस्तित्व आवश्यक नहीं। ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि यह आत्मा जो कि साधु शब्द का वाच्य है या जो उस अवस्था को पहुँच चुका है जिस किन्ती को सिद्ध करता है वह ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व कि उससे भिन्न नहीं दूसरे शब्दों में इसका कहना चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि साधु के सिद्ध करने योग्य वस्तु उस के मुख ही है। इसही प्रकार मुनि आदिषु शब्द भी इसी वान का समर्थन करते हैं।

ऐसी अवस्था में जब कि यह स्पष्ट होजाता है कि साधु उसे कहते हैं कि जो अपने गुणों को सिद्ध करना हो, वे गुण जो साधु के हैं या जिनको कि साधु सिद्ध करता है ज्ञान से है इस प्रश्न का होना एक स्वाभाविक बात है।

साधु प्रैषा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि एक भिन्न पदार्थ नहीं, किन्तु आत्माको एक अवस्था विशेष का नाम ही साधु है; अतः साधु के गुणों से तात्पर्य वहाँ भात्मिक गुणों से ही है। यदि स्थूल दृष्टि से कहा जाय तो वो कह सकते हैं कि गुण उसे कहते हैं जो कि हमेशा और हर दिखते हैं— तथा जिसके अस्तित्व के हेतु किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता न हो; ऐसी बातें जिनका अस्तित्व कि आत्मा में उपर्युक्त प्रकार से मौजूब है ज्ञान दर्शन सुख और शक्ति आदिक है। आत्मा को ऐसी कोई अवस्था या भ्रम नहीं जहाँ कि ज्ञान

शुष्क का अस्तित्व न हो। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक हिस्से में अब तक कि आत्मा का अस्तित्व उच्च में रहता है ज्ञान का कार्य अनुभव में आता है, वस ही तरह उसकी हर अवस्था में चाहे वह दिनसे सम्बन्ध रखने वाली हो वा रात में, सोती हुई अवस्था की हो वा जगती हुई अवस्था की, ज्ञान अवस्था में ही ज्ञान के अनुभव से किसी भी रोग का स्थान ही नहीं। सब यह जानते हैं मिदित्वावस्था, इसके सम्बन्ध में यान यह है कि मिदित्वावस्था में ज्ञान का अभाव नहीं होता, किन्तु शरीर पर निद्रा का इस प्रकार का प्रभाव पड़ जाता है कि जिससे यह ज्ञान अवस्था की भाँति अनुभव में नहीं आता। निद्रा की अवस्था ठीक इसी भाँति की होती है जैसी कि किङ्गोफ़ार्म के बड़े को। जिस प्रकार किङ्गोफ़ार्म शरीर के अवयवों पर इस प्रकार का प्रभाव करता है कि वे ज्ञान के उपयोग कर जाने में सहायक नहीं हो सकते, उसही प्रकार निद्रा भी। यदि ऐसा होता कि मिदित्वावस्था में ज्ञान न रहता तो निद्रा में मृत्युचिकित्सा का सङ्काश ही कैसे माध्य होता। ज्ञानकारणों ने ऐसे ज्ञान को लम्बित कर दे तथा उसको जो कि स्पष्ट रूप से अनुभव में आता है उपयोगकर। जिस प्रकार कि ज्ञान का अस्तित्व आत्मामें अवाचित है उसही प्रकार उसका कारणों की अपेक्षा का बरखण भी। यदि इसके कारणों की आवश्यकता होती तो उसका सर्वथा निर्वाचित अस्तित्व आत्मा में ब होता, किन्तु अब २ ही

होता, जब २ कि उसके कारण मिलते । किसी वस्तु का अस्तित्व और उसमें न्यूनाधिकता में दो बातें हैं । अतः ज्ञानमें न्यूनाधिकता का होना उसके निर्वाचित अस्तित्व पर कुछ भी प्रभाव नहीं रख सकता । यह ज्ञान जिसका कि आत्मा में निर्वाच्य रूप से अस्तित्व सर्वदा से रहना है एक पूर्ण रूप है । इसका पूर्ण निमीम्बरूप ऐसा है कि जिनमें कि जगत के समस्त पदार्थ प्रतिभाषित होते हैं । यही एक गुण है जिसके पूर्णाङ्ग होने पर आत्मा सर्वप्र होना है ।

किसी गुण का किसी रूप होना और उसका वर्तमान में तद्रूप में दृष्टिगोचर न होना, यह कोई विकट बात नहीं । यह संभव है कि उसके उस रूप में कोई बाधक हो और उसका उस रूप में अनुभव न हो सकता हो । एक नहीं ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जो कि हमारे उपर्युक्त भाव का समर्थन करती हैं । स्वर्ण धातु को ही ले लीजिये उसमें स्वर्णरूप विद्यमान है, किन्तु उसका प्रतिभाषण अन्य शुद्ध स्वर्ण की भाँति नहीं होता, यही अवस्था ज्ञान की है । ज्ञान को सर्वद्वय सिद्ध करने वाली अनेक युक्तियों में से एक अति सरल का समावेश हम यहाँ किये देते हैं । ऐसा गणितज्ञ यह एक अति सरल सिद्धान्त है कि तीन लाइनें हैं तथा पहिली लाइन दूसरी से और दूसरी तीसरी के बराबर है तो उससे यह स्पष्ट है कि पहिली और तीसरी लाइनें बराबर हैं । ठीक इस ही प्रकार कबत में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो कि श्रेय न हो

जाने जो किन्हीं से भी जाने जाने योग्य न हो। यहाँ के पदार्थों को हम जानते हैं या जान सकते हैं तो यूरोप के पदार्थों को नहीं के। इसही प्रकार अन्य म्यानों के पदार्थों का ज्ञान स्थानों के। यहाँ ब्रह्म भूत और भविष्यत पदार्थों के सम्बन्ध में है। यदि वर्तमान के पदार्थों को वर्तमान के जीव जानते हैं ना भूत और भविष्यत के पदार्थों को भूत और भविष्यत के जीव। वे जीव जिन्हें प्रेय में अवगत के सब पदार्थ हैं समगुण हैं। ऐसी अवस्था में एक जीव जगत के सब पदार्थों का ज्ञान करना है, और इस ही का नाम सर्व पदार्थों के ज्ञान की शक्ति का रत्न है।

जिस प्रकार कि आत्मा का एक ज्ञान गुण है और वह पूर्णतया है, उसही प्रकार सुख भी—सुख से उत्पन्न निराकुलता से है। निराकुलता एक आत्मिक गुण है, इसका आदिनों वस्तुओं से कोई सम्बन्ध नहीं। यह सम्भव है कि हमारे अन्तर्गत के आत्मिक आदिनों पदार्थों का अन्तर हम पर पड़ता हो और उसके कारण हम आकुलता महसूस करने लगे तथा उस विषय के मिलने से हमारी वह आकुलता दूर हो जाय। किन्तु हमका यह मनसब कदापि नहीं हो सकता कि वह निराकुलता विषयों से भाई है। आकुलता और निराकुलता, ये जो दो अतिविक्रमस्थायी हैं। यह दूसरी बात है कि पर पदार्थों की मोक्षदगी और गैर मोक्षदगी इनमें निमित्त होती है। किन्तु वास्तव में हैं तो वे आत्मिक

अवस्थायें ही । जहाँ मन की प्रकृति होती है वहाँ विराहजन के हेतु परपदार्थ का अस्तित्व आवश्यक भी नहीं है तथा जब कि विराहजन ही सुख है तो यह नो स्वयं-स्पष्ट होजाता है कि वह आत्मिक निती सम्पत्ति है । इनका शुद्ध रूप भी पूर्णतया है । जबकि ज्ञानादिक आत्मा की निज-सम्पत्ति पूर्वस्वरूप सिद्ध होजाती है नव अनन्त शक्ति सम्पत्ति के हेतु किसी शक्त की आवश्यकता ही नहीं रहती । सर्वशक्तिमान् एव अस्तित्व ही अनन्तशक्ति के सद्भाव का सिद्ध करता है यदि ऐसा न होना तो पूर्णज्ञान का सद्भाव भी असम्भव था । ज्ञान तो क्या कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसका अस्तित्व तदनुकूल कलाधीन में हो ।

जिस प्रकार हमको उपर्युक्त आत्मिक गुणोंके समर्थन में प्रमाण मिलते हैं, वही प्रकार इस बातका अनुभव भी कि ये गुण हमारी आत्मा में पूर्णरूप में नहीं । साथ ही कुछ ऐसी बातें हैं जो कि आत्मिक गुण नहीं जैसे राग द्वेष और मोहादिक । इनके आत्मिक गुण न होने में वही एक दलील पर्याप्त है कि ये सर्वथा स्थायी और निस्कारणक नहीं । ऐसी अवस्थामें जाने एक तरफ तो ज्ञानादिक के आत्मिक गुण और उनके पूर्णरूप में प्रमाणों का मिलना और दूसरी तरफ उनके पूर्णरूप का अनुभव न होना तथा आत्मा में रागादिक के मिलने से एक अद्विष्ट प्रश्न उपस्थित होजाता है कि ऐसा क्यों ?

जिस प्रकार कि राग, द्वेष, मोह, और आकुलतादिक

आत्मिक गुण नहीं, क्योंकि उनका अस्तित्व आत्मा में ही होगा नहीं रहना, उसही प्रकार ये अलान्मिक भी नहीं; क्योंकि इनका आत्मामें ही अनुभव होता है; इसही प्रकार इनमें न्यूनाधिकता भी प्रतीत होती है। इसमें यही परिणाम निकलता है कि भौतान्मिकिजन कोई अन्य ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव में कि आत्मिक गुणों को ही वह अवस्था होजाती है और उसको कर्मावेशों से ही रागादिक में कमीवैशी रहती है। इसही—
रातन्मिक वस्तु को जैन दार्शनिकों ने कर्मसंघा दी है।

पुद्गल (matter) में अनेक शक्तियाँ हैं। उन ही शक्तियोंमें से एक आत्मिक गुणोंको विकारी करने की भी है। श्रापका नशा और क्रियांगकार्म का प्रभाव इसके जीते जागते दृष्टान्त हैं। जिस प्रकार कि पुद्गलकी अन्य शक्तियाँ पुद्गल की हर एक अवस्था में प्रगट नहीं होतीं, उनक प्रकाश के लिये पुद्गल (matter) की धाम २ अवस्थाओं की आवश्यकता है, इसी प्रकार एक शक्ति के विकास के लिये भी। यह पुद्गल दृश्य जो कि एक शक्ति के विकास योग्य होजाता है, जैन दार्शनिकों ने उसका कर्माणुसूचक संघा दी है।

जिस प्रकार आत्मा में रागादिक का अस्तित्व कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से निश्चय करना है, उसही प्रकार कर्मों का अस्तित्व भी उसके कारणों का। वे कारण जो कि पुद्गल के कर्माणुसूचक को कर्मरूप परिवर्तित होने में निमित्त होते हैं, आत्मिक ही होने चाहियें; क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध और

उनका फल आत्मा में ही होते हैं। आत्मिक होने हुए भी वे आत्मा के शुद्ध स्वरूप नहीं, यदि वे ऐसे होने तो वे स्वयं के कारण ही क्यों होते ? हमारे अपने निमित्त में जिसका संबंध आत्मसे होता है वह उसका विद्यार्थी प्रभाव नहीं कर सकता था। इससे स्पष्ट है कि वे आत्मिक भाव जो कि पार्थीय-स्वरूपको कर्मरूप परिणत करने में शक्य विद्यार्थी हैं। इसही प्रकार अनादी २ विचार करने में विद्यार्थीभाव और कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से अनादि प्रमाणित होता है, यह बात अवश्य है कि अनादि में अवलोक के विद्यार्थीभाव और कर्म एक नहीं किन्तु भिन्न २ हैं। किन्तु इसका यह भाव नों कदापि नहीं और न हो ही सकता है कि उनका सम्बन्ध आत्मा से अनादि नहीं !

जिस प्रकार उस लक्षण पर जिसको कि फोनोंप्राक् की पलेट पकती है शब्दों के अनुसार ही फल होता है और अक्षर पढ़ने पर वह उद्गतरूप ही शब्द करता है, उस ही प्रकार आत्मा के विद्यार्थीभावों का कार्माणस्वरूप पर। जिस समय कर्म उद्योग में आता है वह फोनोंप्राक् की पलेट की तरह उद्गतरूप ही प्रभाव आत्मा पर करता है।

जिस प्रकार कि आत्मिक विकारी भावों से पुत्रों का कर्मरूप होना अनिवार्य है, उस ही प्रकार कर्मों के उद्योग से आत्मा का विकारी होना नहीं। इसमें दो कारण हैं—एक तो यह कि कर्म पुत्ररूप हैं, अतः उनकी फलप्रति में कमी भी

की जा सकती है, दुसरी बात यह है कि यदि उस समय भाला प्रयत्न हुई तो उसके प्रसर को अपने ऊपर न भी होने दे। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जीव के राग, द्वेष और मोहादिक ही विकारोद्भास हैं, जिनके कारण कि जीव अनेक इस चक्र में पड़ रहा है और जिसके कारण कि उसको अनेक बातनायें भोगनी पड़ती हैं; और यही मुख्य बात है जिसके कारण यह जीव जीवामिदिक पदार्थों में भी राग और द्वेष करता है।

अब तक जीव में इस प्रकार के परिणाम होते रहेंगे तब तक उसका सम्बन्ध भी कर्मों से अवश्य होता रहेगा। अतः हम जीवों को जो कि इस चक्र से बचाना चाहते हैं यह अनिवार्य है कि वे राग और द्वेषादिक का विमोक्ष प्रभाव करें।

द्विज प्रकार कि यह बात सत्य है कि वल्ल पदार्थों का कमजोर प्रभावों पर प्रभाव पड़ता है, उसही प्रकार यह भी कि पिना दुमरे पदार्थों के राग और द्वेष के उससे जीव का सम्बन्ध रहना भी असंभव है ! अतः राग और द्वेषादिक का अवशेष छोड़े २ या एक इस राग और द्वेषादिक के कारण पर्य उनके कार्य बल पदार्थों के सम्बन्ध त्याग से हो सका है। इसही बातको लेकर अपने मनुष्य प्रदस्थ जीवन में प्रवेश करता है इस बात का पूर्ण ध्यान रखता है। ध्यान ही नहीं बल्कि उसके द्विप सतत प्रयत्न भी करता है कि वह राग

और द्वेष का सम्बन्ध कम करना प्राय और जब उसकी आत्मा प्रबल हो जाती है, वह सांसारिक सब पदार्थ यहाँ तक कि ब्रह्म भी त्याग्य समझना है, और उनका त्याग कर देता है और आत्म ध्यान में रहता हुआ कर्मों के नाश में लग्न हो जाता है ।

ब्रह्म-त्याग से भाव केवल बाह्यी ब्रह्म त्याग से ही नहीं । ऐसे त्याग को तो जैनदर्शन त्याग ही नहीं कहता किन्तु ब्रह्मत्याग के साथ ही साथ उसके विचार तो दूर रहे उनकी भावना का भी दृक्से निकल जाने से है । इसही दृष्टि से तो कहा जाता है कि जो उन के साथ नये मनका होना भी अनि-वार्य है और इसही का नाम विगम्भरत्व है ।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यह जीव अनादिशून्य से रागादिक भावों से कर्मकण्ड और उनके प्रभावसे रागादिक को करता ब्रह्म आरह्य है और रागादिक के बिना ब्रह्म पदार्थों का सम्बन्ध आत्मा से नहीं रहसकता तथा रागादिक से कर्म बन्धन्य होना अनिवार्य है । अतः उन जीवों को जोकि इस सम्बन्ध को तोड़कर सदैव के लिए शुद्ध स्वरूप होना चाहते हैं आवश्यक हो नहीं अपितु अनिवार्य है कि रागा-दिक को बढ़ाते २ यहाँ तक बढ़ावें कि भ्रूतारिक सब पदार्थों का त्याग उनसे होजाय, और ज्ञान, ध्यान और तपमें लीन रहते हुए आत्मिक शक्ति को इतना प्रबल करें कि अमाही दृष्ट्य में आने वाले कर्मों का प्रभाव ही बन पर ना पड़े । ऐसा होनेसे

उनकी आत्माओं में रागादिक का अभाव होगा और इस से अगाही कर्मबन्धका अभाव होगा और जो पहिले बंधा हुआ कर्म है वह भी बन्द होता जायगा । इससे एक समय देना आया कि जब उनकी आत्मारों कर्मके सम्बन्ध से विहाङ्ग मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे ।

जिस प्रकार किसी विरबक साधारण ज्ञानके बिना नद्विषयक बंधीर ज्ञान नहीं हो सकता, मनुष्य में अद्वैतशक्ति के बिना साधे महान् शक्ति नहीं प्राप्त होती, उसी प्रकार क्यूँ न रागादिहान के बिना सूक्ष्मराग का परिहार होना भी सम्भव है । आत्मनिष्कृत परपदार्थों से जिनमें कि बन्ध भी सम्मिश्रित हैं सम्बन्ध गन्धे वासा गग या वह गग जिसके बन्धो-भूत होकर जीव उनमें सम्बन्ध रखता है योगियों को हृदिसे एक सूक्ष्मराग है, तथा यह असंभव है कि बिना गगके भी बन्ध आदिक से सम्बन्ध गन्धे जाय । अतः उन साधुओं के लिए जो कि आत्मिक मुक्तिके आंधी हैं बन्धादिक समस्त परपदार्थों का परित्याग अनिवार्य है ।

साधुओं का यह अनिवार्य दिग्दर्शन जिस प्रकार वैज्ञानिक सत्य है उसही प्रकार व्यावहारिक भी । इतिहास इसका साक्ष्य है । दिग्दर्शन और दिग्दर्शन मुनि नामकी प्रसूत पुस्तक में जिसकी कि यह यूनिवर्सिटी पुस्तक के सुशोभ्य लेखक समाज के प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्वान् डा० कान्ताप्रसाद जी ने इस बातका बड़े ही बख्शीर आधाराँ से समर्थन किया है ।

देखा कोई ऐतिहासिक आधार (जिसका कि सत्तायेन विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में किया है) नहीं जो कि दिगम्बरत्व का समर्थक न हो ।

दिगम्बरत्व के समर्थन में प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन से प्राचीन शास्त्रोंके सहस्रों एवं शिखात्रेण और विदेशी यात्रियों के यात्राविवरणों में से कुछ शब्दों का संग्रह भी बड़ी ही गंभीर आज्ञा के साथ किया गया है। दिगम्बरत्व ऐतद्वा-
स्तिक एवं व्यावहारिक सत्य है, अतएव वह सर्वतंत्रसिद्धांत भी है। इसका दृष्टीकरण भी हमारे सुयोग्य लेखक ने बड़े महत्त्व के साथ किया है। हर एक धर्मकी मान्य पुस्तकों से, चाहे वे मुलजमान धर्मकी हों या ईसाई धर्मकी, अथवा वैदिक धर्म की, इस विषय का समर्थन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। कानून की दृष्टि से भी दिगम्बरत्व अन्वयवहार्य नहीं, इस बात के समर्थन के हेतु भी हमारे सुयोग्य लेखक ने किसी बात की कमी नहीं रखी। अधिक क्या, पुस्तक इन दृष्टिले परिपूर्ण है और इसके लिए श्रीयुक्त बा० कामताप्रसाद जो दार्शनिक धर्मवाद के पात्र हैं।

‘बोलो सत्य पन्थ विमन्य दिगम्बर’

अम्बादा अम्बानी
२६ फरवरी १९३२ ई०

विरचित—
राजेन्द्रकुमार जैन,
न्यायतीर्थ।

मेरे दो शब्द !

विह्वली परमों के दिन थे। "कैमलिभ" पढ़ते हुये मैंने देखा कि श्री शं० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला, दिगम्बर जैन मुनियों के सम्मुख में ऐतिहासिक वार्ता एकत्र करने के लिये प्रयत्नशील है। यह विद्वत्पत्र मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इतिहास से मुझे प्रेम है। मैं तब इस विद्वत्पत्र के फल को देखने की उत्कण्ठा में था कि एक रोज मुझे संघ के महामंत्री मिथ रामोन्मकुमार जी शास्त्री का पत्र मिला। मेरी उत्कण्ठा चिन्ता में पड़ गई। पत्र में श्रीमदतिशेखर दिगम्बर मुनियों के इतिहास विषय की एक सुंदर पुस्तक लिख देने की प्रेरणा थी। उस प्रेरणा को यों ही टाल देने की विमता मला कैसे हांती? तबपर वह प्रेरणा वस्तुतः समयकी आवश्यकता और धर्म की पुकार थी। मुनिधर्म मोक्ष का द्वार है—दिग्-धरत्व उस धर्म की कुञ्जी है। नासमर्थ लोग उस कुञ्जी को खीन खेव के लिये वार करने का उद्योग हों, तो मत्रा एक धर्मधरत्वज्ञ कैसे हुए रहे? बस, सामर्थ्य और बुद्धि का ध्यान न करके बड़े संश्लेष के साथ मैंने संघ का उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस स्वीकृति का ही फल प्रस्तुत पुस्तक है।

पुस्तक क्या है? कैसी है? इन प्रश्नों का उत्तर देना मेरा काम नहीं है। मैं तो मात्र धर्मभाव से प्रेरित होकर 'सत्य' के प्रचार के लिये बसको लिख दिया है। हिन्दू—बुद्ध—जयान—ईसाई—बहुदी—अपनी प्रकृति के लोग इसे बड़े और अपनी बुद्धि की तक (तराजू) पर उसे तौलें और फिर देखें, दिगम्बरत्व प्रमुख समाज की नज्दार्थ के लिये कितनी बहारी और उपयोगी चीज़ है। इस रीति की परख ही नहीं इस

५२. जैसासं०—जैन साहित्य संशोधक, त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजय (पूना)

५३. जैसिधा०—जैनसिद्धान्तभास्कर; सं० श्री पद्म-राज जैन

५४. जैहि०—जैन द्वितैषी; सं० श्री नाथूराम—श्री जगन्नाथशोर जी (बम्बई)

५५. दिजै०—दिगम्बर जैन; सं० श्री मूलचन्द्र किलन-दास कापड़िया (सूरत)

५६. पुरातत्त्व—गुजराती त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजयजी (अहमदाबाद)

५७. दीर—भा० दि० जैन परिपद का मुखपत्र; सं० धा० कामताप्रसाद जैन व पं० शोभाचन्द्र मारिबल्ल (विजनौर)

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथः—

58. ADJB. = 'A Dictionary of Jain Bibliography' by V. S. Tank. (Arrah 1916)

59. AGT. = 'A Guide to Taxilla' by Sir John Marshall (Calcutta, 1918)

60. AI. = 'Ancient India' by J. W. Mc. Crindle (1877 & 1901)

61. AISJ. = 'An Indian Sect of the Jainas' by Prof. Buhler (London, 1903)

संकेताक्षर-सूची ।



नोट—प्रामुक्त पुस्तक को लिखने में जिन छात्रों से सहायता ली गई है, उनका उल्लेख विम्बलिखित संकेताक्षरों में यथास्थान कर दिया गया है । पाठकाण्य संकेताक्षर का भाव इस पर से जान लें । उक्त प्रकार सहायता लेने के लिये इन छात्रों के लेखकों के हम आभारी हैं ।—

हस्तलिखित ग्रन्थ :—

१. भ्रातृकर्मनी १४८ पङ्क्तिनो विचार—शुनि
शैलान्यसामरकृत (श्री दि० जैन मंदिर अहलीगंज)
२. उत्तरपुराण भाषा—कवि सुसागरचन्द्र कृत (श्री
दि० जैन मंदिर मंडार अहलीगंज)
३. पंचकन्याणक पञ्चा पाठ—शुनि श्रीमूषककृत (श्री
दि० जैन मंदिर अहलीगंज)
४. पक्षाभर चरित—कवि विनोदीशालकृत (श्री दि०
जैन मंदिर अहलीगंज)
५. माषत्रिभंगी—जैन मंदिर अहलीगंज (पटा)
६. मैनपुरी जैन गूढका—बड़ा पंचायती मंदिर, मैन-
पुरी में विद्यमान ।
७. यज्ञोपर चरित—कवि पद्मनाभ कायस्थ विरचित
(श्री दि० जैन मंदिर मैनपुरी)

८. श्री विनयसहस्रनाम—मुनि धर्मचन्द्र कृत (श्री दि०
जैन मंदिर अक्षीगंज)

९. श्री पञ्चपुराण भाषा—कवि लुसालचन्द कृत
(श्री दि० जैनमंदिर अक्षीगंज)

१०. श्री यशोधर चरित्—श्री सोमकीर्ति कृत (श्री
दि० जैन मंदिर अक्षीगंज)

संस्कृत-हिन्दी-गुजराती आदि मुद्रित ग्रंथ :-

१. अष्टु०—अष्टपादुष्ट; श्री कुन्दकुम्भाचार्य कृत (श्री
अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला बम्बई)

२. आईन-ए-अकबरी—(फारसी) तबककिशोर प्रेस
लखनऊ (१८६३)

३. आचा०—आचारान्त-सूत्र, श्वेतसुन्दर आचमन-ग्रन्थ,
श्वे० मुनि अमोलक ऋषिके दिवो अनुवाद सहित (हैदराबाद
दक्षिण संस्करण)

४. आरामेय०—आरामेयदिग्दर्शन, ले० महात्मा गाँधी
(बम्बई, १९०३)

५. ईशाद्य०—ईशाद्यद्योत्तरग्रन्थोपनिषद् ed. W. L.
Shaastri-Panikar (3rd. ed. Nirnaya-Sagar Press
1925)

६. वैष०—जैनधर्म, पो० महाशेवाप्पके अर्जुन ग्रन्थ स्य
गुजराती अनुवाद (भावनगर १९०३)

85. NJ. = 'Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C. R. Jain (Delhi 1931)
86. OIL = 'Original Inhabitants of India' by G. Oppert (Madras 1893)
87. Oxford. = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A. Smith (Oxford 1917)
88. PB. = 'Psalms of Brethren' ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913)
89. PS. = 'Panchastikaya-sara (S. B. J., Arrah)' ed. Prof. A. Chakraverty.
90. QJMS. = 'Quarterly Journal of the Mythic Society (Bangalore)'
91. QKM. = 'Questions of King Milinda' by T. W. Rhys Davids (S. B. E., --Vol. XXXV)
92. Rishabh. = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C. R. Jain (Allahabad 1929)
93. SAL. = 'Ancient India' by Prof. S. K. Aiyangar, M. A. (London 1911)
94. SC. = 'Some Contributions of South India to Indian Culture', by Prof. S. K. Aiyangar (1923)
95. SPOIV. = 'Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley.' by R. B. Ramprasad chanda. B. A. (Calcutta 1929)
96. SSIJ. = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof. M. S. Ramaswami Ayyangar M. A. & B. Seshagiri Rao M. A. (Madras 1922)
-

१८. दीप०—दीधनिकाय (बौद्ध ग्रंथ), (Pali Texts Society Series)

१९. देवै०—देवघड़ के जैनमंदिर; ले० श्री विष्णुस्मर-
हास गाणीय ।

२०. मज्झिमसं०—प्राचीन जैन लेखसंग्रह, ले० बा०
कामताप्रसाद जैन (वर्ष १९२६)

२१. पंत०—पञ्चतन्त्र (इण्डियन प्रेस लि० प्रकाश)

२२. फाह्यान—फाह्यान का भारत भ्रमण (इण्डियन-
प्रेस लि० प्रकाश)

२३. षवि०—यनारसी विज्ञान; कविवर यनारसीनाथ
कृत (वर्ष २४३२ बी०)

२४. बंगलैस्या०—वर्ष १९११ प्राप्त के जैनस्मार्क; प्र०
श्रीतल्लप्रसाद कृत (सूत, १९२५)

२५. बंविद्योर्जैस्या०—बंगाल बिहार भोजीसाके जैन-
स्मार्क; प्र० श्रीतल्लप्रसाद जी कृत ।

२६. मद्र०—मद्रवाहुचरित्, श्री जयसहायजी (यना-
रस, २४३७)

२७. यया०—भगवान् पार्श्वनाथ; ले० बा० कामता-
प्रसाद जैन (सूत, २४५०)

२८. यय०—समवाच महावीर, ले० बा० कामताप्रसाद
जैन (सूत, २४५५)

२९. ययु०—सगवान् महावीर और प्र० बुद्ध, ले०
बा० कामताप्रसाद जैन (सूत, २४५३)

३०. ययी०—मट्टारकमीशंस (गुजराती); (सूत,
२४३८)

३१. भा३०—भारतवर्षका इतिहास; प्रो० ईश्वरीप्रसाद
कृत (इंडियन प्रेस)

३२. भाभारा०—भारतके प्राचीन राजवंश; सा० श्री
विश्वेश्वरनाथ टेटकृत भाग १—३ (बम्बई १६२० व १६२५) ।

३३. यत्रै०—मराठी जैनसंस्कृत इतिहास; श्री अर्चत-
लनाथ कृत (पेहलवाँ १६१८ ई०)

३४. यजिक्रय०—मज्झिमनिकाय (बौद्ध ग्रंथ) (Pali
Texts Society Series)

३५. यशानैमा०—मध्यप्रंतीय जैनस्मार्क; प्र० शीतल
प्रसादजी कृत (सूत)

३६. यत्रैस्मा०—मद्रास, मैसूर प्रान्तीय जैनस्मार्क; प्र०
शीतलप्रसाद जी कृत (सूत, २४४४)

३७. यत्ना०—यत्नाचार; श्री धृष्टकेर स्वामी कृत

३८. रभा०—रत्नकररत्नक भावकाचार; सं० श्री
युगलकिशोर कुस्तार (भा० ग्रं० बम्बई, १६८२)

३९. रा६०—राजपूताने का इतिहास; रा० व० बीरो-
रद्वर हीराचन्द शोका (अजमेर १६८२)

४०. खाटी०—खाटीसंहिता; श्री वं० दरपारंसाब द्वारा
संपादित (भा० ग्रं० बम्बई १६८४)

४१. विर०—विद्वद्भारतमाला; श्री नाथूराम प्रेसीडेंट
(बम्बई १६१२ ई०)

४२. विक्रो—विश्वकोप, सं० श्री गणेशाय वदु
(कन्नकला)

४३. वृजेश०—सूक्त जैनग्रन्थार्थ मा० १; से० श्री
बा० विहारीदास जी 'चैतन्य' (धारावाही १६२५ ई०)

४४. वेमै०—वेद पुराणादि ग्रंथों में जैनधर्मका अस्ति-
त्व, श्री मन्वन्तका कृत (द्वितीय १६३०)

४५. सबै०—सनातनजैनधर्म; श्री चम्पतराय कृत

४६. सागार०—सागारधर्मासूत; सं० श्रीलाहारामजी
(सूक्त २४४५)

४७. संभाजैस्या०—संयुक्त प्रान्तीय जैनस्मार्क; श्री
ब्र० श्रीरत्नप्रसाद जी कृत (प्रयाग १६२३)

४८. सप्त०—सुरीश्वर और सप्तार; से० श्रीकृष्णदास
(आषाढ १६८०)

४९. श्रुता०—श्रुतावतार कथा; श्री हर्जनन्दि कृत
(बम्बई २४३४ और सं०)

५०. हुवा०—हुयेनसांग का भारतप्रयाग; श्री डाक्टर-
प्रसाद शर्मा (इन्डियनप्रैस प्रयाग १६२६ ई०)

पत्र-पत्रिकायें :—

५० अ. अनेकान्त—मासिक पत्र, संपादक श्री
सुगन्धकिशोर मुख्तार (दिल्ली)

५१. धैमि०—जैनमित्र, बम्बई मा० दि० जैन समा धा
संवापक (सरत)

५२. नैसासं०—जैन साहित्य मञ्जोषक, वैमर्षिक पत्र; सं० श्री जिनविजय (पूना)

५३. त्रैमिभा०—जैनसिद्धान्तमास्त्र, सं० श्री यदुम-
राज जैन

५४. जैदि०—जैन दिनेपी; सं० श्री नाथूराम—श्री
जुगमकिशोर जी (बम्बई)

५५. दिने०—दिगम्बर जैन; सं० श्री मूलचन्द्र किसन-
दास थापटिया (मुम्बई)

५६. पुरातत्त्व—गुजराती वैमर्षिक पत्र; सं० श्री
विनविजयजी (मद्रासराषट्र)

५७. वीर—भा० दि० जैन पत्रिपद् का मुखपत्र; सं०
भा० कामनाप्रसाद जैन व सं० शंभाकर मारिस्स (बिजौरी)

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथः—

29. AIB = 'A Dictionary of Jain Bibliography' by

V. S. Tank (Arrah 1916)

30. AGT = 'A Guide to Taxila' by Sir John Mar-

shall (Calcutta, 1918)

31. AI = 'Ancient India' by J. W. Mc. Crindle

(1877 & 1901)

32. AISJ = 'An Indian Sect of the Jaines' by Prof.

Bohler (London, 1903)

62. AIT = 'Ancient Indian Tribes' by Dr. B. C. Law
(Lahore, 1928)
63. AR. = 'Asiatic Researches', ed. Sir William Jones,
Vol. III (1799) & Vol. IX (1809)
64. ASM. = 'A Study of the Mahavastu' by Dr. B. C.
Law (Calcutta 1930)
65. Bernier = 'Travels in the Mogul Empire' by Dr.
Francis Bernier (Oxford, 1914)
66. BS. = 'Buddhist Studies' by Dr B. C. Law
(Calcutta 1931)
67. CHL = 'Cambridge History of India', Vol I ed.
Prof. E. J. Rapson-1922
68. DJ. = 'Der Jainismus' (German) by Prof. Dr.
Helmuth Von Glasenapp. Ph. D. Berlin
1925)
69. EB. = 'Encyclopaedia Britannica' 11th. ed.
Vol. XV)
70. EHL = 'Early History of India' 4th. ed) by
Sir Vincent Smith (Oxford. 1924)
71. Elliot = 'History of India as told by its Histori-
ans' by Sir H. M. Elliot & Prof. John
Dowson, Vol. I (1837) & III (London,
1871)

- 74 HARI = History of Aryan Rule in India, by
L. B. Havel.
- 75 HDW = Hindu Dramatic Works by H. H.
Wilson (Calcutta, 1901)
- 76 HD = Historical Grammar, by Dr. B. C. Law
(Calcutta 1921)
- 77 HKL = History of Kaurava Literature by K. P.
Rao (Calcutta 1921)
- 78 IA = Indian Antiquary (Bombay)
- 79 IHQ = Indian Historical Quarterly, ed. Dr. N. S.
Law (Calcutta)
- 80 JBRS = Journal of Bihar & Orissa Research
Society, ed. K. P. Jayaswal M. A. (Patna)
- 81 JG = Jaina Gazette, ed. Mr. C. S. Mahbubani
(Madras)
- 82 JAM = Jains & Other Antiquaries of Mathura
by Sir F. Smith
- 83 JRS = Journal of the Royal Asiatic Society
(London)
- 84 JS = 'Jaina Sūtras' ed. Prof. H. Jacobi (S. R. F.,
XLV)
- 85 KK = 'Key of Knowledge' by Mr. U. B. Jais
(3rd ed. 1929)
- 86 LWB = 'Life & Work of Buddhaghosha' by
Dr. B. C. Law (Calcutta)

85. NJ. = 'Nativity of the Jaina Saints' by Mr. C. R. Jain (Delhi 1931)
86. OII. = 'Original Inhabitants of India' by G. Oppert (Madras 1893)
87. Oxford. = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A. Smith (Oxford 1917)
88. PB. = 'Palms of Brethren' ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913)
89. PS. = 'Panchastikoya-sam (S. B. J., Arrah)' ed. Prof. A. Chakraverty
90. QJMS. = 'Quarterly Journal of the Mythic Society (Bangalore)'
91. QKM. = 'Questions of King Malinda' by T. W. Rhys Davids (S. B. E., --Vol XXXV)
92. Rishabh. = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C. B. Jain (Allahabad 1929)
93. SAI. = 'Ancient India' by Prof S. K. Aiyangar, M. A. (London 1911)
94. SO. = 'Some Contributions of South India to Indian Culture', by Prof. S. K. Aiyangar (1923)
95. SPOIV. = 'Survival of the Prehistoric Civilization of the Indus Valley.' by R. B. Ramprasad Chanda. B. A. (Calcutta 1929)
96. SIJ. = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof. M. S. Ramaswami Ayyangar M. A. & B. Seshagiri Rao M. A. (Madras 1922)
-

शुद्धाशुद्धि-पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	१	यथा ज्ञातरूप	यथाज्ञातरूप
१५	१०	परममागवर्त	परममागवर्त
१७	२	परिग्रजकोपनि-	परिग्रजकोपनि-
२४	४	प्रभृतियोंऽत्यक्त	प्रभृतयोऽत्यक्त
२५	५	ध्यानअपरः	ध्यानतत्परः
२६	३	स्वाहेत्या तेन	स्वाहेत्यामेन
३०	१६	IHO.	IHQ.
३०	२२	JHO.	JHQ.
३५	६	fanatics	fanatics
३५	२०	reospect	respect
५५	६	साय	साथ
५७	५	टाषांङ्ग	टाशमङ्ग
"	२१	टाषा०	टाषा०
"	२२	IHO.	IHQ.
५८	१३	हुप्पञ्जा	हुप्पञ्जा
"	१४	महीक	महीक
५६	१	महीक	महीक
"	१५	मय	मय
६०	१३	तपोरक्त	तपोरक्त

पृष्ठ	पंक्ति	अष्टाद	शुद्ध
६२	१७	दाग्नदावन्था	दाप्रदादःथा
७६	२०	ओ० अल्लोट	प्रो० अल्लोट
७८	१६	वर्द्धमातान्नान्	वर्द्धमानान्नान्
८१	७	निलधर्म	लिनधर्म
८२	१४	पु० ४'	पु० ४
८४	२४	दीक	दीक
८६	८	अ	आं
९०	३०	brought	brought
९२	२३	संपुष्ट०	संयुत०
१०५	२३	०, भा०	जैहि०, मा०
१०६	१६	पादावन्	पादाव्ज
११४	४	अमण	अमण
११६	१८	Kharrela	Kharrela
"	२०	Kanvar	Kanvar
"	२३	CHK	CHI.
१२३	१	वह	
१२७	५	religione	religious
१३०	४	शान्तिकीर्ति	शान्तिकीर्ति
१३६	१६	Cotting	rotting

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३६	२१से२३	दृशा०	दृभा०
१३७	१८से२०	दृशा०	दृभा०
१३८	१३से१६	दृशा०	दृभा०
१४६	११	भेदपाट	भेदपाट
१५२	२३	जैत्रा०	जैत्र०
१५७	५	चरित्"	चरित्" से
१६४	१२	राजघण्ट	राष्ट्र
१६६	७	उमके पास	
१६८	३	कशुभगण	कशुभगण
१७०	२	'मदान्	से 'मदान्
१७१	६	गात्र के	गात्रा व.
१७१	२०-२१	दृशा०	दृभा०
१७६	६	राजमन्त्र	राजमन्त्र
"	७	दिग्दर्शन	दिग्दर्शन
१७७	२०	विहितेन	विहितेन
१८३	५	मगठी पत्र.	पत्र मगठी
-	११	मज्ज०	मज्ज०
-	१४	आचार्य के धर्म	आचार्य के धर्म
१८८	१३	मधुस	मधुस
१६७	१६	जानग	जानग
१६८	१६	दिया	दिया

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०६	२१	A. d.	A. D.
२१८	१४	रचित	पूजित
२१६	१८	इसके	इसमें
२२०	४	बाहुराजा	बाहुराजा
२२२	१३	पांडुसेना	पांडु सेना
२२५	३	तत्पदे	तत्पद्वे
२२४	१९	भोज	भोज
२३५	१४	क-	गमक-
२३८	१	२३८	२३८
"	१७	कुम्भों	कुम्भों
२४०	१३	'बादी'	'बादी' विरुद्ध
२४४	२२	the	to
"	२३	Ar.	AR.
२४५	१	(१४५)	(१४५)
२४६	२१	(०)	(प्र०)
२४७	२२	Maljuzat-i	Maljuzat-i
२४८	२१	असकेश्वरपुर	असकेश्वरपुर
२५१	१	(१५१)	(१५१)
२६६	२१	विनेष	विनेष
"	२२	दि० कैल	मैतपुरी दि० कैल

धन्यवाद ।

इस ट्रैक्ट के छपवाने के लिये निम्न-
लिखित महानुभावों ने सहायता प्रदान की
है जिनको संघ हार्दिक धन्यवाद देता है:—

श्री ममान शम्भाला इधरौ	१२५)
श्री श्री मनोहरी	१०५)
श्री वैजनाथ	५१)
श्री मुस्तानसिद्द	५१)
श्री० सोहनसाह अग्रसेन	५५)
श्री० चोखेबाबू गजासाह	५५)
श्री० बनधारीसाह गहनसाह	२१)
श्री० मोरीमल काशीनाथ	२१)
श्री० मिट्टनसाह अणवीप्रसाद जी	१५)
श्री० धेनुमल पद्मप्रसाद	१५)
श्री० ज्ञानपीठास जी	११)
श्री० राजेन्द्रकुमार	११)
श्री० माधराज रसक	११)
श्री० सुमेरचन्द्र राजासाह	११)
श्री० भगवानदास धारेसाह	१०)
श्री श्री बुन्ना देवी	१०)
श्री० सुमेरचन्द्र पद्मलाल	५)
श्री० कर्दीयासाह मधुमल	५)

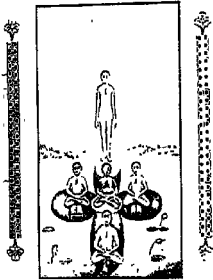
मुंगी मुकुन्दीनाल अन्धाता वृद्ध	५)
सा० रामरिङ्गपाल मुकुन्दीनाल	५)
या० माईदयाल मास्टर वी० डी० बकुल	५)
सा० भिक्कूमल पाल बाले	५)
बा० गैन्दामल बकील मुकुम्फरजगर	४)
सा० हेमराज बाबू रेलबाले	४)
सा० फिरोजीलाल	२)
सा० हरिचन्द दयाचन्द	२)
सा० कुन्दनलाल छोटे लाल	२)
सा० चतुर्धमल दयाचन्द	२)
बा० जयवंती	२)
सा० कुन्दनलाल देवीराम	२)
सा० सुरजसाय हरजानलाल	२)
सा० महावीरप्रसाद गैल फौजदारी	२)
सा० चतुरसैन	२)
सा० गैन्दामल	२)
मुन्गी धर्मदास	२)
सा० कश्कूमल	२)
सा० कश्कूमल	२)
सा० मिट्ठनलाल फेरी बाला	२)
सा० मानचन्द लालचन्द	२)
सा० टेकचन्द	२)

५७६)

विषय—पञ्चराफ

उत्सर्ग

“शमो अरुहंवाण, शमो सिद्धार्ण, शमो आशरिचारण,
शमो खरभ्रचारण, शमो लोप सख माहृण।”



ममो,

भक्तिभावित-हृदय द्वारा प्रस्कृति यह साहित्य-सुपन
आपके पुण्य-पादों में सविनय उत्सर्ग है।

चरणाम्बुन-धक्षरीकः—

अतीतम्,
(पद्य)
१-१-१९२२

ॐ

नमः सिद्धेश्वर !

द्विगम्बरत्व कौर द्विगम्बरत्व कौर

[१]

द्विगम्बरत्व !

(मनुष्य की आदर्श स्थिति)

“मनुष्य मान की आदर्श स्थिति द्विगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा विदोंप है—विचारसूय होता है।”

—म० गांधी ।

“मूर्खता की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें तब तरह के लोग और दुःख में लेते हैं; परन्तु पवित्र आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले अंगल के आशी रोममुक्त रहते हैं और मनुष्य को दुर्गुणों और पापचारों से बचे रहते हैं।”

—रिचर्ड हू नेफ ।

द्विगम्बरत्व प्रकृतिका रूप है। यह प्रकृतिपर दिया हुआ मनुष्यका रूप है। आदम और इष्वा इसी रूपमें रहे थे। विशाखेंदी उनके अम्बर थे—वसुधैवकुटुम्बकम् वनका वही प्रकृतिपर कर्मात्मा था। वह प्रकृतिके अज्ञानमें दुःखभी मीचे

खोते और घालन्दरोहियां कनतेथे । इसलिये कहते हैं कि मनु-
 ष्यकी आदर्श स्थिति दिग्भ्यरहै । तब नहनाही उसके लिये
 अचेष्ट है । इसमें उसके लिये अशिष्टता और असभ्यताकी कोई
 बात नहीं है, क्योंकि दिग्भ्यरत्त्व अथवा नगत्त्व म्भ्यं अशिष्ट
 अथवा असभ्य वस्तु नहीं है । बहता मनुष्य का प्राकृत रूप है ।
 ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नङ्गे गहत हुये कभी न
 लजाये और न वे विकारकं बहुलमें फंसकर अपने सदाचारसे
 हाथ धो बैठे । किन्तु अब उन्होंने दुर्गर-भलाई, पाप पुण्यका
 वर्जित फल आश्रिया, वे अपने प्राकृत दशाको खोये—सर-
 जता उसकी जाती रही । वे संसारके साधारण प्राणी होगये !
 कृत्वेको लीजिये, उसे कभीभी अपने मनत्वके कारण लज्जा
 का अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य
 जोषही उसके मनता पर नाक भी सिकोड़के हैं । अशक्त
 रोगीकी परिचर्या स्त्री धाय करतीहैं—वह रोगी अपने कपड़ों
 की सारसंभाल स्वयं नहीं कर पाता, किन्तु स्त्री धाय रोगी
 की सब सेवा करते हुए जराभी अशिष्टता अथवा लज्जाका
 अनुभव नहीं करती । यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बातको
 स्पष्ट करते हैं कि नमत्त्व वस्तुतः कोई बुरी चीज नहीं है । प्रकृति
 सत्ता कसो किसी क्षणमें बुरी हुईभी है ? तो फिर मनुष्य
 नङ्गेपनसे क्यों शिक्कता है ? क्यों आज लोग नङ्गा रहना
 समाजमर्यादाके लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं ? इन
 प्रश्नोंका एक सीधासा उत्तर है—“मनुष्यका नैतिक पतन वरम

मौमाकां आह पट्टं च बुद्धाह—एतं पापमेतं इतना मना दृष्टाह
 किं वसे मनुष्यकी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व पर बुद्धा ज्ञानो
 है । अपमेवमकां संवाक्यं पापके पट्टेमें कपडोंकी आह लेनाहो
 इसने भेष्ट समझाहै !” किन्तु यह भूतताहै, पदा पापकी गड़
 है—एत गंदगीका ढेरहै । वच, जो जगती समझ—विवेक—
 में काम लेना जानताहै, एत गंदगीको अपना नहीं समझता
 और गंदगीको अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्वमें चिह्न
 समझताहै !

ब्रह्मर्षीका परिधान मनुष्यके लिये लाभदायक नहींहै और
 न एत आशयपकही है । प्रकृतिमें ब्रह्मर्षीमात्रके शरीरकी गठन
 इस प्रकारकी है कि यदि यह प्रकृत वेपमें गटे जो उसका स्वा-
 स्थ्य निर्गम और क्षेष्टहो तथा उसका मदाचारको उत्पन्न रहे ।
 जिन विद्वानोंने उन शरीर आदिकोंको अध्ययनको दृष्टिसे देखा
 है, जो वेगें गटनेहैं, वे हमने परिश्रम पर पहुँचेहैं कि इन प्रकृत
 वेपमें गटने शरीर 'जंगलों' लोगों का अध्ययन गृहमें में यसने
 वाले ब्रह्मर्षीमात्र 'महानों' में जाज दर्ज अस्त्र इत्याहै
 और आचार विधानमें भी ये शरीरानोंस बड़े बड़े हातेहैं । इस
 कारण वे एक ब्रह्म परिधानकी प्रचलना-गुण सम्भवाको
 उच्च कोटि पर पहुँचते स्वीकार नहीं करते । उनका यह
 कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृतिकी वृद्ध सुविमता नहीं

कर सकती । म० गाँधीके निम्न शब्दोंकी इस विषयमें
हृद्य है :—

“वास्तवमें देखा जायतो कुदरतने चर्मके रूपमें मनुष्यको
योग्य पोशाक पहनाई है । नग्न शरीर कुरूप देख पड़ताई, ऐसी
भावना हमारा अन्न भाव है । अन्नम २ सौन्दर्यके चित्रतां नग्न
दृशमें ही देख पड़तेहैं । पोशाकसे साधारण अज्ञानको ढककर हम
मानो कुदरतके दोषोंको दिसला रहेहैं । जैसे जैसे हमारे पास
क्यादा पैसे होते जाते हैं वैसेही वैसे हम सजावट बदाले जाते
हैं । कोई किसी भौति और कोई किसी भौति रुपवान बनना
चाहतेहैं और बनान कर फाचमें मुँह देख प्रसन्न होतेहैं कि ‘बाह
में कैसा खूबसूरतहूँ ?’ बहुत दिनोंके पेसेही शम्पाससे अगर
हमारी दृष्टि खराब न होगई हो तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि

I may say that Rev. J. F. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the travellers..... It is true that wearing of clothes goes with a higher state of the arts and to that extent with civilization; but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank.”

—“Daily News, London” of 18th. April 1913.

.....They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked. †

अर्थात्—वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे.....वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नग्न थे ।

अपॉसल पीटर ने नग्न रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है :—

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or.....any other thing, possess sins, because we ought not to have anything.....To all of us possessions are sins.....The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins".*

अर्थात्—क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीजों को चुन लिया है, यहां तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े लुत्ते हों या दूसरी कोई चीज़, पाप को रखते हुये हैं, क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये । हम सब के लिये परिग्रह पाप है ।

† NJ., P. 6

* Ante Nicene Christian Library, XVII. 240 & NJ., P. 7

की वैसी नहानी नहीं और शुक्राचार्य अपने निकले चले गये। इस घटना की थोड़ी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहाँ आ निकले। उन को देखते ही देवकन्यायें नहाना-शोना भूल गईं। ऋषभ वे जल के बाहर निकलीं और अपने कपड़ों में पड़ने लिये। एक नद्वे युवा को देख कर वे उन्हें स्नानि और लज्जा न आई किन्तु एक वृद्ध शिष्ट-से-दिल्ले 'सज्जन' का देख कर वे लज्जा गईं; मला इस का क्या कारण? वही न कि मंगा युवा अपने मन में भी मंगा था—उसे विचार में नहीं आयेगा था। इस के विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विचार से गड़िन न था। वह अपने शिष्ट वेप (?) में इस विचार को छिपाये रखने में सफल था; किन्तु विगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह निर्बिकारी और सदाचारी था। अतः कबला होगा कि सदाचार की मात्रा मंगे रहनेमें शक्ति है। मंगेपम—दिगम्बरत्व का वह भूपण है। विचारमात्र को जीते विषा हो कोई मंगा रहकर प्रसंखा नहीं पा सकता। विचारो होता विगम्बरत्व के लिये फलक है। न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-नेत्र मिल सकता है। इसी लिये मगबद्ध कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

‘मगो वाक्क/कुक्क एगो संसार सागरे मगद !

मगो न सहर बोदि, मिय भावसज्जिओ सुद ! ! *

माषार्य—'नगा दुःख पाता है, बह संसार सागर में झूमने लगता है, उसे बोधि विधानदृष्टि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि बंगा होते हुए भी वह जिनभावना से दूर है ! इसका मतलब यह है कि जिनभावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है—इष्योगी है । और जिन भावना से मतलब रागद्वेषादि विचार भावों को जोत लेना है । इस प्रकार मया रहना उसी के लिये उपादेय है जो रागद्वेषादि विचार भावों को जोतने में लग गया है—प्रकृति का छोकर प्राकृत वेप में रह रहा है । संसार के पाप पुण्य, कुराह-भलाई का जिसे बान तक नहीं है, वही दिग्गम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है । और चूंकि सर्वनाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिये भारतीय ज्ञापियों ने इसका विधान गृहस्थांगी अरुण्यवस्तु साधुओं के लिये किया है । दिग्गम्बर मुनि ही दिग्गम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं, यद्यपि यह बान ब्रह्म है कि दिग्गम्बरत्व मनुष्यको आवर्ग स्थिति होने के कारण मात्र-समाज के पद्य-अर्थात् श्री भगवान् श्रुतमदेव ने गृहस्थों के लिये भी महीने के पर्वदिवसों में करे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था † और भारतीय गृहस्थ उन के इस उपदेश का पालन एक छोड़े जमाने तक करते रहे थे ।

इस प्रकार उक्त वचनार्थ से यह स्पष्ट है कि दिग्गम्बर-

रत्न मनुष्य की आदर्श स्थिति है—आंगण्य और वदाधार का वह पोषक ही नहीं तमक है। किन्तु आजका संसार रतना पाप-ताप से भुल्लस गया है कि उस पर एक दम दिग्भ्रम-धारि झाला नहीं जा सकता। जिन्हें विद्यान दृष्टि कहीर हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्दिकारी दिग्भ्रम सुनि के वेप में विचरते हुए दिखार्द पड़ते हैं। उन को देखकर लोगों के मस्तरक स्वयं झुक जाते हैं। वे प्रज्ञा-पुञ्ज और तपो वन लोककल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-बुद्ध, ऊँच नीच, पन्ध्र पसो—सब ही प्राणी उन के दिव्यरूप में सुन्न-श्रुति का अनुभव करते हैं। भला-प्रकृति प्यारी क्यों न हो * दिग्भ्रम खाद्य प्रकृति के अनुरूप हैं। उन का किसी से झेप नहीं—वे तो सब के हैं और सब वन के हैं—वे सर्वप्रिय और सदाधार की मूर्ति होते हैं। यदि कोई दिग्भ्रम दोधर भी इस प्रकार जिनभाषना से युक्त नहीं है तो जैनाचार्य ष्हते हैं कि उसका नमनवेप धारण करना निर-र्थक है—परमोद्देश्यसे वह अटक झुझा है—इह लोक और परलोक, दोनों ही उस के नष्ट हैं। † वस, दिग्भ्रमरत्न वहाँ ओभनीप है वहाँ परमोद्देश्य दृष्टि से ओभन्न नहीं किया गया है। तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

‡ "नियन्त्रिया नयस्वुं व तस्य, जे वतपदुं विवज्जासवद."

इसे जिसे नदिय परे मिलीर, दुइको जिसे मिजतुं तय और। १६१।"

—जतराध्ययन सूत्र व्या० २०

* "In vain he adopts nakedness, who errs

[२]

धर्म और दिगम्बरत्व !



"नित्येवैवागिणः उग्रहं पापान्कर्मभेदि ।

गता वि बोधयमायो सेवा य श्रमणाया सत्ये ॥२०॥"

अर्थ—इत्येव—सदाग ही हाथों की योग्यता करने का उग्रह त्रिनेत्र ने दिया है । उग्र वह महा-बल-मार्ग है । इसके अनिश्चित रूप में चलाता है ।

'धम्मा शत्रु सदायो'—धर्म शत्रु का समाप्त है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निश्चय है, उग्रका प्रथम स्वभाव है । इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है । धर्म और दिगम्बरत्व में यहाँ कुछ भेद ही नहीं रहता । सधमुच सदाचार के आचार पर सिद्ध हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिद्ध और कुछ ही भी क्या सत्य है ?

जीवात्मा अपने धर्म को मंचाये हुए है । लौकिक दृष्टि में देखिये, यदि शार्प्यात्मिक से, जीवात्मा भवभ्रमण के चक्र में पड़ कर अपने निज स्वभाव से हाथ धोये बैठा है । लोक में वह नंगा आया है । फिर भी समाप्त-भर्यादा के कृत्रिम भव के

about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his, [He is a loser in both respects in the world.] —Ja, II, P, 108

कारण वह अपने निजहृदय—जगत्त्व—को लुभी २ झोंड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुए भी संसार की माया-भ्रमता में पड़ कर उस स्वात्तुभवानन्द से दञ्चित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की राग-द्वेष ललित परिस्थिति है। भगवद्गोपबर्हि भाषों से प्रेरित होकर वह अपने मन-वचन और क्राय की क्रिया नद्धत् करना है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में नरी हुई पौद्धलिक कर्म-वर्गणायें आकर चिपट जानी हैं और कलका आधरक्य जीवात्मा के ज्ञान वर्जन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। कितने अंशों में ये आधरक्य कर्म या इवादा होते हैं कतने ही धंशों में आत्मा के न्याभाविक गुणों का कम या इवादा प्रकाम प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने निज-स्वभाव को पाता चाहुना है तो उसे इन सब ही कर्म संबंधी आधरक्यों को नष्ट कर देना होगा; जिनका नष्ट कर देना संभव है।

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म—स्वभाव—के धातक बसके पौद्धलिक सम्बन्ध हैं। जीवात्मा को आत्म-स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये इस धर-सम्बन्ध को रिच्छुक्त छोड़ देना होगा। पार्थिव संसर्ग से उसे अछूत हो जाना होगा। लोक और आत्मा—दोनों ही क्षेत्रों में वह एक मात्र अपनी बहृदय-प्राप्ति के लिये सतत बसोगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाम

नाश को वह न रख सकेगा । यथा जातक्य में रह कर वह अपने विभावमई रागादि कषाय शत्रुओं को नष्ट करने पर तुल्य पड़ेगा । धान और ध्यान शुभ्र लेकर वह कर्म-सम्पत्तियों को चिह्नरूप नष्ट कर देगा । और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा । किन्तु यदि वह सत्य मार्ग से डरता भी विचलित हुआ और बाज शगवन पणिग्रहके मोह में आ पड़ा तो उसका नहीं निकलना यहाँ ! इसीकिये कहा गया है कि—

वाङ्मणोरिमत्र पणिग्रहद्वयं च होतुह्यथा ।

मुंजेद पाणिने दिग्दर्शनं इत्यर्थम् ११७८

भावार्थः—बाज के अग्रभाग—बाँके बराबर ती पणिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है । वह आहार के लिये भी कोई बग़तन नहीं रखता—हाथ ही उनके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ एक स्थान पर और एक रूके ही पेसा ग्रहण करता है जो प्राणु है—स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो !

अब मत्त कहिये, अब भोजन से भी कोई ममता न रखती गई—दूधरे शब्दों में जब शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तब अन्ध परिग्रह विगम्यर साधु कैसे रक्षेया ! उन्हें रक्षना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे ही प्रकृत रूप आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थों से सर्वथा भिन्न है ! इस अवस्था में वह बस्त्रों का परिधान भी कैसे रख सकेगा ! वज्र तो उसके मुक्ति-वार्ध में ऊर्जा

यन जायेंगे। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन में मुक्त न हो पायगा। इसीलिये तत्परोक्षों ने साधुओं के लिये कहा है कि—

एह वायु सपत्तिकी लिप्यनुमित न गिहति इनेसु ।

अइ वेइ सप्यवदुय तत्ये पुम जाइ किणोदसु ॥५८॥

अर्थात्—सुखि यथावातरूप ई—जैसा जन्मना शालक मन्त्ररूप होता है वैसा मन्त्ररूप दिव्यमय मुद्रा का धारक है—वह अपने हाथ में तिसके तुप मात्रभी कुछ अदृश्य नहीं करता। यदि वह कुछ भी प्रहस्य करे तो वह निगोद में जाता है।

परिग्रहघानी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा पा लेना असंभव है। एक लंगोटीरत् के परिग्रह के मोह से लालु किम प्रभार पतित हो सका है, वह धर्मात्मा सत्जनो की जानी सुनी बात है। प्रकृति तो कर्मियता की सर्वाहुति चाहती है—तब ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे भीन्दुर्य को विकसित करती है। अइ पैगुम्बर वा तीर्थङ्कर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है—समाज सर्वादा के अस्मदिमुज बन्धन में पड़ा हुआ है—तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नहीं पा सका! इसका एक कारण है। यह वह कि धर्म एक विज्ञान है। उसके नियम प्रकृति के अनुकूल अदस और निश्चल है। उनमें कहीं किसी ज़माने में भी किसी कारण से रंचमाल अन्तर नहीं पड़ सका है। धर्म विकल्प करता है कि अस्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सका है

उस वद पर-स्पर्श, बुद्धि के संयोग से मुक्त हो जाये। अब इस निष्ठा के होने लुके भी पार्थिव बल-परिधान को रक्षकर कोई वद चाहे कि मुझे आत्मन्वातांश्य मिल जाय तो उसकी वद चाहे आकाश-दुसुम को पाने की आशा से बढकर न कही जायगी। इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि—

१ वि सिद्धद क्य ताग जिग्राताय ग्रावि होइ लिप्यथा।

कयो निषीमाययो सेमा स्मरणया उखे ॥१३॥

भावार्थ—जिन ज्ञासत में कदा कथा है कि बलधारी मनुष्य मुक्ति कहीं पा सका है, जो नोचैकर दोष तो वद भी गृहस्थरथा में मुक्ति को नहीं पाते हैं—मुनि दीक्षा लेकर अब दिगम्बर बंध धारण करते हैं तब ही मांस पाते हैं। अतः कर्मत्व ही मोक्षमार्ग है—याही सब सिंग उन्मार्ग हैं।

धर्म के इस वैमानिक नियम के कथल संसार के प्रायः सब ही प्रमुख अवर्तक रहे हैं, जैसे कि आगे के पृष्ठों में ब्यक्त किया गया है और उमका इस नियम—दिगम्बरत्व—का मान्यता देना ठीक भी है, क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी होव नहीं गइता—वद धर्मस्वभाव रद ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है।

[३]

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक श्रुपभदेव !



'नृनाम्भोत्त मातंरुद्धं धर्मांशुत पयोपशम् ।

योषि कल्पतरुं नौमि देवदेवंशुपशवम् ।—तान्तर्यं

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सका। यह तो एक सनातन नियम है, किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में श्री श्रुपभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जगत्के निकट दिगम्बरत्व केषज्ञ नग्नता माध का घोटक नहीं है। पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह राणादि विभाव भाव को जीतने वाला यथा ज्ञात रूप है और नग्नता के इस रूप का संस्कार कभी न कसो किसी महापुरुष द्वारा ज़रूर हुआ होगा। जैनशास्त्र कहते हैं कि इस कल्पकाल में धर्म के आदि प्रचारक श्री श्रुपभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था !

यह श्रुपभदेव अर्चितम् मनु नामितान्तर्य के सुपुत्र थे और वह एक अल्पवय माचोम ज्ञान में हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में जैनों के इन पहले शीर्ष-

दून को ही विष्णु का साउवां दत्तनाम माना है और वहाँ को
इन्हें विष्णुस्वरूप का आदि प्रचारक बताया है। वेनाचार्य
बन्दे 'योगिब्रह्मरुद्र' कहकर स्वरूप करते हैं।

हिन्दुओं के धीमद्भागधन में इहाँ श्रृंगारेश्वर का बखान
है और उनमें उन्हें परमहंस—दिव्यमन्त्र—धर्मका प्रतिपादक
माना है; यथा—

'परमभुजाःस्वात्मज्ञान् न्ययमभुशिष्टावपि लोकाभुजा-
सुनाथं महाभुजाश्च परमभुदृद् समवानूपगोत्रेषु उपभुमशीतो-
नाभुपन्नकर्मणाम् महाभुनोनां भक्तिज्ञान वैराग्यलक्षणम्
पारब्रह्मस्यसमपुत्रिण्युत्पपाद्युः स्थाननय्युक्तयेष्टं परमभाववतं
मग्नवज्रनपरायणत्वं गमनं धर्मवीर्यलक्षणाशक्तिपिण्य स्वयं भवत
यत्वेत्तरितं जगत्प्रियाव परिग्रह उन्नतस इव गमनपरिधानः
प्रवीर्यकर्मण्य आत्मन्यारो पित्त हवन्नेयां ब्रह्मवर्तित प्रवचान
॥२६॥' भागवतस्य ५ अ० ५

अर्थात्—“इस भाँति महाभुजेश्वरी और सबके सुदृढ़
श्रृंगार गगवान् हैं, यद्यपि उनके पुत्र सब भाँति से बहुत थे,
परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने के हेतु, प्रशान्त और कर्मसंयत
में रहित महाभुनिर्वाको अतिशाल और वैराग्यके दिवाने वाले
परमहंस आश्रम की शिक्षा देने के हेतु, अपने ही पुत्रों में
ज्येष्ठ परम भागवत, हरि मन्त्रों के संवक मरण को पृथ्वी
पालन के हेतु, गत्यामिषेक कर मन्त्रब्रह्म ही संसार को छोड़
दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केशु जोर
उन्नत की भाँति मग्न हो, केवल शरीर को संग में, ब्रह्मवर्त
में सत्यास धारण कर सब निकले।”

इस उद्धरण के मोटे टाइटल के अक्षरों से श्रुतमद्येव का
परमार्थ—दिगम्बर-धर्म-शिक्षक—होना स्पष्ट है ।

तथा इसी ग्रन्थ के स्कंध २ अध्याय ७ पृ० ७६ में एन्हें
“दिगम्बर और जैनमत का चत्ताने वाक्ता” उक्तके टीकाकार
ने लिखा है अ सूक्त श्लोक में उनके दिगम्बरत्व को श्रुतियों
द्वारा बर्दनीय बताया है —

नासोरसा धृपम आसद्दु वेव सूनु—
पौषैव चर समदृग् कञ्च षोगधर्षाम् ।
यत् पारमार्थस्यसृष्यः पदमामन्ति
स्वस्य प्रयातकरणा परिमुक्त संगः ॥१०॥

उपर दिग्वुक्तों के प्रसिद्ध योगशास्त्र ‘हठयोगमतीपिका’
में सबसे पहले मंगलाचरण के तौर पर आदिनाथ श्रुतमद्येव
की स्तुति की गई है और वह इस प्रकार हैः—

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
वेनांपदिष्ठा हठयोगविद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नतराज्य योग—
मापोद्गुमिच्छोरधिरोदिधीव ॥१॥

अर्थात्—“श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने
वह हठयोग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जोकि बहुत
ऊँचे राजयोग पर आरोहण करने के द्विये नहीनों के समान
है।”

* मिलेन्द्रमत धर्मय, पक्ष याग पृ० १०

‡ “मलेन्द्र” वर्ष १ पृ० २३८

दृष्टव्यं वा अष्टमसु नव दिग्भ्यः । परमहंस मार्ग
 हीमा अष्टम योगनाम है । इसी में 'गारुड परिव्रजकापनि
 षट्' में 'योगो परमहंसाख्यः साक्षात्साक्षात्समाधनम्' इस
 वाक्य द्वारा परमहंस योगी का साक्षात् योग का एक मात्र
 साधन बननाया है । मन्मथन "गर्जन शान्ति मे अर्थां कर्तौ
 श्री अष्टमसु—शक्तिशाय—वा गर्जन शान्ति है, उनको सम
 र्मसाधनवा प्रथमक बननाया है ।"

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण
 शक्ति विद्वानों का जीवन में गेयो किड हो गई कि उन्होंने
 अपने धर्मशास्त्रों में शैवों के नन्द्यन्त्र वाक्यों का वा तो
 साथ ही दिया मथना उनका अर्थ ही बदल दिया । उदा-
 हारण के रूप में उपरोक्त 'दृष्टव्यं प्रदोषिका' के अर्थ में
 शक्ति आदिनाथ का उल्लेख होकर 'शिव' (महादेवजी)
 बनाते हैं, किन्तु वास्तव में इसका अर्थ अष्टमसु ही होना
 चाहिये, क्योंकि प्राचीन 'अमरकोषादि' किसी भी वाक्य अर्थ
 में महादेव का नाम 'आदिनाथ' नहीं मिलना । इसके अति

< अष्टमसु, सर्ग १ पृ० ५३६

रु भी संक्षेप से इस उल्लेखित किन्तु शायो है अस्तमों का
 वा अमरकोष के अर्थ हूये कर्णों में नहीं मथना, किन्तु कर्ण कर्णों
 का वाचीय अर्थों में ११११ वाक्य ५५५५ है, यह वाक्य ५० मन्मथनाथ की
 मथ अर्थ 'दिग्गुणानि कर्णों में जीवन का अस्तम' मथ ५५५५
 (पृ० ५६-५७) में मथ कर्ण है । अर्थ अमरकोषादि मथ. ५. मन्मथी
 अर्थ में भी किन्तु 'मन्मथ' के अर्थ में कर्ण वाक्य की थी । (हिमा
 J. G. XIV 90)

रिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध में यह धर्मों के और वर्जन शास्त्रों में मिलता है— किसी अन्य प्राचीन मत प्रवर्तक के सम्बन्ध में नहीं—कि वह स्वयं द्विगम्बर रहे थे और उन्होंने विगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परमहंसोपनिषद्' के विष्णु शास्त्र इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहंस धर्म के स्थापक कोई कैनाचार्य थे :-

“तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः पार्श्वं कमण्डलुं कटिसूत्रं
 कौपीनं च वस्त्रवर्षस्पृशिसुहृदाय ज्ञातकूपधर्मचरे तत्प्रधान
 मन्विच्छेद् यथाज्ञातकूपधरो निर्वृद्धो निष्परिग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे
 सध्यस् संपन्नः शुद्धः सानसः प्राणसंधारवाधं यद्योक्तकाले
 पंच गृहेषु कर्पात्रेणायाधिनार्हात् माहर्त्नं नाभाकामे समां
 मूत्रा निर्ममः शुक्लाध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठाः शुभाशुभ-
 कर्मनिर्मुक्तनपरः परमहंसः पूर्णानन्दैकबोधस्तत्त्रह्योऽहमन्मीति
 प्रह्वप्रवचनस्मरन् भ्रमरं शीघ्रकपायेन शरीरजन्मसुखस्य
 वेदत्प्राप्तं करोति स कृतकृत्यो भवतोत्सुपनिषद् ॥”

अर्थात्—“ऐसा जानकर ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और संगोष्ठी इन सब चीजों को बायीं में विचरजन कर अल्पसमय के देव को धारण कर—अर्थात् बिलकुल मग्न होकर—विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथाज्ञातकूपधारी (मग्न द्विगम्बर), निर्वृद्ध, निष्परिग्रह,

तत्त्वज्ञानमार्ग में भले प्रकार मन्गल, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त एषोक नमय या अधिक से अधिक पांच वनों में विहार कर कर-पात्र में अयाचित भोजन लेने आला तथा ज्ञानाज्ञान में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने आला, शुक्ल-ध्यान परायण, आत्यामनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में सत्पर परमहंस योगी पूर्णानन्द का प्रकृतिय अद्भुत कर्म वाचा बह प्रह में हैं, ऐसे प्रह प्रणव का स्मरण करता हुआ ज्ञानकीटक स्वाथ से—[कौदा भ्रमरों का ध्यान करता हुआ स्वयं ज्ञान बन जाता है, हम नीति से] तीनों शरीरों का छोड़कर वेदव्याना करना है, वह कृष्ण्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है ।^१

एन अवनरण का प्राशः सांग हो धर्षण दिग्म्वर जैन मुनिधों की चर्चा के अस्तुमा है; किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण 'शुक्लध्यानपरायण' है, जो जैनधर्म की एक खास चीज़ है । 'जैन के सिवाय और किसी भी योग प्रणय में 'शुक्लध्यान' का प्रतिपादन नहीं मिलता । परंतु जिन अधि ने श्री ध्यान के शुक्लध्यान आदि भेद नहीं बनलाये । इसलिये योग ग्रंथों में आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ से भिन्न और थोड़े नहीं जान पड़ते ।^२

'अथर्ववेद के आवालोपनिषद्' (सूत्र ६) में परमहंस

१ अनेकान्त, पृ. १ पृष्ठ २४१

संवासी का एक विशेषण 'निर्ग्रन्थ' भी दिया है और यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही एक प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। बौद्धों के प्राचीनशास्त्र इस बातका खुला समर्थन करते हैं। जैनधर्म के दो मान्य शब्द का उपनिषद्कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधु मार्ग का मूल श्रोत जैनधर्म है। श्री उषा हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि श्रुपभदेव, जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्क ने ही परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री श्रुपभदेव वेद—उपनिषद् ग्रंथों के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदों में स्वयं वनका और २६ वें भवनार वामन का उल्लेख मिलता है X। अतः निस्सन्देह भ० श्रुपभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग की आदि में स्वयं दिगम्बर वेद धारण करके + सर्वज्ञता प्राप्त की थी और सर्वज्ञ होकर दिगम्बरधर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्वके आदि प्रचारक हैं।

* "यथा नागरूपवने निर्ग्रन्थो निष्प्रविष्टः" इत्यादि—विशु० पृ० ८

+ मैकोपी प्रकृत विद्वानो ने इस बात को सिद्ध कर दिया है (Jr.

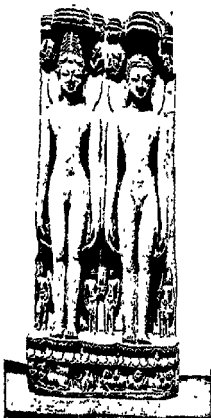
Pt. II. Intro.) X 'यथा श्री प्रस्तावना तथा 'सजै' देखी।

+ "विष्णुपुराण" में श्री श्री श्रुपभदेव श्री दिगम्बर लिखा है।

["Brahma Deva naked, went the way of the great road." (महाब्रह्मण्डल)—Wilson's Vishnu Purana, Vol. II (Book II ch. I) pp. 103-104]

* श्री महाभारत में श्रुपभदेव को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति' बताया है। (विष्णु० भा० ३ पृ० ४४४)

दिगम्बरन और दि० बुद्धि



श्री १००८ दिगम्बरनके प्रचारक श्री कृष्णनाथ श्री
और अंतिम प्रचारक श्री महावीर स्वामी । (पृ० १५ ४८५)
[सिद्धि स्थानिका संस्करण के लोकार्थ ५ बादा से]

[१]

हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व ।



“उप्यासा परशियो भवति कृष्टिक—सूत्र—ईश—वगमह—
 कृष्टिक—तीव—सप्त—इति ।” —उप्यासोपनिषद् १३

भगवान् ऋषभदेव उच्यते दिगम्बर होकर धर्म में जा
 रहे, तो उनकी देखा रेखा और भी बहुतसे लोग
 वैसे होकर इधर उधर घूमने लगे । दिगम्बरत्व के मूल तत्व का
 ये समझन नकेलौं अपने मनमाने ढंगसे उद्भूत करके दूजे
 ये माधु होने का दावा करने लगे । अंतशास्त्र कहते हैं कि इन्हीं
 सम्प्रदायियों द्वारा भान्य आदि जैनतर सम्प्रदायों की उत्पत्ति
 हुई थी ४। और नीचरे परिच्छेद में स्वयं हिन्दूशास्त्रों के
 आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव
 द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बर धर्म का प्रतिपादन हुआ था ।
 इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में श्री दिगम्बरत्व का सम्माननीय
 वर्णन मिलना आवश्यक है ।

यह बात सत्य है कि हिन्दूधर्म के वेद और प्राचीन
 तथा कृदात् उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः
 नहीं मिलता । किन्तु उनके छोटे-मोटे उपनिषदों एवं अन्य
 ग्रंथों में उसका खास ढंग पर प्रतिपादन किया गया मिलता

* चादिमुप्यास पर्व ३८ श्लो० ५१ व (Bishabh. p. 112)

का व्यवहार 'दिगम्बर' साधुके रूप में ही हुआ मिलता है ।
टीकाकार उत्पल कहते हैं X :—

“निर्ग्रन्थो नमनः क्षवणकः ।”

इसी तरह सायणाचार्यभी निर्ग्रन्थ शब्द को दिगम्बर
मुनि का द्योतक प्रगट करते हैं ÷ :—

“कथा कौपीनोत्तरा संगदिनाम् त्यागिनो, यथाज्ञात-
रूपधरा निर्ग्रन्था—निस्परिग्रहाः । इति संबर्तश्रुतिः ।”

'हिन्दू पद्मपुराण' में दिगम्बर जैन मुनिके मुखसे कह-
लाया गया है :—

“अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रन्थो गुरुकथ्यते ।”

अब यदि निर्ग्रन्थके भाव ब्रह्मधारी साधु के हाँते तो
दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते । इससे स्पष्ट
है कि यहाँ भी निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनिके रूपमें व्यवहृत
हुआ है ।

“ब्रह्माण्डपुराण” के उपोद्घात ३ अ० १४ पृ० १०४
में है :—

“नमनादयां न पश्येपुः श्राद्धकर्म व्यवस्थितम् ॥३४॥”

अर्थात्—“जब श्राद्धकर्म में लगे तब नमनादिको को न
देखे ।” और आगे इसी पृष्ठ पर ३६ वें श्लोक में लिखा है कि
नमनादिक कौन हैं ?

X IIIQ. III; 245

÷ तत्त्वनिर्णयप्रसाद पृष्ठ ५१३—४ दि जै० १०-१-४८

हैं। तृतीयतोल परिश्राजक विरहल दिगम्बर दोषा है और
 यह मन्वन्त नियमों का गानन करता है ७) अन्तिम परचून
 पूर्ण दिगम्बर और निर्दिष्ट है—यह मन्वन्त नियमों की भी
 परचाह नहीं करता +। तृतीयतोल परचून म पूर्णचक्र परम-
 हंस परिश्राजक को द्विर्भव है। यद्यपि यद्यता है किन्तु उक्त
 दिगम्बर ईश मूर्ति को तत्त्व वेत्तुं च नहीं करता होता—यह
 रूपता और मुद्रा (मुद्रा) है। और अक्षर्य यह तो तृत्तिया-
 तीम की भाग शब्दभा है +। इस कारण इन दोनों श्रेणों का
 समायोज्य परमहंस श्रेष्ठ में ही गमित किन्तों उपनिषदों में मान
 निषा गया है। इस प्रकार उपनिषदों के इस अर्थ से यह
 स्पष्ट है कि यह मन्वन्त दिग्-धर्म में ही दिगम्बरत्व का विशेष
 शास्त्र मिला था और यह साधान् मोक्ष का कारण माना
 गया था। उक्त पर आपानिक अंशतः में तो यह मूर्त ही
 प्रथमिक रहा, किन्तु यदा यह रूपनी धार्मिक परिष्कता का
 फैला, क्योंकि यदा यह योग की शक्तु रहा। अन्तु।

यदा पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य में जो भी
 उल्लेख दिगम्बर साधु के सम्बन्ध में मिलते हैं, उनको उप-

* गार्गीयसो मुनिः श्रुत्वा योगा योग्यमुद्रायाः कल्याणादीं कल्याणादीं चेद्दृष्टव्ये
 त्रिधाश्रयविधा दिगम्बराः कुम्भपञ्चकङ्कीर्णं चूर्तिकरः ।

+ कल्पवृक्ष-परिचयः। परिश्राजकपरमहंसपर्यायः सर्वे वर्णोपकरण-
 ह्याह्वानं यः मन्त्रसामुदायिनः ।.....

१ 'मन्' विरह्यन्तुर्वाक्यं नृणां प्रवृत्तयेत्येवमिति भावः। यथाऽत्र मन्-
 त्रं विरह्यन्तुर्वाक्यं यः साधुपूजा ।'

लिखत कर देना बचित है। देखिये "आवाचोपनिषत्" में लिखा है :—

"तव परमहंसानामसंवर्तं कारुण्यिः तकेतुदुर्वास
 अनुनिषाद्यसद्वभरत दत्ताधेयैरेवतक प्रभृतयोऽत्यक्तबिन्ना
 अरुपकाचारु अनुत्तना क्मत्तवशाचम्नान्निदृष्टं कमरदलुं
 त्रिभ्यं पात्र अरुपवित्रं शिखां यदोपधीनं च इत्येतसर्धं भूः
 म्शाहेत्यक्षु परित्यक्त्यमान मन्विष्येत् । यथाजान रूपधरो
 विह्वंभो निष्परिग्रहस्तत्तद्विह्वमानो सम्यक्संपन्नः—
 इत्यादि ।" †

इसमें संघर्तक, आरुणि, एतेतकेतु आदि को यथाजान-
 करधर निर्ग्रन्थ लिखा है अर्थात् इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों
 के समान आचरण किया था।

'परमहंसोपनिषत्' में किम्ब प्रकार उल्लेख है :—

"इदमन्तरं क्वात्वा स परमहंस अक्काशागमरो न नम-
 स्कारो न स्थावाकारो न मिन्दा न स्तुतियादच्छिको भवेत्स
 भिक्षुः + ।"

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा-
 निन्दा अथवा आदर-अनादर से लगेकार ही था। भागे
 'नारदपरिभाषकोपनिषत्' में भी देखिये :—

"यथाविधिज्ञेज्जात रूपधरो भूत्वा "जातरूप
 चरञ्जरेजातमानमन्विष्येयथा जातरूपधरो विह्वंभो निष्परि-

† ईशाच., पृष्ठ १११

+ ईशाच., पृ. १२०

अहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् मथनः । २६—चतुर्थोपदेशः X।”

“तुरीयः परमो ह्यसः साङ्गान्नायायसो यतिः । एकान्तं
 धर्मेन्द्रप्रामे मयरे पञ्चरात्रकम् ॥२४॥ वर्षाम्योऽन्वयं वर्षाद्यु
 मासांश्च चतुरो वसेत् ।—.....मुनिः कौपीनवासाः स्यान्मन्त्रां
 वा ध्यानप्रपत्तः । ३२ । तानरूपवत् सृत्वा “
 दिग्मन्त्रः ।” —चतुर्थोपदेशः । †

इत उल्लेखों में भी परिव्राजक को तप्य होने का तथा
 वर्षाश्रुतु में एक स्थान में रहनेका विधान है । “मुनिः कौपीन-
 वासा” आदि वाक्य में जहाँ प्रकार के सारे ही परिव्राजकों
 का 'मुनि' शब्द से ग्रहण कर लिया गया है । इसलिये उनके
 सम्बन्ध में बर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि
 अर्थात् प्रथम अवस्था का अवस्था अथवा को अवस्थाओं का ।
 इसका यह मात्पर्य नहीं है कि मुनि बस ही पहिन सक्ता है
 और मन्त्र भी रह सका है, जिससे कि तप्यता पर आपत्ति
 की जा सके ! यह पक्ष ही परिव्राजकों के पक्षमें से
 दिखाया जा चुका है कि अकृष्ट प्रकार के परिव्राजक तप्य ही
 रहते हैं और वह श्रेष्ठतम पक्ष को भी पाते हैं, जैसे कि
 कहा है :—

“आतुरो बीषति चेतनं संन्यासः कर्त्तव्यः ।”
 आतुर कुटोद्यकयोर्मूलोक्त मुचल्लोकी । बहुदकस्य स्वर्गलोकः ।

× ईशास, पृ० २६०-२६८

— ईशास, पृ० २६८-२६६

है । अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निग्रन्थ' शब्द दिगम्बरमुनि का द्योतक है ÷ ।

चीनी यात्री हानसांगके वर्णनसे भी यही प्रगट होता है कि 'निग्रन्थ' का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है :—

"The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair." (St. Julien, Vienna, p. 224)

अतः इन सब प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि 'निग्रन्थ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनिका है ।

१६. निरागार—आगार घर आदि परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि । 'परिगहरद्विश्रो निरायारो' † ।

२०. पाण्डिपात्र—करपात्र ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बर मुनि ।

'शिवेन पाण्डिपत्रं उवद्वट्टं परमं त्रियवचि देहि ।'

२१. भिक्षुक—भिक्षावृत्तिका धारक होनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे प्रसिद्ध होता है । इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है :—

÷ The Gwalior inscrips: of Vik.S.1161 (1104 A.D.)

"It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nirgranthanatha)."—Catalogue of Archaeological Exhibits in the U. P. P. Museum Lucknow. Pt. I (1915) P. 44

† श्रम, पृ० ३०

न कटिर्ध्वं न कांपीनं न वल्लम् न कपण्डलुर्न दण्डः
मार्बवर्धं रुमैक्षाटनपरत्वं ज्ञातरूपवर्गत्वं विधिः १

सर्वं परित्यज्य तत्प्रयत्नम् मगोदगर्हं करपाशं दिगम्बरं दृष्ट्वा
परिग्रजेद्भिक्षु ॥१॥ ".....अमरं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा वरति
यो मुक्तिः । न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते कश्चित् ॥११॥

".....साम्प्रतिदृष्टो भूत्वा आशाम्बुधरो भूत्वा सर्वदासबो-
धावकायस्त्वभिः सर्वसंसारमुख्य प्रपञ्चावाङ्मुखः स्वरूपा-
नुसन्धानेन भ्रमस्त्रोदन्धायेन मुक्तो भवतीत्युपनिषत् ॥ एष-
मोपदेशः ॥"

"दियापाम् परमार्थस्य एकं कीपीनं वा तुनीयातीता-
वभूतयो तौ ननुपघ्नान्यं हंस परमार्थसंयोगिन न त्वन्येषाम् ।"
—सप्तमोपदेशः ॥

वैराग्य सन्यासो भेद एव अन्य प्रकार से किया गया
है । इस प्रकार से परिभाषक सन्यासियों के चार भेद हैं
किये गए हैं—(१) वैराग्य सन्यासी, (२) ज्ञान सन्यासी,
(३) ज्ञान वैराग्य सन्यासी और (४) कर्म सन्यासी । इन में
से ज्ञान वैराग्य सन्यासी का ही नाम होना पड़ना है † ।

"मिच्छुर्धंपनिषद्" में भी लिखा है—

"अथ ज्ञानरूपयग निर्दग्धा निष्परिग्रहाः शुक्लव्यानपरा-
यथा आत्मनिष्ठाः प्राणसंघाण्यार्थं यथोक्तकाले भिक्षुमाचरन्तः

† संक्षेप, पृष्ठ १७७ ।

‡ "अनेक सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते ज्ञानवैराग्यसंन्यासी ॥"
केशवाचार्यनिघ. संन्यस्य ज्ञानरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी ॥

--नास्त्विच्छुर्धंपनिषद् १।१॥ तथा सन्यासोऽपिषद् ।

शून्यागारशेषशुद्धैर्गुणैरुदयन्मोक्षभूतमूलशुक्लात् शान्ताश्रद्धांश-
शास्त्रानदी पुत्रिनगिरिचन्द्र कुहर कांटा निर्मगन्धगिद्धे नत्र
ब्रह्ममार्गे सम्यक्संन्याः शुद्धगानसाः पद्महमाक्षरं न सन्पा-
सेन देहत्यागं कुर्यन्ति तं पद्महंसा नामैतत्पुनियत् * ।”

“तुरीयातीतोपनिषत्” में उल्लेख इस प्रकार है :—

“संन्यास्य दिगम्बरा भूत्वा चिक्वणं शीर्षेव हस्ताजिन-
परिग्रहमपि संश्लथ्य तद्दृष्ट्वंममश्रवदाचरन्तीनाम्यद्भन्नानोर्षा-
पुष्पादिक विहाय लौकिक बौद्धिक सप्युपमंहन्य सर्वत्र पुण्य-
पुण्यवर्जितो घानादानमपि विहाय शीतोष्ण सुखदुःख मा-
नाद्यमानं निहित्व वासनाश्रयपूर्वकं निन्दामिन्दागर्वमत्स्वर इत्य
हर्ष द्वेष काम शोध लोभ मोह दर्पावर्षाम्ब्यात्म संरक्षणादिकं
वगन्वा इत्यादि + ।”

‘संन्यासोपनिषत्’ में श्रीरमी उल्लेख इस प्रकार है :—

“वैराग्य संन्यासी ज्ञान संन्यासी ज्ञान वैराग्य संन्यासी
कर्मसंन्यासीति चतुर्विध्यमुपागतः । तद्यद्येति ह्यनुध्विक-
विषय वैतृभ्यमेव प्राप्स्युष्वकर्मविशेषात्संन्यस्तः स वैराग्य-
संन्यासी ।” “... क्रमेण सर्वसंन्यास्य सर्वमनुभूय ज्ञान-
वैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य ज्ञान
रूपधरो भवति स ज्ञान वैराग्य संन्यासी ।” †

‘परमहंसपरिव्राजसोपनिषत्’ में भी दिगम्बर मुनियों
का उल्लेख है :—

* ईशाच०, पृष्ठ ३६८ : † ईशाच०, पृष्ठ ४१० ‡ ईशाच० पृ० ४६२

“शिवामृतकुर्यात् यज्ञोपरोतं छिद्रवा रसुधयि भर्षी
वाप्यु वा निसृज्य ॐ मृ म्वादा ॐ मुवा रशाहा ॐ मुवे
म्याहेत्या तेन ज्ञानरूपयोगे मृवा स्व रूपं ध्यायन्मुनः पृथक्
प्रकृत्याहृति पूर्वकं प्रकृता धनस्यपि संप्रस्तं मया” ॥१॥

“यत्कालंशुद्धिभित्तया कुटाचको वा बृहदको वा हंसो
वा एगमहंसो वा तत्रमन्त्रपूर्वकं कटिम्बं कोशीनं दलदं
कमण्डलुं मर्धमण्डु विसृज्याथ ज्ञानरूपधरश्चरेत् ॥ १’

‘बाह्यवद्वयोपनिषत्’ में दिवस्वर साधु का उल्लेख करके
उसे परमेश्वर होना बताया है; अतकि जैनों की मान्यता है —

“पयोजानरूपधरा निर्हन्दा विष्वदिन्द्रास्तत्त्वब्रह्ममार्गे
सम्यक् संपन्नाः शुद्धमगसाः प्राणमन्त्रास्वार्यै पयोद्वजले
विमुक्तो भैरवमाचरन्तुडरपात्रेषु लाभाषामौ समौ भूत्वा कर
पात्रेषु वा कर्मजन्मद्वयो भैरवमाचरन्तुडरमात्र संश्रुतः ।”

“.....आशुम्बरो न नमस्कारो न आंगुष्ठाभित्ताथो लक्ष्या
लक्ष्यनिर्गतं कः पश्चिद् पन्नेश्वरो भवति ।” ॥१॥

‘दक्षायोपनिषद्’ में भी है—

“दक्षायै पदरे कृष्ण उमत्तानन्द शायक । दिगन्तर मुने
षाह्यपिस्तत्र प्राणसाधन ।” ॥ १

‘शिवसुखापनिषद्’ आदिमें सवर्तक, आरुणो, स्वेतकेतु,
अहमन्, दक्षाय, मुक, वामदेव, हारोनिकी आदि कां

* इत्याय ० पृ० ४१ ८-४१६
‡ इत्याय ० पृ० ५२६
+ इत्याय ०, पृ० ५४१

दिगम्बर साधु बताया है । “याप्रवक्ष्योपनिषद्” में इनके अतिरिक्त दुर्वास, अशु, निदाघ को भी मृग्यानीत परमईस बताया है *। इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है ।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, वरिष्ठ वेदोंमें भी साधु की नमना का साधारण सा उल्लेख मिलना है । देखिये ‘यजुर्वेद’ अ० १६ मंत्र १४ में है ☉ :—

“आतिथ्यरूपं मासवम् महावीरस्य नगदुः ।

रूपमुपसृद्धामेतस्त्रिंशो गच्छी सुगसुता ॥”

अर्थ—(आतिथ्यरूपे) अतिथि के भाव (मासरे) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नगदुः) नगररूप की उपासना करो जिससे (पुनत) ये (त्रिंशो) तीनों (गच्छी) सिध्या ज्ञान, दर्शन और आग्निरूपी (सुग) मद्य (असुता) बट्ट होती है ।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है । इसलिये यह मन्त्र अतिथियों के सम्बन्ध में ही लग सकता है, क्योंकि वैदिक देवता का मतलब वाक्य है-जैसाकि निरुपसृद्धार का भाव है—

* IHO II, १२६-१६०

* मास्य होता है कि इस मन्त्र द्वारा वेदशास्त्रों के न तीर्थद्वार महावीर के आदर्श को प्रकट किया है । इसके बसों के आदर्श को इस तरह प्रकट करने के उद्देश्य मिलते हैं । —IHO, III 472-485

“शांते चोच्यते सा देवताः ।” इसके अतिरिक्त ‘अथर्ववेद’ के मन्त्रद्वय अघ्वाय में त्रिन मातृय और महामातृय का उल्लेख है; जहाँ महामातृय दिगम्बर साधुका स्वरूप है । किन्तु यह मातृय एक वेदशास्त्रसंप्रदाय था, तो बहुत कुछ निर्गन्ध-संप्रदाय से मिलता-जुलता था । यदि कथुं कहना चाहिये कि यह जैन-मुनि और जैन तोर्षक ही का चोत्पत्त है। इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैनतोर्षक श्रुत-रच द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब इसका प्राप्ति यह गया और लोगों को समझ पट गया कि परमोच्चपद पान के लिए दिगम्बरत्व आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने शास्त्रों में भी स्थान दे दिया । यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सामान्य रूपमें मिल जाता है ।

अथ हिन्दू पुराणादि ग्रंथों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, वह भी देख लेना उचित है । श्री भागवत पुराण में श्रुतम अवतार के सम्बन्ध में कहा है :—

“यदिषो तस्मिन्नेव विष्णु मगधान् परमर्षिभिः प्रसाद-
तो वाग्नेः प्रियचिकीर्षया तद्वरोचामने मन्वेष्णां धर्मान् वर्श-
यतु कामो यातरशुभानां भ्रमशानां श्रुपोद्यामूर्धा मन्थिता
शुक्लपा वतु वाचतवारः ।”

अर्थ—“हे राजन् ! परीक्षित वा शत्रु में परम श्रुतियों
करके प्रसन्न हो माझिके प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तः-

पुर में मन्त्रदेवी में धर्म दिव्यायवे की कामना करके दिगम्बर
रहिवेवारे वपस्वी यानी नैष्टिक ब्रह्मचारी ऊर्ध्व रेखा झपिरी
को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम
का (चिप्लु ने) अवनार किया !”†

“निद्र पुराण” (अ० ४७ पृ० १८) में भी राज माधु का
उल्लेख है :—

“अश्वत्थिमात्म निम्नाथ परमात्मा नमोऽथर्षे ।
नमोऽत्रो निरादारो चोनीष्यां नमोऽहिम् ॥२॥”

“स्कंधपुराण-प्रभासखंड” में (अ० ६६ पृ० २०१)
शिवको दिगम्बर विद्या दे + :—

“वामनोपि ननक्षते तत्र तीर्थावगाहनम् ।
यादृज्जपः शिवादिपुः पूर्वविम्बे दिगम्बरः ॥६४॥”
श्री भक्तु हरि जो ‘विगन्धशुनक’ में कहते हैं X :—
‘एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपाशो दिगम्बरः ।
कदाशुभो भविष्यामि कर्मनिर्मुक्तजन्मः ॥५॥’

अर्थ—“हे शम्भो ! मैं अकेला, इच्छा रहित, शान्त,
पाणिपाश और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कर
सकूंगा ।” वह और भी कहते हैं - :—

अशीमहि वयं भिक्षामायाशसो वस्मीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि विमीश्वरैः ॥६०॥

† वेत्ते० पृ० ३ ।
‡ वेत्ते० पृ० ६ ।
+ वेत्ते०, पृ० ३४ ।
X वेत्ते०, पृ० ४६ ।
+ वेत्ते०, पृ० १० ।

अर्थ—“अब हम भिन्ना ही करने मौजब करोगे; भिन्ना ही के सम्बन्ध बनाने अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही श्रवण करोगे। फिर भला व्यवधानों में हमें क्या समस्या है?”

सामर्थी शब्दाब्दों में जय चीनी चाची दुश्नमार्ग बना-
राम पहुँचा ता उसने यहाँ हिन्दुओं के यद्दुनमे नझे माधु देखे।
बहु लिखता है कि “महेश्वर अपने माधु पाकों का संबंध कर
जटा बनाने हैं तथा सम्बन्ध परिद्वारा करके दिग्गंवर रहते हैं और
सगीर में अस्म का लेप करने हैं। ये बड़े नपस्वी हैं ॥” इन्हीं
को परमार्थ परिग्राहक कहना ठीक है। किन्तु हुएमसांग से
बहुत पहिले ईश्वरी पूर्वगोसगी श्लाघि में जय भिन्नादर महान
ने भाग्य पर आक्रमण किया था, नय भी मने हिन्दू साधु यहाँ
सीजूद थे।

अरम्भ का भनीवा ब्यहो कलितस्थेनस (*Perado
Kullithan*) विद्वान् महान्के साथ यहाँ आयाथा और
बह बनाना है कि “आत्मज्ञे का अमर्णों की नगद कोई संबंध
नहीं।..... उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (*State of
nature*)—नग्न नथी किनारे रहते हैं और नथे ही घूमते हैं
(*Go about naked*) उनके पास न चौपाहे हैं, न हथ हैं,
न मोटा कड़क हैं, न घर हैं, न आवा हैं, न रोटी हैं, न सुरा
है—गुरुं बट कि उन के पास अन्न और आनन्द का कोई
साधन नहीं है। इन साधुओं की स्थित्यांगदा की दूसरी और

रहती हैं, जिनके पास जुवाड़ और अयस्नमें वे जाते हैं। वे सब जंगल में रहकर वे फल खाते हैं।”

सन् १५१ में अरब देश से सुलेमान साँदागर भारत आया था। उसने यहाँ एक ऐसे सभे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थिर था † ।

बादशाह औरङ्गजेब के जमाने में फ्रांस से आये हुये डॉ० बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहंस (नये) सन्यासियोंको देखा था। वह उन्हें 'योगी' कहता है और इनके विषय में लिखता है+ :-

“I allude particularly to the people called 'Jaugis', a name which signifies 'united to God' Numbers are seen, day and night, seated or lying on ashes, entirely naked, frequently under the large trees near tanks or tanks of water, or in the galleries round the *Deuras* or idol temples. Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into knots, like the coat of our shaggy dogs. I have seen several who hold one & some who hold both arms, perpetually lifted up above the head; the nails of

† AL, P. 181.

‡ Elliot, I, P-4

+ Barmer., P. 315

their hands being twisted, and longer than half my little finger, with which I measured them. Their arms are as small & thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced & unnatural a position they receive not sufficient nourishment; nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulations dry & stiff. Novices wait upon these fanatics & pay them the utmost respect, as persons endowed with extraordinary sanctity. No Fairy in the infernal regions can be conceived more horrible than the *Jangies* with their naked and black skin, long hair, spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned."

भाव यही है कि बहुत से ऐसे भोगी थे जो तासाथ अथवा मंदिरों में नंगे गज-विन रहते थे। उनके बाल लम्बे थे। उनमें से कोई अपनी पाँवें ऊपर की बढाये रहते थे। वास्तु उनके मुँहकर कुभर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आगे बढाकर थे। लूँकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें विद्वान् भी मुझकह था; क्योंकि उनकी नसों तम गई थीं। सब जन इन मानों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विषय

करते हैं। वे इन जांगियों से पवित्र किसी दुबरे को समझते नहीं और इनके क्रोध से भी वेद्वेष डरते हैं। इन जांगियों की नंगी छौर काली चमड़ी है, लम्बे बाल हैं, सूखी बाँहें हैं, लम्बे मुँहें हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में अमे रहते हैं जिसका मैंन रहल्लेख किया है। यह हड़प्यांग को पराकण्ठा है। परमहंस होकर वह यह न करते तो करते क्या ?

सन् १९२३ई०में पिटर डेरला घॉस्ल्ला नामक एक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नाग साधु देखे थे; जिन की लोंग बढ़ी चिनय करते थे ।

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हज़ारों नाग सन्नासी घड़ी देखने से मिलते हैं—वे कृतार घोंघ कर करह-आम नये निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दू धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिग्म्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य-भुज्य हैं।

[५]

इस्लाम और दिगम्बरत्व ।

"I am no apostle of new doctrines", said
 Mahammad, "neither know I what will be done
 with me or you" —Koran XLVI.

पैगम्बर इजरत मुहम्मद ने खुद फरमाया है कि "मैं
 किसी नये सिद्धान्तोंका उपदेशक नहीं हूँ और मुझे
 यह नहीं मालूम कि मेरे वा तुम्हारे साथ क्या होगा ।" सत्य
 का बचावक और बह ही क्या सकता है ? उसे तो सत्य को
 गुमराह भाइयों तक पहुँचाया है और उससे जैसे कन्ना है
 वैसे इस कार्य को करना पड़ता है । मुहम्मद सा० को कसब के
 असमर्थोंके लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था । वह लोग
 ऐसे बाध न थे कि पदम ऊँचे हों या सिद्धान्तका को
 सिखाया जाता । इस पर भी इजरत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट
 सिद्धा दी कि —

"The love of the world is the root of all
 evil" १

"The world is as a prison and as a famine
 to Muslims; and when they leave it you may
 say they leave famines and a prison." —(Sayings
 of Mohammad)^२.

^१ KK, P. 788

अर्थात्—“संसार का प्रेम ही धर्म याव ही उद्द है । संसार मुसलमानके लिये एक कैदगृहना और कदम के समान है और उद ये फसका छोड़ देने हैं नय मुम कद सकते हो कि उन्होंने फहत और फ़ैद ख़ाने को ख़ांड दिया ।” त्याग और वैराग्य का इससे बढिया उपदेश और हो भी क्या सकता है? इज़ान मुहम्मद ने उश्य उल्लके अल्लुमार अपना जीवन बनाने का बयाजमब बयान किया था । उस फ भी उनके कम से कम बरसों का पनियान और दाथ भी अँगूठी उनकी तमाज़में बाधक हुई थीक़ । किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उम ख़म फात्ममें संगव नहीं था कि यह खुद नान होकर त्याग और वैराग्य—तक़े दुनियाँ—का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते ! यह कार्य उनके बाद हुए इस्लामके मुफ़ी तन्वनेनाशों के भाग में आया । उन्होंने ‘तक़े’ अथवा त्यागधर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यूँ दिया :—

“To abandon the world, its comforts and desires,—all things now and to come,—conformably with the Hadiths of the Prophet”†

अर्थात्—“दुनियाँ का सम्पत्त त्याग देना—तक़े का देना—बसकी आशाइशों और पोछाक—सबही चीज़ोंको ख़र की और आगे की—कैमवर सा० कीइदीस के मुताबिक़ ।”

* Religious Attitude & Life in Islam, P. 218 & K.E. 789

† The Derrishes—K.E. P. 789

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम में श्रावण और वैशाख को विशेष स्थान मिला । हममें ऐसे इन्वेषण हुये जो दिव्य रत्न के दिमागतो से श्री बुर्जिलान में 'अब्दास' (Abdals) नामक इन्वेषण साद्विज्ञान से गृह्यत छपनी साधना में लीन रहते बनाये गये हैं * । इस्लाम के गदान सूफी वाकवेता और सुप्रसिद्ध 'मस्नवी' नामक ग्रन्थके रचयिता श्री जलालुद्दीन कमी दिगम्बररत्न श्री सुना उपदेश निम्न प्रकार बंते हैं :-

१—“मुपुन मन्त ऐ महत्तय खुदाय गद—छद्म विर-
ह्या के तयां सुरदन परच ।” (जिल्द २ सफा २६२)

२—“जामा पोशां ग बखर परगाज गस्त—जामी
श्रियां ग तज्जी खेपर अमन ।”

—(जिल्द २ सफा ३०२)

३—“याज अगियालान एकरह याज रव—या सू
रिशां फानिगु व बेजामा खव ।”

४—“दरवमी नानी कि कुल श्रियां सुयो—जामा
अम बन ना गद औसन गवी पु”

—(जिल्द २ सफा ३०३)०

* “The higher caste of Islam, called 'Abdals' generally went about perfectly naked, as described by Mrs. Lucy M. Garrison in her excellent account of the lives of Muslims, December, entitled "Mysticism & Magic in Turkey."—N.J., P. 10

१ जिल्द और पृष्ठ के मन्वा “दरवशी” के मूँ खुदाद “इस्लामे दान्दुष” (مذاهب) के हैं ।

इन का उद्देश्य अनुवाद 'इल्हामे मन्जूम' नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है —

१—महन पोशा, महनव, कर काम जा—होगा क्या
नद्रे सं तू अहवे वर शा !

२—है महर घोषी पे जामे पोश की—है नज्जली
जेवर अरियां ननी !!

३—या विगदनां से हां यक्रम् धाकुरै—या हां उन की
नरह बेजामे शशी !

४—मुनजकन अरियां जो हो सकना नही—कपड़े कम
बह है कि पोसन के फर्ने !!

साव स्पष्ट है। कोई तार्किक मस्तिष्क नद्रे दरवेश में आ बलभा। उसने सीधेसे कह दिया कि जा अपना काम कर—तू नद्रे के सामने टिक नहीं सकता। इस धार्मिक हमेशा घोषी की फिर लगी रहती है; किन्तु नदी नन की शोभा देवी प्रकाश है। पर, या तो तू नद्रे दरवेशों से कोई सनेकार न रख अथवा उन की तरह शांति और नरह हां जा ! और अगर तू एक बस चारों कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यगर्भ को प्रहस्य कर ! क्या अच्छा उपदेश है। एक विगनवर जीत साधु भी तो यही उपदेश देता है ! इस से विगनवरत्व का इस्लाम से सम्यन्ध स्पष्ट हो जाता है।

और इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैद्धों मुसल-

माम फकीरों ने टिमबर बेपको गतशक्तमें धारण किया था। इनमें अबुलक़ासिम गिलानी * और सय्यद शरीफ अब्दोल-नीस हैं।

सरमद बादशाहशौरङ्गने के समय में दिल्ली में हो गुजरा है और उस के इआरों वझे शिष्य भारत सर में बिजरे पड़े थे। वह मूल में कज़हान (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्याका भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छो पाली जानता था। व्यापार के विमिश भारत में आया था। उहा (शिव) में एक हिन्दू लड़के के दरक में एह कर मजदू बन गया। दरगस्त इस्लाम के सूफ़ी दर-घेयों की संगति में यह कर मुसलमान हो गया। मस्त नज़्म यह शहनों और गलियोंमें फिरता था। अध्यात्मवाद का प्रधा-रक था। धूमता-धामता वह दिल्ली जा इटा। शाहजहाँ का वह अन्त समय था। चारा शिष्य, शाहजहाँ बादशाह का बहा बहका, उस का मक होगया। सरमद आतन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ़ारस से आये हुए डॉ० बरनिबर ने खुद अपनी आँखों से उसे नया दिल्ली की गलियों में घूमते देखा था। किन्तु अब शाहजहाँ और बाग को मार कर औरंगज़ेब बादशाह हुआ तो सरमद

* KK., P 739 and NJ, PP 8-9.

† JG., XX PP. 158-159

‡ Buzner remarks "I was for a long time dis-
gusted with a celebrated Fakir named Barriet, who

की आकाही में भी अड़ना पड़ गया। एक मुल्ला ने उन की नज़रों के अपराध में उसे फाँसी पर चढ़ाने की सजाह और क़त्ल की दी, किन्तु शीख़ों ने नज़रों को इस दण्ड की वस्तु न समझा * और सन्मद से कपड़े पहनने की दर-सुवास्त की। इस के उत्तर में सन्मद ने कहा —

“शौकस कि तुम कुल्लह सुल्लानो डाव,
मारा हम शो अस्वाय परेशानी दाव;
पोशाबीद जयास हफ़रा पेरे दीद,
धे पेरा न तवास अर्यानी दाव ।”

यानी “जिस ने तुम को यादशाही लाख दिया, वही ने हम को परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई पैदा पाया, उस को सिवास पहनाया और जिस में पैदा न पाये उन को नफ़ेफ़म का लियारा दिया ।”

यादशाह इस बर्बाद को सुनकर घुप हो गया; लेकिन सन्मद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सन्मद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ़ यह था कि वह ‘कलमा’ खाया पढ़ता है जिस के माने होते हैं कि ‘कोई खुदा नहीं है।’ इस अपराध का दण्ड उसे फाँसी मिली और

paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc.”—(Berners Travels in the Mogul Empire, P 815)

* Emperor told the Ulama that “Nude nudity cannot be a reason of exemption.” —JG. XX, P. 158.

वह वेदान्तकी बातें करता हुआ लदीव होगया। उसको फॉलो
दिपेजानेमें एक कारण यह भी था कि वह दाराश कोस्त था।†

सुरमद को तरह न जाने कितने नई मुसलमान दरवेश
हो गुज़रे हैं। बादशाह ने उसे मात्र कमी रहने के कारण छोड़ा
न ही, यह इस बात का संशय है कि वह अम्बला को दुरी
चीज नहीं समझना था। और सचमुच उस समय भारत में
हज़ारों की फ़ौज थे। ये दरवेश अपने बने तम में भारी २
जंजीरों लपेट कर बड़े तम्ये २ शीर्षादिब किया करते थे।‡

सांग्रितः इस्लाम मज़हब में दिगम्बरत्व साधु पदका
किन्तु यह है और उसको अमबी शक़ मो हज़ारों मुसलमानों
ने ही है। और चूँकि हज़रत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त
के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिए कहना होगा कि
अपमानत्र से प्रगट हुए दिगम्बर-यज्ञ की एक घारा को
इस्लाम के सूफ़ी दरवेशों ने भी ग्रहण किया था।

† JG., Vol. XX, P. 159 "There is no God" said
Sarnad omitting "but, Allah and Muhammed is His
apostle"

‡ "Among the vast number and endless variety
of *Fakirs* or *Dervishes*, some carried a
club like to *Hercules*, others had a dry & rough
tiger-skin thrown over their shoulders, Several
of these *Fakirs* take long pilgrimages, not only
naked, but laden with heavy iron chains, such as are
put about the legs of elephants." —Bernier P. 317.

ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु !

"And he stripped his clothes also, and prostrated before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets ?" —(Samuel XIX. -24)

"At the same time spake the Lord, by Isaiah the son of Amos, saying, 'Go and loose the sack-cloth from off thy loins, and put off thy shoe from thy foot. And he did so, walking naked and bare foot,"

—(Isaiah XX. 2)

ईसाई मज़हब में भी दिगम्बरत्व का महत्व भुलाया नहीं गया है, बल्कि बड़े मार्के के शब्दों में उसका बड़ा प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है। जिस महासुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन धर्मियों के निकट शिक्षा पा चुका था †। उसने जैनधर्म की शिक्षा को ही अलंकार-भाषा में पाश्चात्य-देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मज़हब दिगम्बरत्व के

† विष्णो०, ख० १ पृष्ठ १२५

विज्ञान से मालूम नहीं रह सका। और मध्यमक साहित्य में स्पष्ट कहा गया है कि —

“और उसने अपने बस उनाह डाले और सैमुयल के समस्त पेशी ही धीमता की और उस सारे दिन तथा राती रात वह बंगा रहा। इसपर उन्होंने कहा, ‘क्या साहज भी पैगम्बरों में से है?’—(सैमुयल १६। २४)

“उसी समय प्रभु ने जर्मोज के पुत्र ईसाया से कहा जा और अपने बस उनाह डाल और अपने पैरों में बूँत निचाब डाल। और हमने पक्षी किया, बंगा और नीचे पैरों वह विचरने लगा।”—(ईसाया २०। २)

इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि यासविब भी मुमुतु को दिव्यमन्त्र मुनि का बाने का उपदेश देती है। और कितने ही ईसाई साधु दिव्यमन्त्र शेष में रह भी चुके हैं। ईसायों के इन षो साधुओं में एक सेंटमैरी (St. Mary of Egypt) वायक माधवी भी थी। वह मिशरदेशकी सुन्दर ली थी, किन्तु इनके भी कपड़े छोड़कर बस-बेर में ही सर्वश्र विहार किया था। ‡

पहली (Jewes) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक “The Ascension of Isaiah” (p. 82) में लिखा है —

“(They) who believe in the ascension into heaven withdrew and settled on the mountain,...

‡ The History of European Morals, ch 4 & NJ, P 6

..... "Hic were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked."†

अर्थात्—बहु जो मुक्ति की प्राप्ति में धनदा रखते थे एकान्त में पर्यंत पर जा जमे.....वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अर्थात्सल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यकता और विद्योपता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे शब्द पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है :—

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether thou ha clothings, or.....any other thing, possess sins, because we ought not to have anything.... ..To all of us possessions are sins.....The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins."*

अर्थात्—क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीजों को चुन लिया है, परां तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े कूचे हों या दूसरी कोई चीज, पाप को रक्खे हुये हैं, क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है।

† NJ, P 6

* Ante Nicene Christian Library, XVII. 240 & NJ, P. 7

जैसे भी हो जैसे इन का त्याग करना पापों का
घराना है !

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये
आवश्यक ही है। ईसाई अंधकार ने इसके महत्त्व को खूब
दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई महात्त्व के मानने वाले
भी सैकड़ों दिगम्बर साधु हो गुजरे हैं।

[७]

दिगम्बर जैन मुनि !



“अथवादकज्जगद्दं रप्पदिदं अंशमसुखं सुद्धं ।
रदिदं हिंसावीदो अण्णदिकम्मं एवदि तिगं ॥५४
मुञ्ज्जारंमधिञ्चत्तं सुत्तं षड्जोगं खंतं सुद्धीरिं ।
तिगं ए परावेक्खं अणुणम्मव करणं ओ प्हं ॥६॥”

—प्रथम सार ।

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया
है कि उनका विषय अथवा धर्म यथाज्ञातरूप नग्न है—
सिर और दाढ़ीके धेज उन्हें नहीं रखने दोते—वे इन स्थानोंके
पालों का हाथ से बचाव कर फेंक देते हैं—यह उनकी धर्म-
सुद्धन क्रिया है। इसके अनिरीक दिगम्बर जैन मुनि का धर्म
शुद्ध, हिंसादि रहित, शंभार रहित, ममता-आरम्भ रहित,
अपयोग और भोग की शुद्धि सहित, पर इच्छ की अपेक्षा

रहित, मोक्ष का कारण होता है। आरांश रूप में दिगम्बर जैन मुनि का वेप यह है; किन्तु यह इतना दुर्द्ध और गहन है कि संसार प्रपञ्च में फंसे हुए मनुष्य के लिये यह संभव नहीं है कि वह एक दम इस बंध का धारण कर ले। तां किन क्या यह वेप अव्यवहार्य है ! जैनशास्त्र कहते हैं, 'कदापि नहीं।' और यह है जो ठीक क्योंकि उनमें दिगम्बरत्व का धारण करने के लिये मनुष्य का पहले से ही एक वैज्ञानिक ढंग पर तैयार करके पाल्य जना लिया जाना है और दिगम्बर पद में भी इसे अपने मूल उद्देश्य को सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढंग पर ही आंखन व्यतीत करना जाना है। जैनतर शास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर वेप का प्रतिपादन हुआ मिलता है; किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम-प्रवाह को कमी है। और यही कारण है कि परमहंस ध्यानस्थ भी उनमें सफलता मिल जाती है। † जैनधर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी बातें विद्वद्गण असंभव हैं !

इच्छा तो, दिगम्बर वेप धारण करने के पहले जैनधर्म सुमुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक वतलाता है ? जैन शास्त्रों में सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि एक गृहस्थ एक दम इच्छांग मात्र कर दिगम्बरत्व के समत भीत पर नहीं पहुँच सकता। उसको वहाँ तक पहुँचाने के लिये कदम-ब-कदम आगे बढ़ना होना। इसी

† यूनानी वैज्ञानिकों ने इसका अन्वेषण किया है। देखो। A.L. p. 181

कम व. अनुकूल्य अंतर्गतों में एक गृहस्थ के लिये ग्याग्द पर्व नियत किये हैं। पहले दलों में पहुँचने पर यही गृहस्थ एक श्रावक बह्मते के पास जाना दे। यह दलों गृहस्थ की आत्मोत्थानि के सूचक है और इनमें पहले दलों में दूसरे में सामान्यतः ही निर्धारण गला दे। इनका विशुद्ध वर्णन अंतर्गतों में जैसे 'रत्नरत्नद्वयश्रावकाचार' में गूर मिलता है। यहाँ इनका क्या देना हो बाक्य है कि इन दलों में गुण ज्ञान पर ही एक श्रावक विगम्य सुनि होने के योग्य होना है। विगम्य सुनि होने के लिये यह उमरों 'द्वैविद्' है और मन्त्रमुच प्रापधोपगम्यत प्रतिमा सं उस ती गृह्ये का अन्याय करना प्रारंभ पर देना होता है। मात्र पर्व—सप्तमी और अष्टमी—है दिनों में यह अनारंभी हो—यह बाह्य पर काम-जात छोड़कर—अतः उपवास करना तथा विगम्य होकर स्थान में जीन जाना है ॥ ग्याग्दों प्रतिमा में पहुँच कर यह मात्र संगोटी का परिग्रह करने पास गृह्ये देना है और गृहस्थार्थी यह हमके पहले हो जाता है। ग्याग्दों प्रतिमा पर धारी यह 'ऐक्य या सुजलक' साष्टपूर्वक विधिवहित यदि प्राप्त भोजन गृहस्थ के यहाँ मिलना है ना गृह्ये कर होता है। भोजनपात्र का रखना भी उसकी गृही पर अवलम्बित है। बन्ध, यह श्रावकवद की पत्त-सीमा है। 'मुग्दधोपनिषद्'

१. यद्यपि पृ० १०५ तथा बाँकी के 'अष्टम निघण्टु' में भी इसका उल्लेख है।

के 'मुण्डक ब्राह्मण' इसके समतुल्य होते हैं, किन्तु घडा घट साधु का श्रेष्ठ रूप है । इसके विपरीत जैनधर्म में इसके अग्रे मुनिपद और है । मुनिपद में पहुँचने के लिये वेदक-ब्राह्मण को लाजमी तौर पर दिगम्बर-वेप धारण करना होता है और मुनिधर्म का पालन करने के लिये मूल और वस्तु-गुणों का पालन करना होता है । मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं :—

'पांच महत्त्वमाहं समिदीशो पांच त्रिणवरादिद्रु ।
 पांचेविदियगंहा हृषि य आवासया वांचो ॥२॥
 अचचेत्त कमसहात्त खिदिस्सयणमदत्त वस्सणं चेव ।
 विदिभाचयेयमत्तं मूल गुणाअट्टवीसा तु ॥३॥ सूत्ताचार ॥

अर्थात्—“पांच महावत (अहिंसा, क्षत्य, अग्नेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), त्रिनवर कर उपदेशी हुई पांच समितियाँ (ईर्ष्यासमिति, मायासमिति, परया समिति, आदाननिक्षेपस्य समिति, सूत्रविद्यादिक का शुद्ध भूमिमें होपण अर्थात् प्रतिष्ठापनासमिति), पांच इन्द्रियों का निरोध (चक्षु, श्रवण, नास, शीघ्र, स्पर्शन—इन पांच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना), बृह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तद, बंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कापोत्सगी), सोच, आचेत्तकथ, अज्ञान, पृथिवीशयन, अदंतघर्षण, स्थितिभोजन, एक मऊ—ये जैन साधुओं के अट्टाहस मूल गुण हैं ।”

संक्षेप में दिग्दर्शन मुनि के इन उद्घाटन मृतगुप्तों का
विवेचनात्मक वर्णन यह है :—

- (१) अहिंसा महाव्रत—पूर्वजः सत वचन-काव पूर्वज
अहिंसा धर्म का पालन करना।
- (२) सत्य महाव्रत—पूर्वजः अन्य धर्म का पालन करना।
- (३) असंतप्य महाव्रत— " असंतप्य " " "
- (४) ब्रह्मचर्य महाव्रत— " ब्रह्मचर्य " " "
- (५) अपविग्रह महाव्रत— " अपविग्रह " " "
- (६) ईर्ष्या मयिनि—प्रयोजनयुक्त निर्वीथ मार्ग से धार
दाय क्षमोत्त देणकर चलना।
- (७) भाषा मयिनि—पैशुन्य, व्यर्थ टास्य, कठोर वचन,
परमिदा, स्वप्रशंसा, ग्लो कथा, भोजन कथा, राज-
कथा, चंभ कथा इत्यादि वार्त्त श्लोडक माध स्वपर-
कल्याणक वचन पोषणाः।
- (८) एषणामयिनि—उद्मादि कुवालील दोषों से रहित,
पुनकाग्नि ती विद्वेषों से रहित, भोजन में रामद्वेष
रहित—समभय से—विना निरसंशय स्वीकार कदे,
मिह्या-यत्ना पर क्षमाग द्वारा पदुगाइने पर इत्यादि
नय साहज करना।
- (९) अष्टानचिक्षेपण मयिति—पानोपकन्थादि—पुस्त-
कादि धर—यत्नपूर्वक द्वेष साहज कर उद्वेग-धरना।
- (१०) प्रतिष्ठापना मयिति—एकान्त, हरित ध प्रसकाय

रहित, सुप्त, दूर, विज रहित, चौड़े, चोकनिन्दा व
चिरोध-रहित स्थान में मत्त-भूष ज्ञेयता करना;

(११) चक्षुर्निरोध व्रत—सुन्दर व अमन्दर दर्शनीय वस्तुओं
में राग द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग;

(१२) कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत—मान क्य रूप लोष शब्द
(शान) और धीणा आदिसे उत्पन्न अजीवशब्द रागादि
के निमित्त काग्य है: शतः इत्यादि न सुनना;

(१३) घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत—सुगन्धि और दुर्गन्धि में
राम-द्वेष नहीं करना;

(१४) रसनेन्द्रिय निरोध व्रत—जिह्वानस्पृष्टता के त्याग
रहित और आवांता रहित परिशाम पूर्वक दासाण के
यहाँ मिले संजन का ग्रहण करना;

(१५) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत—कठोर, नरम आदि आठ
प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप जो स्पर्श उस में
दुर्ष विषाद न रखना;

(१६) सामायिक—जीवन-मरण, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु,
सुख-दुःख, भूत-व्यास आदि पाधाओं में राग द्वेष
रहित समभाव रखना;

(१७) चतुर्विंशति-स्तव—अपभारि चौबीस लोचंजुओं की
मन-वचन-काय की शुद्धता-पूर्वक स्तुति करना;

(१८) वन्दना—अरहंतदेव, निर्मथ्य गुरु और जिन शास्त्रको

मग-यजन-काय की शुद्धि महिन पिना मन्मथ नमाये
नमस्कृतं कर्माः

(१६) प्रतिक्लपण—इस्य दोष-राज-मान रूप किये गये दोष
को शोधना और शपन काय प्रकट करना।

(१७) मत्पारुष्य—नाम, म्हापदा, उच्च, लुच, कास, भाव
—इस छोटों में मुझ मन, दहन, गाय स आमात्री काम
के लिए गयोग्य ना स्वाम करना।

(१८) कायोत्तर्ग—निहित क्रिया रूप एक नियत काल के
लिये जिन गुणों को जायना महिन देह में मन्मथ को
छोड कर स्थित होना।

(१९) केंद्रार्जन—दो, तीन या चार महोत्से मह प्रतिक्लपण
व उपवास महिन दिनों शपने हाथमे मन्मथ, दाही,
धूल के बालों का उजाड़ना।

(२०) अचेलक—घम, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को
नहीं टंचना, और शायकणों से भूषित न होना।

(२१) अस्नान—स्नान-उदक-अन्न-सेवन आदि का त्याग।

(२२) क्षिनिशयन—भोजन पाधा रहित मुह प्रदेह में इनके
अथवा धनुष के समान एक करघट से छांटा।

(२३) अदन्तधारन—अट्टसी, नम, दाँतीन, तृण आदि से
दन्त मज को शुद्ध नहीं करना।

(२४) स्थितिभोजन—शपने दार्थ को मोहत पात्र पना कर
भीत आदि के आशय रहित चार महिन के अन्तर से

समपाद गढ़े रहकर तीन भूमियों की शुद्धतासे आहार
प्रत्यक्ष करना; और

(२८) एक भक्त—सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन
बड़ी समय छोड़कर एक बार भोजन करना ।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिग्गम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को
नव ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपरोक्त अष्टाईस सूत्र
शुद्धी का पालन करने लगे । इनके अतिरिक्त जैन मुनिके लिये
और भी उत्तर श्रुतियों का पालन करना आवश्यक है; किन्तु ये
अष्टाईस सूत्र गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को
निर्विकारी और योगी बना दें ! और यही कारण है कि आज
नए दिग्गम्बर जैन मुनि अपने पुण्यतन चरणों में देवताओं को नसीब
हो रहे हैं । यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैतधर्म में नही होता
तो अन्य मतान्तरों के कम साधुओं के सदृश आज दिग्गम्बर
जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते ! दिग्गम्बर
साधु—नए जैन साधुके लिये 'दिग्गम्बर साधु' पदका प्रयोग
करना ही हम अधिक समझते हैं—इस उपरोक्त आरम्भिकश्रुतियों
को देखते हुये—जिन के बिना वह मुनि ही नहीं हो सकता—
दिग्गम्बर मुनि के जीवन के कठिनधर्म, इन्द्रियनिग्रह, संयम,
धर्मभाव, परोपकारवृत्ति, निष्ठरूप इत्यादि का सद्व्यवहार ही
पता लग जाता है । एक दशा में यदि वे अग्रदूतत्व हों तो
आश्चर्य क्या ?

दिग्गम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी

अहरी है कि उन के (१) आचार्य (२) उपाध्याय और (३) माधुर्य नीत श्रेणीके अनुसार कर्त्तव्य में भी भेद है। आचार्य माधुर्य के गुणों के तार्किक सर्वज्ञान सर्वश्री आचार्यों ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ आचरण करते तथा दूसरों से पढ़ाये, जीवनमार्ग का उपदेश देना मुमुक्षुओं का संशय करे और उनकी भाव-संशय हटाने। उपाध्याय का कार्य माधुर्य के साथ साथ जीवन मार्गों का घटन घटित करना है। और जो माधुर्य उपरोक्त गुणों से सम्पन्न हुआ आचरण में सीन रहता है, वह माधुर्य है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों का अर्थ कर्त्तव्य के अनुसार जीवन-आचरण करना रहता है। आचार्य महागुरु का जीवन महर्षि के उपाध्याय में ही रहता है, इस कारण वे ही कोई आचार्य विशेष ज्ञान ज्ञान करने की नियत में अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य का नियुक्त करके सर्व साधुपद में आ जाते हैं। मुनि-द्वय है। सात्त्विक मोक्ष का कारण है।

[=]

दिगम्बर-मुनि के पर्यायवाची नाम ।

—

दिगम्बर मुनिके निचे तीनशुद्धों में एक शब्द व्यवहृत हुए मिलते हैं। तथापि जैनेतर साहित्य में भी एक से अधिक नामों में उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उन का साधारण ही उल्लेख हम उना उचित है। जिससे किसी

प्रकार की शब्दा को ध्यान न रहे । आचारणतः दिग्भ्यश्च मुनि
के शिष्ये व्यवहृतं शब्द विष्णुप्रकार देखने को मिलते हैं :-

अकच्छ, अविज्ञान, अचेन्नक (अचेन्नप्रती), अतिथि,
अनगरी, अपरिग्रही, अहोक, आर्य, अपि, गणो, गुरु, जिभ-
लिङ्गी, तपस्वी, निपम्पन, दिग्वास, चक्र, निष्कल, निष्प्रेष,
निष्पार, पाक्षिपात्र, मिलुच, महाप्रती, मादण, मुक्ति, यति,
योगी, वातवसन, विशसन, सयमी (संयन), म्यधिर, साधु,
सन्वस्य, अमण, क्षरणक ।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है :-

१. अकच्छ + —कुंगोटी रहित जैन मुनि;
२. अविज्ञान X —जिसके पास विज्ञित मात्र (मरा
मी) परिग्रह न हो वह जैन मुनि;
३. अचेन्नक या अचेन्नप्रती—चेन्न अर्थात् वस्त्ररहित
साधु । इस शब्द का व्यवहार जैन ग्रंथ जैनेतर साहित्य में
हुआ मिलता है । 'मूलाचार' ÷ में कहा है :-

"अकच्छकं सोचो चोसद्वसरीरदा य पट्टिनिहसं ।

पसो ह्यु तिथकभ्यां चहुन्निश्वा होदिशादग्वा ॥६०८॥"

अर्थ—'अचेन्नक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह
का त्याग, केवल तौंच, कुरी संस्कारका अभाव, मोर पीढ़ी—
यह चार प्रकार सिंगमेष जानना ।'

श्वेताम्बर और ग्रंथ "आचाराङ्गसूत्र" में भी अचेतक शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है :-

"ते अचेतो परि बुक्षिए तरुक्षणं मिरुनुम्बणो एवमवद ।७—"
"अचेतए ततो चार्ह, तं योसज्ज वरथमसुगारे ।" †

उनके 'दास्यङ्गसूत्र' में है "पंचदिं ससुंदिं सामणे निगणये अचेतए सचेतयाहि निगणयोहि ससिं सेवसयाणे वाइकक-
मए ।" अर्थात् "और भी पांच कारणसे इस रहित साधु वस्त्र-
सहित धाव्ही साध रहकर तिरायाधर वस्त्रधन करते हैं ।" ‡

बौद्ध शास्त्रों में भी जैनमुनियों का उल्लेख 'अचेतक' रूप में हुआ मिलता है । जैसे "पाटिकपुत्त अचेतो" —अचे-
हक पाटिक पुत्र, यह जैन साधु थे × । चीनो विपिहक में भी
जैनसाधु "अचेतक" नाम से उल्लिखित हुए हैं । † अचेत
श्रीकाचार बुद्धधोय 'अचेतक' से माघ कर्म के लेते हैं । ‡

४. अतिथि—आनादि सिद्धयर्थं तत्तुरियस्पर्यान्नाय क
स्वयम्, यत्नेनातति गेहं वा न सिधिर्यस्य साऽतिथिः ।

—सागार धर्माभूत अ० ५ श्लो० ४९ ।

जिनके उपवास, व्रत आदि करने की गृहस्थ आचरके समान
अष्टमी आदि कोईकांल तिथि (सारीज) नियत न हो, अथ चाहे कर्तों

५. अन्नगार ६—आगार रहित, गृहस्थाणी दिगम्बर

* आचारा० पृ० १५१ † अठ्ठयाप ६ अवेत । सूत्र ५

‡ दास्य०, पृ० १६१ × ममवुत्त, पृ० १५५ † "धीर" वर्ष ४ पृ० १५३

† अचेतकोऽतिथिचक्षेणो नामो । --LHO. III 246

‡ अवेत०, पृ० ५

मुनि। इस शब्द का प्रयोग—अथवारमहरिसीर्षं... सूत्रा-
चार, अन्तगारभाष्यपरिचर इतो० २ में, अन्तगार महर्षिणां
इसही श्लोक की संस्कृत छाया और "न विद्यतेऽप्यरं गुरुं
सर्वादिनां ैर्षं तेऽन्तगार" इसही श्लोक की संस्कृत टीका में
मिलता है।

श्वेताम्बरीय "अन्ताराङ्ग सूत्र में है: "तं बोसम्ब
वन्धमस्यगारे।"†

६. अपरिग्रही—तिस्रतुपमात्र परिग्रह रहित दिगम्बुनि।

७. अह्नोफ—अज्ञाहीन, जंगेमुनि। इस शब्द का
प्रयोग अनेक ग्रंथकारों ने दिगम्बर मुनियों के लिये घृष्टा
प्रकृत करते दूये किया है, जैसे बौद्धों के 'वाठावंश' में है‡:—

'इमे अहिरिका सध्वे सदादिगुरुवक्षिता।'

पश्चा सठाच दुष्यञ्जा सन्नामोक्त्वा निवन्धया ॥८८॥'

बौद्ध नैवायिक कमलशोक न भी जैनों का 'अह्नोफ'
नाम से उल्लेख किया है (अह्नोफादयथादयन्ति, स्याद्वाप
परीक्षा प्र० 'तत्त्वसंग्रह' पृ० ४८६)। वाचस्पति अमिषानकोप
में भी 'अह्नोफ' को दिगम्बर मुनि कहा है: "अह्नोफ वृषणके
तस्य दिगम्बरत्वेन अज्ञाहीनत्वात् तथात्त्वम्।" 'हेतुचिन्दुतर्क-
टीका' में भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख 'अह्नोफ' और
'अह्नोफ' नाम से हुआ है। तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेव-
चरि ने भी अपने 'स्याद्वाद-रत्नाकर' ग्रंथ में दिगम्बर जैनों

† अथा०, पृ० ११० ‡ इथा०, पृ० १४

का इत्येव शब्दो नाम स किरा ई । (पञ्चाङ्गादरम्भात् १७
२३० +)

८. घाटे—दिग्भ्यश्च मुनि । दिग्भ्यश्चार्थं किरार्थं
अपने दिग्भ्यश्च मुदगो वा उभयत्र इती नाम सं कते
ई * :-

“अत्र तिमणेदिगणि, सत्त्वगुणगणि अत्रमिसाहृदीयं ।
अथपमिय वासुमे मय्यं मुनं च गन्ध च ॥
पुण्यायमिय विश्वा उपजीविता इमा ममत्तोप ।
आगच्छा भिन्वज्जोगु गानिउपभाशित्वा रद्दा ॥”
याद मय घाटे (नाशु) गानिवाधगोती दिग्भ्यश्च ये ।

९. आसी—दिग्भ्यश्च नाशुना एक मेद ई (यद् मुद
श्रीगमगा आदिधारी मासुं निव अरहून होला ई) । श्री
कुन्दहन्दाचार्य इत्यथा इत्यद् इव प्रकाद विदिष्ट करते
ई + :-

‘स्य, गव, द्वांस, मादो, वादो कोटा य जस्त आयत्ता ।
एवं महद्वयधारा शायद्वयं महमियो अशियं ॥६॥’

अर्थान्—सद्, गव, द्वांस याद, माध, लोम, माया
आदि म गदिन जो एंवमद्वयधारी ई, यद् महा अयि ई ।

१०. गच्छी—मुनियो क मसुमे रदनेक काश्च दिग्भ्यश्च
मुनि इम नामने प्रसिद्ध हांतेई । ‘सूताचार’ में इत्यथा उक्तं
विभ्र प्रकाद दुमा ई :-

+ पुस्तक, वर्ष ६ अङ्क ४ पृ० १११-११२
* उक्ति, घट १० पृ० ३१० - अत्र, पृ० ११४

“विस्रमिदो तद्विषयं मोमंसिचा विवेदयद्दि गणित्वा ॥” †

११. गुरु—शिष्यगण—मुनि आवकाठि के लिये धर्म-
गुरु होनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे भी अभिहित है।
वस्तुतः यं मितता है।—

“एवं आपुच्छिता सपथर गुरुणा विस्रिज्यो संतो ॥” ‡

१२. जिनसिद्धी +—जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट
नम्य मये का पालन करने के कारण दिगंबर मुनि इस नामसे
भी प्रसिद्ध है।

१३. तपस्वी—विशेषतर तप में लीन होने के कारण
दिगंबर मुनि तपस्वी कहलाते हैं। ‘गहनकरण्डक आवकाठान’
में इसकी व्याख्या निम्नप्रकार की गई है :—

“विपयाश्चावशातीतो निरात्मोऽपरिग्रहः ।

हास ध्यान नपारकस्तपस्वी न प्रशस्यते ॥ १० ॥” §

१४. दिगम्बर—दिशायें उन के बखर हैं इसलिये जैन
मुनि दिगम्बर हैं : मुनि कमकामर अपने को जैन मुनि हुआ
‘दिगम्बर’ शब्द से ही प्रगट करते हैं :—

“वदरायहं दुबहं दिगंबरेण ।

सुप्रसिद्ध धाम ककुवामरेण ॥” †

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थोंमें भी जैन मुनि इस नामसे
उल्लिखित हुए हैं ‡:

† सूत्रा०, पृ० ४४ ‡ सूत्रा०, पृ०, ६४ + तृतीयः, पृ० ४

* सूत्रा०, पृ० ४ † धीर, पृ० ४ पृ० २०१

‡ विष्णु पुराण में है: ‘दिगम्बरो मुपगतो वदंपथवत्’ [२-२] ‘पद-

१५, विद्याय—पाठ भी नं० १४ के भाषमें प्रयुक्त हुए
केनेर साहित्य में मिलता है। 'दिष्णु पुगलु' में (५१०) में
है—दिश्वामनाथयं धर्मः ।

१६, धम्म—व्याख्यानरूप जैन मुनि होने हैं, इसलिये
बहु जग्न कहे गए हैं। श्री सुन्दरुन्वाचार्य जी ने इस शब्दका
उल्लेख भी किया है—

“भाषेय दाद् र,मो, वादिमिगंग कि च कमेण ।” +
बाराहमिहिर करते हैं—“मन्त्राल जिनातां विदुः ।” x

१७, निश्चल—बहर गहिन होने के कारण यह नाम
है। उल्लेख इस प्रकार है :—

“दिष्णोत्त वागिपनं उपदद्द पन्न विषयविंदीदि ।” +

१८, निर्दोष—प्रत्य अर्थात् अन्तर्भाव सर्वथा
परिमद्, रहित होने के कारण विगमन मुनि इस नाम से
बहुत प्रार्थन वाक्यमें प्रसिद्ध हैं। 'धर्मपरीक्षा' में विप्रैष छात्रु
कां साष्टाभ्यन्तर ग्रन्थ (परिमद्) रहित नाम ही लिखा है :—

‘सकवातान्तरग्रन्थो निष्कपापो जितेन्द्रियः ।

परोपदमदः साधुर्जानहपथरो मतः ॥१८॥७६॥’

पुण्य (वृषिकर, कथाप ६६, प्रयोगचन्द्रोदयनस्य सद् ३ (दिग्मय
विद्वान्), पञ्चमः “रकारी सुदमगहन वागिसाधो दिग्मयः ।”

—पञ्चमः ।

+ स०, ५८ २०० x बाराह मिहिर १६६।

+ स०, ५८ ११

“मूलाचार” में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्ग्रन्थ भी कहा है :—

“वर्षानिखलकेशे य इहया पत्तदिद्या असंवरखं ।
खिन्नास्तप विमगंधं अल्लेखकं जगदि पूज्यं ॥३०॥”

‘मद्रवाहू चरित्र’ के निम्न स्लाक भी ‘निर्ग्रन्थ’ शब्द का भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं :—

‘निर्ग्रन्थ मार्गमुत्सृज्य सप्रस्यत्वेन ये जडाः ।

व्याचक्षन्ते शिवं नृषां तद्वचो न वदामहेत् ॥६५॥’

अर्थ—“जो सुख लोभ निर्ग्रन्थ मार्ग के बिना परिग्रह के सङ्गाह में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना बताते हैं उनका कहना प्रमाथसूत नहीं हो सकता !”

“अहो निर्ग्रन्थता शून्यं किमिदं बौतनं मतम् !

न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदपडादिमण्डितम् ॥१४५॥’

अर्थ—“अहो ! निर्ग्रन्थता रहित यह ब्रह्म पात्रादि खदित बदीन मत बोल है ? इन के पास भोग जाना योग्य नहीं है ।”

‘भगवन्मवान्नाद्वादन्या गृह्णीतामर पूजिताम् ।

निर्ग्रन्थपदवीं पूर्तां हित्वा सत्संमुदाऽखिलात् ॥१४६॥’

अर्थ—“भगवन् ! मेरे प्राग्रह से आप सब परिग्रह छोड़ कर पहले ब्रह्म की हुई देवताओंसे पूजनीय तथा पवित्र निर्ग्रन्थ अवस्था ब्रह्म जीविये ।” ‘सङ्ग’ शब्द का अर्थ अगस्तो सोक में ‘सङ्गं वक्षनादिकमङ्गला ।’ किया है । अतः यह स्पष्ट

है कि निर्रन्ध्र अवस्था ब्रह्मादि रहित दिगम्बर है । किन्तु दुर्भाग्यसे जैनसमाजमें कुछ ऐसे लोग होगए हैं जिन्होंने शिक्षाचारके पोषणके लिए ब्रह्मादि पणिभ्रद्वयुक्त अवस्थाका ही निर्रन्ध्र मार्ग घोषित कर दिया है । आब इनका संग्रहाथ 'श्वेताम्बर जैन' नामसे प्रसिद्ध है ! यद्यपि उनके पुरातन ग्रन्थ दिगम्बर जैनको प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु अपनेको प्राचीन संग्रहाथ प्रकट करनेके लिये वह ब्रह्मादि युक्तही निर्रन्ध्रमार्ग प्रतिपादित करते हैं । यह मान्यता पुष्ट नहीं है । इसलिये संक्षेपमें इस पर यहाँ विचार कर लेना समुचित है ।

श्वेताम्बर ग्रन्थ इस नामको प्रकट करते हैं कि दिगम्बर (नग्न) धर्म को मगधान् श्रुपमवेधने पालन किया था—वह स्वयं दिगम्बर रहे येल्ल और दिगम्बर वेप इतर-वेपोंसे श्रेष्ठ हैं। यद्यपि भयवान् महावीरने निर्रन्ध्र ज्ञानएके लिए दिग-

* 'कलम्बर'—JS. p. I p ५८२ ।

‡ कालाचक्र मूत्र में बद्ध है ।—

"Those are called naked, who in this world, never returning (to a worldly state), (follow) my religion according to the commandment. This highest doctrine has here been declared for men"—
JS. I p 56

"आत्मस्य अस्मिन्मार्गं विमुक्तनिष्कामिणाणाम् ।"

अर्थ—"यथादि कलम्बरयुक्त सवुसे कालस्य रहित निर्रन्ध्रिण वापु विमुक्त दे । (संवाद १६१वमे मुद्रित प्रवचनस्योपरार माग ३ पृष्ठ १५)

अपने बृहत् साम्राज्यमें दिग्म्बर मुनियोंके विहार और धर्म-प्रचार करनेकी सुविधाकी थी। धर्मराजपति भद्रबाहुके संघकी वह राजा बहुत विनय करताथा। भद्रबाहुजी बङ्गाल देशके कोटिकपुर नामक नगरके निवासीथे। एक दफ़ा वहाँ श्रुत-कंबली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिग्म्बर मुनियों सहित आनिकले; भद्रबाहु उन्हींके निकट दीक्षित होकर दिग्म्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामीने संघसहित गिरनारजी की यात्राका उद्योग कियाथा +। इस उल्लेखसे स्पष्टई कि उनके समयमें दिग्म्बर मुनियोंको विहार करनेकी सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहुजी ने भी संघसहित देश-देशान्तरमें विहार कियाथा और वह उल्लेखनी पहुँचे थे। वहाँसे उन्होंने दक्षिण देशकी ओर संघ सहित विहार कियाथा; क्योंकि उन्हें मालूम होगया था कि उत्तरापथ में एक द्वादशवर्षीय विकाल दुष्काल पड़नेको है जिसमें मुनि-चर्याका पालन दुष्कर होगा X। सम्राट् चन्द्रगुप्तने भी इसी समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रबाहु स्वामीके निकट जिन-दीक्षा धारणकी थी और वह अन्य दिग्म्बर मुनियोंके साथ

anas, as opposed to the doctrines of the Brahmanas. (Strabo, XV. i. 60)." --JRAS., Vol. IX pp. 175-176.

† "तमालपञ्चतस्य देशोऽभूत्पौण्ड्रवर्द्धनः ।" --"तत्रकोटपुरं रम्यं शोतते नाकनरदृशत् ।"

'भद्रबाहुरितिख्यातिं प्राप्तवान्वन्धुवर्गतः ।' इत्यादि" --भद्र०

पृ० १०--२३ ।

+ "चिकीपुर्नमितीयेषयात्रां रैवतकाचले ।" --भद्र० पृ० १३ ।

X भद्र० पृ० १७--२१

का व्यवहार 'द्विषन्व्य' साधुके रूप में ही हुआ मिलता है ।
श्रीकाकार उक्त कहते हैं :-

“निर्ग्रन्थो नमः क्षणिकः ।”

इसी तरह सातगाचार्योंकी निर्ग्रन्थ शब्द का द्विषन्व्य
मुनि का व्यवहार प्रकट करते हैं :-

“कथा कीर्तनोत्सव संवादिनाम् भ्वागिना, यथाज्ञान-
रूपया निर्ग्रन्था—निर्ग्रन्थिताः । एते सर्वतन्मूनिः ।”

'द्विषन्व्य' शब्द 'द्विषन्व्य' के मुनिके मुन्से कह-
ाया गया है :-

“अर्हन्तो वेदना मय, निर्ग्रन्थो मुक्तजने ।”

अब यदि निर्ग्रन्थों काय शब्दवाणी भाषु के होते में
द्विषन्व्य मुनि उक्त शब्दों में ही मुक्त न पलाते । इसमें स्पष्ट
है कि यहाँ भी निर्ग्रन्थ शब्द द्विषन्व्य मुनिके रूपमें व्यवहृत
हुआ है ।

“प्रज्ञागङ्गपुराण” के उपोक्तान्त ३ अ० १४ पृ० १०४
के हैं :-

“नानाद्वयं न परमेशु धारुधर्मं व्यर्थस्थितम् ॥३॥”

अर्थ—“अब धारुधर्म में सवे रूप नानाद्वयों का न
है ।” और ज्ञाने एकी शब्द पर ३६ वें श्लोक में लिखा है कि
नानाद्विक हीन है !

“बुद्ध आवत्त निर्ग्रन्था इत्यादि”*

बुद्ध आवत्त शब्द लुक्प्रत्ययके का धोतक है तथा निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनिवा श्रोतक है अर्थात् त्रैलोक्य में किसी भी गृहस्थानी साधुका आदर्शकर्म के समर्थ नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संन्यस है कि वह उपदेश देकर उसकी निम्नतरता प्रकट कर दें। अतः वैदिक साहित्यके उत्कर्षोत्तमो निर्ग्रन्थ शब्द नम साधुके लिये प्रयुक्त हुआ मिल्द होता है।

बौद्ध साहित्य में इसही बातका पोषण करना है। इसमें 'निर्ग्रन्थ' शब्द साधुरूपमें सर्वथानामुनिके भावमें प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान महावीर का बौद्धसाहित्यमें उनके कुछ अपेक्षा निर्ग्रन्थ नामधुन कहा है † और श्वेताम्बर जैन साहित्यसे भी यह प्रकट है कि निर्ग्रन्थ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निर्ग्रन्थ और अचेलक ‡ प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्धोंने 'निर्ग्रन्थ' और 'अचेलक' शब्दोंको एकही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नम साधु के रूपमें। तथापि बौद्ध साहित्यके निम्न उद्धरणोंमें इस ही बातके धोतक हैं—

दीर्घनिकाय ग्रन्थ (१) ७-७६ में लिखा है कि +1—

“Pasandi, King of Kosal saluted Niganthas.”

* वेथै, पृष्ठ १६।

† मज्झिमनिकाय १.६२; धम्मपनिकाय १.२९०।

‡ आसक मा० २.१० १२७—वमवु० २.१२।

+ Indian Historical Quarterly, vol. 1. p. 153

सर्वात्—हीममया राजा वमेनदी (प्रमेतजिन)निगन्धो
(नमन जैन मुनियों) को समझाना जाना था ।

बीहड़ों के "महाशया" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि "एक
बड़ी संख्या में विप्रसंघस्य वैशाली में, मडक २ और चौगटे
चौगटे पर श्याम मसाले दंड गूदे थे ।" इस उल्लेखमें दिग्गजर
मुनियोंका उस समय निर्वाण रूप में आज मार्गी में चलने का
समर्थन होना है । ये अष्टांगी जीव चतुर्दशों को इच्छते होकर
धर्मोपदेश भी दिया करते थे - ।

'दिशाशावसु' में भी निर्वाण्य भाषु को नमन कथित
लिखा है X । 'दाशनिशाप' के 'पानादिक सुत्तम्' में है कि
"इह विगन्धे गानुत्सवा निर्वाण्य लंगया नर निर्वाण्य मुनि
आपसमें मगदुने करते । उनके इस मगदुनेका संबन्ध श्वेतशर
धारी धर्माधारक चट्टे दृग्भी दृष्टे - । तब यदि निर्वाण्य भाषु
भी श्वेतशर धारणमें होंगे तो धारकोंके लिये बह एक विशेष-
रूप रूपमें न लिये जाने । अतः इसमें भी 'निर्वाण्यभाषु' का
नमन होना प्रकट है ।

'दाशायंभो' में 'अट्टिन्ध' शब्दके साथ साथ निर्वाण्य
शब्दका प्रयोग जैनभाषुके लिये द्वारा मिलता है + । और

* महाशया १ । २ । १ । श्लोक ५० महाशयौ चौर म० ५५ पृ० २५०

X पदम० पृ० १११ ।

+ "नम्य कार्त्तिकविक्रम जिन्वा निगन्ध द्वैविध आसा, धरहर
आसा, धरहर आसा एको एव गोमेनेनियन्तेषु पञ्चदशित्वेषु कति
धे वि विगन्धम् पाषणुनाम मायव्य गिरी चोदगमरता" "हृ स्वरातो
इत्यस्मि" (PTS. III 117-118) पदम० पृ० ११४

+ "इमे अट्टिन्धिय मये महाशियाय वजिजता । एका अश्वदुप्यन्ता

'अहीक' या 'अहिरिक' शब्द नग्नता का द्योतक है। इसलिये बौद्ध साहित्यानुसारही निर्ग्रन्थ साधुको नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षीभी इसी बातको पुष्ट करती है। कदम्बवंशी महाराज श्रीविजयशिवसुरेश चर्मने अपने एक दाम-पत्रमें अहन्त् भगवान और श्वेताम्बर महाभरण संघ तथा निर्ग्रन्थ अर्थात् दिगम्बर महाभरण संघके उपभोगके लिये कालवह नामक ग्रामको भेंट में देनेका उल्लेख किया है ० । यह ताम्रपत्र ई० पांचवीं शताब्दिका है। इससे स्पष्ट है कि उसके श्वेताम्बरनी अपनेको निर्ग्रन्थ न कहकर दिगम्बर संघ को ही निर्ग्रन्थ संघ मानते थे। यदि यह बात न होतीतो वह अपनेको 'श्वेनपट' और दिगम्बरको 'निर्ग्रन्थ' ब लिखाने देते।

कदम्ब ताम्रपत्रके अतिरिक्त विक्रम सं० ११६१ का श्रावणपरसे मिला एक शिलालेखभी इसी बातका समर्थन करता है। उसमें दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निर्ग्रन्थनाथ' अर्थात् दिगम्बर मुनियोंके नाथ श्रीभिनेन्द्रका अनुयायी लिखा

उपामोक्ष विवर्णता ॥८८॥ इति सो चिन्तयित्वाथ गुरुसीधो भवामिषी ।
पञ्चाक्षेति सकासु चिबच्छे ते कसेसके ॥८९॥'

—यज्ञार्पणो १० १४

*—... कदम्बना श्रीविजयशिवसुरेशचर्मना कालवह नाम
निषा निषज दत्तान् कर्मभूमिर्हच्छाता पश्यपुष्कलस्याच विवर्णित्यः
आपर्वशमहाजिनेन्द्र वेवताभ्य एकोयानः द्वितीयोर्हृषोक्तदम्बर्केश परस्य
श्वेनपट महाभरणसंधौपवीणाय तृतीयो निर्ग्रन्थमहाभरणसंधौपवीणाय-
वेति

—जैदि० मा० १४ पु० २१६

है। अतः हमसे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बर मुनि का चीजक है -।

चौथी यात्री क्षान्धगदः चर्चने भी यही स्पष्ट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' का भाव कम अर्थान् दिगम्बर मुनि है :-

"The label 'Nigrantha' distinguished themselves by leaving their bodies naked and putting on the shawl" (Dr. Julia Yastura, p. 221)

अतः हम सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द का हीन भाव दिगम्बर (नग्न) मुनिका है।

१६. निरागार—आगार घर आदि परिसर रहित दिग्ंबर मुनि। 'परिगहनदिको निरागारो' है।

२०. शालिपात्र—एखाद ही जिनका मोहनपात्र है, यह दिगम्बर मुनि।

'निष्केन पशिवस्तं उपदष्टुं वरुण शिष्यवति देहि।'

२१. विस्तक—भिक्षागृहिका धारक होनेके कारण दिग्ंबर मुनि हम नामसे प्रसिद्ध होता है। हमका उल्लेख 'मूलान्धारा' में मिलता है :-

+ The Grahana in corp. of Vik S 116) (1101 A 12)

"It was composed by a Jaina Yasodhara, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nigranthauntha)"--Catalogue of Archaeological Exhibits in the U. P. P. Museum Lucknow. Pt I (1915) P. 44

† पृष्ठ, पृ० ५०

‘ससुवचकायपञ्ची भिन्नु साधुजकजसंस्तुता ।

खिप्यं विचारयतो लोदि दु गुप्तो हवदि पसो ॥३३१॥’

२२, षडाम्नीऽ—पंच महाप्रतीको पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे प्रगट हैं ।

२३, माहण—प्रमत्त त्यागी होनेके कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है ।

२४, मृति—दिगम्बर साधु । श्री कुन्दकुन्दाचार्य इस का उल्लेख मृं करते हैं + :-

‘पंचमहोवच स्तुता पचिदिय संभ्रमा शिरावेस्ता ।

सज्जस्यस्यश्च स्तुता मुषिधर वसहा पिरच्छति ॥’

२५, पति—दि० मुनि । कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

‘सुद्धं संभ्रमधर्यं जदधम्मं सिक्कलं वोच्छे ।’ x

२६, योगी—योगनिरत होनेके कारण दि० साधुका यह नाम है । यथा + —

‘खं जायियुसु जोहं ओ अत्थो बोद अथ अणवरयं ।

अथावाहमणं अथोवयं लहद विवसाणं ॥’

२७, वातधर—वायुरूपी धरणीधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि । ‘अमस्य दिगम्बरया अमस्य वातधरनाम’—इतिनिघण्टुः

२८, विवसन—बख रहित मुनि । वेदान्तसूत्रकी टीका में दिगम्बरस्यैव मुनि ‘विवसन’ और ‘विखिप्’ कहेजाए हैं ।

† इत्यैव, पृ० ४ + अट० पृ० १५२

x अट० पृ० ६६ + अट०, पृ० २६०

* वेदान्तसूत्र १-१-२३ गङ्गनाथ—श्री ११ २ पृ० १२०

२६. मंगवी (मंगू)—यमनिवर्तिका धानक वां दि
गम्बर मुनि । उल्लेख दं है :-

‘पंचमहर्षयः सुतो तिष्ठि मुत्तिटिं जो स संज्ञदो होइ ।’

२७. रघुविंश—दीर्घ तपस्वी रूप दिगम्बर मुनि ।
‘सुलाचार’ में उल्लेख इस प्रकार है :-

‘मथ न वपाद् वासो इत्ये रमे तस्थि पंच आधारा ।
आह्नित्यवल्गाया पवस येन यवधरा य ॥’

२९. माधु—सागनाथना में लीन दिगम्बर मुनि ।
इसको भी कुछ परिग्रह व ग्रन्थों का विधान है :-

‘याह ना चांदिमत्त परिग्रह मत्तं न शंङ्क साहस्यं ।
हुंजेह पांशुपत्ते दिगम्बरं इह उपमिम ॥१७॥’

३२. मन्वन्त—सन्ध्याम ग्रहण किये द्युये ह्येन के
वाग्देवि मुनि इस नाम से भी प्रख्यात है ।

३३. भ्रमर—अर्थात् समरसोभाय सहित दिगम्बर
माधु । उल्लेख दं है —

‘बन्धे मय मानवणां (यष्टे तपः भ्रमरान्) +
‘यवत्तोर्गोत्त य पदमं विदिमं सुव्यन्य सज्जदो मेत्ति ।’ X

३४. झरणाक—यस्य माधु । दिगम्बरवर्त्य योगीन्द्र
वंश के यह श्रुष्ट दिगम्बर साधु के जिन प्रशुक्त क्रिया है :-

† यद्, पृ० ३६ • मु० १०, पृ० १६ X यद्, पृ० ६०
‡ पृ० ३६, पृ० ४ † यद्, पृ० ३० X पृ० ३०, पृ० ४६
+ ‘कर्मोत्तम इत्यर्थ’—भा० पृ० ६४०

“तस्यात्र बृहत् रूपेण सारं पंडितं दिव्यु ।
सर्वेषु बृहत् सेवहृत् सूहृत् मण्युः सभ्यः ॥३॥”

श्वेताश्वर जैन ग्रन्थों में भी दिवम्बर मुनियों के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है * ।—

“श्रीमायुगवकुलजोऽपिषमुद्रं सूरि—
गच्छं शशास किञ्च समवसु प्रमास (?) ।
जित्वा तदां क्षपणकान्स्ववर्गं वितेने
नार्द्धदे (?) भुजयनाथनमस्य तीर्थे ॥”

श्री मुनिमुन्द्र सूरि ने अपनी गुरुवाक्यों में इस बचोक के भाव में ‘क्षपणकान्’ की जगह ‘दिग्बसनान्’ शब्द का प्रयोग करते इसे दिग्बस मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है † । श्वेताश्वराचार्य हेमचन्द्र ने अपने श्लोक में ‘नद्य’ का पर्यायवाची शब्द ‘क्षपणक’ भी दिया है ‡ । यही बात श्रीमदत्तलोक के श्लोक से भी प्रकट है † । अजैन शास्त्रों में भी ‘क्षपणक’ शब्द दिग्बस जैन साधुओं के लिये व्यवहृत हुआ मिलता है । ‘क्षपणक’ कहता है x ।—

“निर्णयो नद्यः क्षपणकः ।”

“अहं त्वमहसिदि” (पृ० १६९) से भी यही प्रकट है।—

“क्षपणक्य जैनमार्गसिद्धान्तकार्तृका इतिहेचिन ।”

* पृ० ११६

† पृ० १३०

‡ ‘नद्यो निष्कसति वारणे च क्षपणके ।’

† ‘क्षपणिकु वित्ते स्यात्पु सि क्षपणिको ।’

x IBQ III, 246

“प्रबंधसंग्रहोत्तर” (शब्द ३) में भी यही निर्दिष्ट किया गया है :-

“शुपयकवेद्यो दिगंबर विद्यान् ।”

“संनन्दश्च अर्षर्षित्ताररत्तय”^१ “दशकुमार चरित्र”^२ तथा “मुद्राराक्षस लटक”^३ में भी “शुपयक” शब्द दिग्भर बलिके लिए व्यवहृत हुआ मिलता है । मोगियर विद्विषमके ‘संस्कृतभाष’ में भी इसका अर्थ यही लिया है+ ।

इस प्रकार उपरोक्त वाक्यों में दिग्भर जैन मुनि प्रसिद्ध हुए मिलते हैं । उनपर हमें से किसीमें शब्दका प्रयोग दिग्भर मुनिच्य घोषक की समझना चाहिये ।

216 XIV 14

१ (पुस्तक विद्यालय) -- “संनन्दोत्तर” नामक कविताओं में दिग्भर ।

२ द्वितीय अष्टावक्र की कथा ३ पृ० ३१ ।

३ मुद्राराक्षस शब्द ४-श्लोक, पृ० ३ पृ० ३३ ।

+ ‘Kṣapaka’ is a religious, unorthodox, and easily
of Jain mythology. The word is also mentioned in
William’s Sanskrit Dictionary p 320

इतिहास-तीतकालमें दिगम्बर मुनि ।



“आतिथ्यरूपं मासुरं महावीरस्य मम्मदुः।
रूपमुपसदा मेनसिञ्चो रात्रीः सुगच्छना ॥”

—यजुर्वेद अ० १६ मंत्र १४ ।

भू रतवर्षका ठोक ठोक इतिहास ईस्वीपूर्व आठवीं शताब्दि तक आवा जाता है । इसके पहले की कोई भी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती; यद्यपि भारतीय विद्वान् अपनी २ धार्मिक-धार्ता इस ज्ञानसे भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं । उनको यह धार्ता 'इतिहास-तीत काल' की धार्ता समझनी चाहिये । दिगम्बर मुनियों के विषय में भी वही बात है । भगवान् ऋष-भदेव द्वारा एक अज्ञात अतीतमें दिगम्बर मुद्राका प्रचार हुआ और तबसे यह ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दि तकही नहीं बल्कि आजतक निर्वाध प्रचलित है । दिगम्बर मुद्राके इस इतिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीष्ट है !

इतिहास-तीत कालमें प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन-सन्नाद और जैन तीर्थकरोंका होना प्रसट करते हैं और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्राका प्रचार भारतमें ही नहीं बल्कि बुर हूर देशों तक होगया था । दिगम्बर जैन आम्नायके प्रथमाहुयोग

सम्बन्धी ज्ञान हम कला धारियों से गढ़े हुये हैं, उनसे हम नहीं सुहराना नहीं चाहते। प्रत्युत जैनस्य ज्ञानियोंके प्रमाणोंको उपमित्यन कर्मके हम यह विश्व करना चाहते हैं कि दिग्गजों मुनि प्राचीन कालमें होने ज्ञाने १ और उनका विद्वान् सर्वत्र विज्ञांय कर्ममें रोजा रहा है।

भारतीय साहित्यमें यह प्राचीन ग्रन्थ माने गये हैं । ज्ञानः प्रथमे पश्चिमे राष्ट्रीय आध्यात्म न उदय व्याख्या को पुष्ट करना छोड़ है । किन्तु हम सम्प्रति यह जान पकाने के योग्य है कि वेदोंके ढोच २ शब्द व्याप्त नहीं मिलने हीं भारतीय पद्योंके पारम्परिक विगं उदय कालमें बहुतसे वेदोंके उद्देश्य जतमें से निराल दिये गये कथका कथं पदसङ्ग सम्बन्धे गये हैं जिनसे वेद-शास्त्र सम्प्रदायों का समर्थन हुआ था । इसीके साथ यह मानने है कि वेदोंके पारम्परिक कथं काल ही नहीं मुहूर्तों परसे नुम हीं नुदे वेद शोभ गयी काल है कि एक ही वेदके अनेक शिखर भाव्य मिलते हैं । अतः वेदोंके मूल शायोंके अनुसार उन व्याख्याकी पुष्टि करना बड़ा शरीष्ट है !

'पञ्चवेद' का १६ भाग २४ में, जो हम पञ्चवेदोंके व्याख्यानमें दिया हुआ है, शक्तिमती शैले महावीरका स्मरण करके शिरोपहार साथ किया गया है । 'महाश्रीर' और 'सत्त'

• १० पृ. १ अं महाश्रीर का कर्तृक विद्वान् श्रीमद् वेदों की समर्थक कालका है । [संशोधन दि. १९५६, ५ अंक, विपण २२-३] कलकत्ता का समर्थन करता है । [मिथिल १६८] का 'Asur India' 17

शब्द जो उक्त मन्त्रमें प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रन्थोंमें अस्तिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं। इतिहासे इस मन्त्रका सम्बन्ध मगवान् महावीरसे मानना ठीक है। जैसे बौद्ध साहित्यादिसे स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नष्ट साधु थे। इस अवस्थामें उक्त मन्त्रमें 'महावीर' शब्द 'मश' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ। इस बातका द्योतक है कि उसके रक्षयिताको तीर्थंकर महावीरका बख्शेण करना इष्ट है। इस मन्त्रमें जो श्रेय विशेषण हैं वदभी जैन तीर्थंकरके सर्वथा योग्य हैं और इस मन्त्रका फलभी जैन शास्त्रानुसूच है। अतः यह मन्त्र स० महावीरको दिगम्बर मुनि प्रगट करता है !

किन्तु मगवान् महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं; इसलिये उनसे पहलेके वैदिक बख्शेण मन्त्रुत कर्ता बचित है। खीभाषणे हमें 'ऋक्संहिता' (१०। १३६-२) में ऐसा बख्शेण निम्न शब्दोंमें मिल जाता है:—

"मुनयो वातवसनाः ।"

महा यह वातवसना—दिगम्बर मुनि कौन थे ? हिन्दू पुराण ग्रन्थ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे, जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। औरभी देखिये, श्रीमद्भागवतमें जैन तीर्थंकर ऋषभदेवते जिन ऋषियोंको दिगम्बरत्वका उपदेश दिया था, वे 'वातरश्नानां ऋषयः' कहे गये हैं। ओ० बख्शेण

† वेदो, पृ० २५-१०

‡ वेदो, पृ० १

वेदों भी उक्त धारणाओं द्वारा ही जैन मुनियों के लिये प्रयुक्त हुआ अथवा परतें हैं ! x

इसके ऐतिहासिक अर्थवेद (श. १५) में जिन 'वाच्य' पुरुषोंका उल्लेख है, वे दिनम्बर जैसे ही हैं, क्योंकि वाच्य 'वैदिक संस्कार हीन' बनाये गये हैं + और उनकी क्रियायें दिनम्बर जैनों के समान हैं। वे वेदविरोधी थे। मत्त, मत्त, निष्कर्म, ज्ञान, परमात्मता और आदिष्ट एक मात्र कृषीकी सन्तान बनाये गये हैं - और वे सब प्रायः जैनधर्मसम्बन्धी थे। ज्ञानार्थवेदों का अर्थ समझाने में आदिष्टका अर्थ हुआ था। तथापि अन्तर्गत में भी जैनों 'वैदिक' (Vedic) नामसे आदिष्ट कह चुके हैं, जो 'वाच्य' के अर्थ में ज्ञानार्थ शब्द है। अन्तर्गत में इन जैनधर्मसम्बन्धी वाच्योंमें दिनम्बर जैसे मुनिकों का नामाङ्कन है। 'अर्थवेद' भी इस धारणाओं प्रयुक्त करता है। उसमें वाच्यकं का अर्थ 'हीन वाच्य' और 'ज्येष्ठ वाच्य'

ML, Vol. XXX, p. 20

+ अन्तर्गत श. १५ व. १५०. वाच्यार्थों की सूची करने के:- "वाच्य नाम वाच्यार्थो गीतादिभिः पुराणैः। सोऽर्थो वाच्यार्थो विदितः इति। एते वाच्यार्थोः। इत्यादि।" - अर्थवेद संहिता पृ. १६३

+ पृ. १५०

• पृ. १६७-१६८

† "वाच्य" जैनों है, इनके लिये "न. पार्थिवार्थ" की प्रस्तावना की गयी।

किये हैं। इनमें स्पेष्टवारण दिगम्बर मुनिका श्रोतक हैं, क्योंकि
इसे 'समनिचमेद्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है
'अपेक्षप्रजननाः' *। यह शब्द 'अहीक' शब्द के अङ्कुरूप है
और इससे स्पेष्टवारण का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदोंसे भी दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व
सिद्ध है। अब देखिये उपनिषद् भी वेदोंका समर्थन करते
हैं। 'जाषालोपनिषत्' निम्न शब्दका उल्लेख करके दिगम्बर
साधुका अस्तित्व उपनिषद् ज्ञानमें सिद्ध करता है :—

“यथाज्ञातरूपधरो निम्नैवो निष्परिग्रहः.....”

शुक्लध्यानपरमणुः.....।” (सूत्र ६)

निम्न शब्द साधु यथाज्ञातरूपधारी तथा शुक्लध्यान
परमणु होता है। सिवाय निम्न (ज्ञान) मार्ग के अन्यत्र

* मया०, परस्तातना पृ० ४४-४५

† जैन धर्मग्रन्थान्तर्भवस्योक्तं स्व० पं० दीनदत्तजी जी के आश
से आत्म्य दोषद्वयं सौ वरं भद्रे (!) निम्न वेद मंथी का उल्लेख करने
पर 'मोक्षसामान्यकार' में किया है और ये जो दिगम्बर मुनियों के श्रोतक
हैं—

१. अक्षेद में आया है—“श्लो३म् वैश्वेदेव कतिचित्तान् चतुर्विंशति
श्रीशैकान् अथवाञ्च श्रद्धेयान्ताम् सिद्धान् शरणां पश्य । श्लो३म् पवित्रं
नम्यपुत्रियस्यपदे पर्यां नाना सावित्रीणां वी॥ इत्यादि।”

२. यजुर्वेद में है—“श्लो३म् नमा अहीतो अथमीर्त्तं अरामपवित्रं पृच्छत-
मध्वं यज्ञेषु नम पश्यमाह ससृजत् वरं अङ्गु जयत्तं पशुचिदं मनुष्यविति
स्वाहा।” —“नं वरं सुवीरं दिव्यासक्तं मन्त्रमथौ सनातनं इवैमि वीरं
पुंसमर्हं तथादित्य वर्यां तमसः परस्तात स्वाहा।” (पृ० २०२)

कहाँ भी शुक्ल ध्यान का बरुन नहीं मिलता, यह कहते भी लिखा जा चुका है। 'मैत्रेयोपनिषद्' में 'दिगंबर' शब्दका प्रयोग भी इसी शानका शोक है †) 'मुण्डकोपनिषद्' की रचना शृगु अहुरिस नामक एक शृष्ट दिग० जैन मुनि द्वारा हुई थी और इसमें अनेक जैन मान्यतायें तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'मिर्गन्ध' शब्द, जो खास जैनोंका पारिभाषिक शब्द है, इसमें उपबहुत हुआ है और इसका विशेषण केम-साँच (गिरांशतं विधिवद्यैस्तु चीर्यं) दिया है +। तथा 'अरिष-नेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियों के षाषीसवें तीर्थंकर है X। इससे भी उस काल में दिगंबर मुनियोंका होना प्रमाणित है।

अब 'रामायणकाल' में भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को देखिये। 'रामायण' के 'शतकावच' (सर्ग १८ श्लो० २२) में राजा दशरथ अमर्यों को आहार देते बताये गये हैं ("दापसा मुञ्चते चापि अमया मुञ्चते तथा ।") और 'अमर्य' शब्द का अर्थ 'भूषणवीर्य' में दिगम्बर मुनि किया गया है +, जो ठीक है, क्योंकि दिगम्बर मुनिका एक नाम 'अमर्य' भी है। तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्र जो आदि को जैनमत्त प्रगट करते हैं +। 'योगवासिष्ठ' में रामचन्द्र जो

‡ "दिगम्बरमुनिपुत्रीस्मि दिगम्बर मुनीन्पहम् ।" --दिगु, ६० १०

+ और, १११ ॥ १४३

X "स्वस्ति मन्त्राक्षो अरिषनेमिः ।" --द्वैत, ६० १४

+ "अमया दिगम्बरः अमया कलमसरा ।" + ११११११११

'शिवमगवान' के समान दोमे की इच्छा प्रगट करके अपनी जैनमक्ति प्रगट करते हैं *। अतः रामायण के उक्त उल्लेखसे उस कालमें दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महामारत" में भी 'मग्न ज्ञपणक' के रूपमें दिगंबर मुनियों का उल्लेख मिलता है †, जिससे प्रमाणित है कि "महामारतकाल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैनशास्त्रानुसार उस समय स्वयं तीर्थंकर अरिष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथों का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव जी को श्री-सङ्गाधवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते हैं, वह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है वह देखिये †। वहाँ मैत्रेय पाराशरऋषिसे पूछते हैं कि 'मग्न किसको कहते हैं?' उन्परमें पाराशर कहते हैं कि "जो वेदको न माने वह मग्न है।" अर्थात् वेदविरोधी नंगे साधु 'मग्न' हैं। इस संबंध में देव और असुर संग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णुके द्वारा जैनधर्म की स्थापति हुई, यह वह कहते हैं। इसमें भी जैनमुनिका स्वरूप 'दिगंबर' लिखा है—

* योगवाक्य अ० १५ श्लो० ५

† आदिपर्व, अ० ६ श्लो० २६-२७

‡ विष्णुपुराण सूक्तियोग अ० १७ व १८—वेदो, पृ० १५ व पुन-
र्यम ५१८०

“उतो दिगंबरो मुंडो बर्हिषत्र चरो द्विज ।”

देवस्युत सुख की घटना इतिहासात्मीन कालकी है।

अतः इन उद्देश्य से जो उम प्राचीन कालमें दिगंबर मुनिका अभिन्तव्य प्रमाणित होता है। तथा वह निर्वाच विहार करते थे, यहमो इससे प्रगट है, क्योंकि हममें क्या गया है कि वह दिगंबर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरों के पाप एखिका और उन्हें निवृत्तमें में दीक्षित कर लिया !:

‘पद्मपुराण’ प्रथम सर्गि छट १३ (पृ० ३३) पर जैनधर्म की उत्पत्ति के संक्षेप में एक ऐसीही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रूप दिगंबर मुनि द्वारा जैनधर्म का विकास हुआ बताया गया है :—

धृष्टपति आदायार्थं विष्णुना मायामोह समुपात्तम्
दिगम्बरेण मायामोहेन वैशान्द प्रति जैनधर्मोपदेशः-दानकार्यं
मायामोह मोहितानां गुरुणा दिगंबर जैनधर्म दोषा दानम्

मायामोह को इसमें “योगी दिगंबरों गुरुओं बर्हिषत्र-धरो ह्येव” लिखा है + । इससे जो उक्त शोको वाक्यों की पुष्टि होती है।

इसी ‘पद्मपुराण’ में (मूलखंड अ० ६६) x में राजा वैशु की कथा है। उसमें लिखा है कि एक दिगंबर मुनिने उस राजा को जैनधर्म में दीक्षित किया था। मुनिका स्वरूप यं लिखा है :—

↓ पुस्तक अ० ७६ + पृ० १५

x R. O Dutt, Hindu Shastras, pt. VIII pp 218-

23 व JG XIV 89

"बद्धरूपो महाकाय सितमस्तुभो महाप्रभः ।
 मातुर्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां सदिधारयन् ॥
 घृहीत्वा पानपावस्य तारिकेण मयं करे ।
 पठमानो भरच्छास्त्रं वेदशास्त्रं चितूपकम् ॥
 यत्रवेशो महाराजस्तत्रोपापास्वयान्विताः ।
 समार्यां तस्य वेगास्य प्रविशेश सपापशाद् ॥"^१

वह बद्ध आशु महाराज वेणु की राजसभा में पहुंच
 गया और घमौंघदोष देने लगा + । इससे प्रगट है कि दिगंबर
 मुनि राजसभा में भी वे रोक टोक पहुँचते थे । वेणु ब्रह्मासे
 छुपी पीढ़ी में थे + । इसलिये वह एक अतीव प्राचीनकाल
 में धुये प्रमाणित होते हैं ।

'वासुपुराण' में भी निर्ग्रन्थ अमर्याका उल्लेख है कि
 आर्यमें इनको न देखना चाहिये ।*

'स्कंधपुराण' (प्रभासखंडके वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य
 अ० १६ पृ० २९१) में जैनतीर्थंकर नेमिनाथको दिगम्बरमुनिके .
 अलुक्ष्य मानकर आप करवेका विधान ही :-

+, वस्तु घनाया नि मरे मत मे--

"महंतो देवता यत्र निपन्थो गुरुचरते ।

इया वै परयो धर्मस्तत्र मोक्षो प्राप्नोते ॥"

यह सुनकर वेणु गैरी होगया । (एवं वेणुस्य वै चरु-दृष्टिरेव
 महत्प्रभः । धर्मान्तरं पालित्यस्य कथं चापि मतिर्नैव ॥) जैन सभ्याद् आर्येण
 के सिखायेक से भी राजा ईश्वर का जैसी होगा प्रमाणित है । (सर्वज्ञ शौच
 दो निहत्त पश्च सोढीता रिसर्च सोसम्बो, भा० २१६ पृ० २९४)

+ JG. XIV 162 *पुराणम्, पृ० ३ पृ० १८२

† के०, पृ० १४ ।

"सामन्तेषु तत्रैकान्तं तत्र तीर्थावगाहनम् ।
 बाह्यप्रपुत्र शिषोदृष्टः स्वर्गदिग्धे दिग्गम्बर ॥६५॥
 पश्चात्तत्र स्थितः सौम्य स्तम्भात् तत्र संस्मरन् ।
 प्रतिपद्यथ महामूर्तिं पूजयामासनासुरम् ॥६५॥
 मनोभोषार्यं सिद्धयर्थं ततः सिद्धमवाप्तवान् ।
 नेमिनाथ शिवेत्येषं नामकञ्चै शृणुमः ॥६६॥"^१

इस प्रकार दिग्विजय प्रणयनी इतिहासगीतिकात्मक
 दिग्गम्बर केन मुनियोंका होना प्रमाणित करते हैं ।

बौद्ध ग्रन्थोंमें भी ऐसे बहुरोज मिलते हैं जो अथवा
 महावीरके पहले दिग्गम्बर मुनियोंका होना सिद्ध करते हैं ।
 बौद्ध साहित्यमें अन्तिम तीर्थंकर निर्मल्य महावीरके अतिरिक्त
 श्री सुपाश्वर्य अमन्तद्विन + और श्री पुण्यवन्त x के भी नामों-
 का उल्लेख मिलता है । यद्यपि उनका सम्बन्धमें यह स्पष्ट बख्शे
 नहीं है कि वे तीर्थंकर और नव थे; किन्तु जब तैल साहि-

१ 'ब्रह्मवर्ण' (१९१-११ SHE. p 144) में लिखा है कि बुद्ध
 एकदिवस केन पहले पर्यन्त महाश्री भारती बाही कर्म "सुम्पतिप"

के मंदिरमें गये । इसके बाद इस मन्दिर में अनेक अनेक श्री सिद्धा ।
 इसका भी उल्लेख है कि इस लेख मंदिरके उदयकालमें यह यह नाम सिद्ध
 कि य० बुद्ध सब केमपुत्रि यद्गो यद् हा कर्तुं अपना अदर करना येक
 दिया । विशेष के लिए देखो मसु० पृ० ५०-५१

+ एक ब्राह्मणक अमन्तद्विनके अपना गुरु बताया है । अन्ते-
 विहारे केनपर्यन्त बहुत कुछ सिद्धा था । यथा यह अमन्तद्विन तीर्थंकर ही
 होना चाहिये । अस्तित्व-विवेक-पुस्तक LHQ III, 247

x 'ब्रह्मवर्ण' में पुनर्दत्तको एक बुद्ध और ११ अथवापुत्रक अथवापुत्र
 बताया है । —ASM. p. 30.

त्वमें उस नामके दिगम्बर वेषधारी तीर्थंकर महासुनीश मिलते हैं, अब उन्हें जैन और नमन मानना अनुचित नहीं है। वैशेषीय साहित्य म० पार्श्वनाथके तीर्थधर्ती मुनियोंको नमन प्रगट करता है X । अतः इस ओतसे भी प्राचीनकालमें दिगम्बर मुनियोंका होना सिद्ध है।

इस अवस्थामें जैनशास्त्रोंका यह कथन विश्वसनीय उभरता है कि म० श्रुपभनाथके समयसे बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आ रहे हैं और उनके द्वारा जनताका महत कल्याण हुआ है। जैनतीर्थंकर सबही राजपुत्र थे और बड़े २ राज्योंको त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारतके प्रथम सम्राट् भरत, जिनके नामसे यह देश भारतवर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुयेथे। उनके भाई श्रीवाहुषक्तिजो अपनी तपस्याके क्षिप्र प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रूपमें उनकी महान् मूर्ति आजभी अद्वेषवेज्ञाथोक में दर्शनीय वस्तु है। उनकी बस महाकाय जगतमूर्तिके दर्शन करके श्री-पुरुष, याज्ञक बुद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशास्त्री समझते हैं। रामचन्द्रजी, सुप्रोष, बुधिष्ठर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस कालमें हुये हैं, जिनके भव्य-धरिबोले जैन शास्त्र गये हुये हैं। सार्गशतः गतकालमें भारत में दिगम्बरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

X 'महावम' [१-४०-६] में है कि बौद्ध विषयमें जने और भोजन पावहीन मनुष्यों को दीवितकर जिना; चिसपर लोग कहने लगे कि बौद्धजी "तिथिधर्म" को बध करने लगे। तिथिधर्म म० बुद्ध और म० महावीर से प्राचीन साधु और आत्मा दि० जैन साधु थे। इतिहिये एन्डे म० पार्श्वनाथ के तीर्थंकर मुनि साधना दीक है। मसपु०, पृ० २३६-२३७. व जैसिभा०, ११-१/२४-२६; तथा IA, august 1980.

दिग्भङ्गस्तु श्रीं दि० पुरि



श्री बाहुबलि गोम्मट स्वामी, भवण्य बेलगोला] [पृ० ८४]

भ० महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि ।

'निगण्ठो, ब्राह्मणो नाथपुत्रो मन्वन्तु, सध्वदस्ताद्यो
अपरिसेसं प्राण दस्सनं परित्तानाति ।'

—सम्मिन्निकाय ।

'निगण्ठो नाथपुत्रो संधी सेव पणी च गय्याचार्यो च
प्राहो वसन्तीनिरयकरं। साधु सम्मतो बहुजनस्त रक्षस्तु चिर
एवसितो अदयतो वयो अनुत्पत्ता ।' —दीघनिकाय ।

भगवान् महावीर वर्द्धमान् शातृवंशी क्षत्रियोंके प्रमुख
राजा सिद्धार्थ और रानी श्रियकारिणी विशालाके
सुपुत्र थे । रानी विशाला परिक्रमण राष्ट्रसंघके प्रमुख सिद्धवि-
अग्रणी राजा चेटकरी सुपुत्री थीं । सिद्धवि क्षत्रियोंका
आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था । प्रकृत क्षत्रियों
की बसती भी उसीके निकट थी । कुण्डग्राम और कंसलग-
सन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे । भगवान् महावीर वर्द्धमान
एव जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और वह अपने शातृवंशके
कारण "शातृपुत्र" के नामसे भी प्रसिद्ध थे । शीघ्र प्रथममें
जन्म बरसेवा इसी नामसे हुआ मिलता है और वहां बर्द्ध

म० गौतम बुद्धका समन्वयहीन पताथा गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो म० महावीर आजसे लगभग डार्ड हजार वर्ष पहले इस घरातलको पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।

मरी खजानी में ही महावीरजी ने राजपाठका मोह त्याग कर विगम्वर मुनिका रूप धारण किया था और नीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थ-हर होगये थे। 'मच्छिन्ननिष्ठा' नामक बौद्ध ग्रन्थमें उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शनका प्राप्ता लिखा है। तीर्थहर महावीरने सर्वज्ञ होकर देश-विदेश में भ्रमण किया था और उनके धर्म प्रचारसे लोगोंका आत्मकल्याण हुआ था। इनका विहार संघ सहित होता था और उनकी किन्तु हर कोई करता था। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' में लिखा है कि "निग्रन्थ ज्ञातुपुत्र (महावीर) संघके नेता हैं, महाचार्य हैं, दर्शन विशेषके प्रणेता हैं, विशेष विरघात हैं, तीर्थहर हैं, बहु मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत कालसे साधु अवस्थाका पाहन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"^१

जैन शास्त्र 'हरिवंश पुराण' में लिखा है कि 'मगवान महावीरने अपने (काशी, कौशल, कौसल्य, कुलंध, आम्बट,

* विशेषके लिये इसका "मगवान महावीर और म० बुद्ध" नामक ग्रन्थ देखो।

† मच्छिन्ननिष्ठा (P. T. S.) भा० १ पृ० ६१-६३

‡ दीघनिकाय (P. T. S.) भा० १ पृ० ४८-४९

निगलपञ्चाङ्ग, महर्षि, पाटञ्चाङ्ग, मौक्तिक, मत्स्य, कबीर, सुरसेन एवं वृकार्यक), समुद्रतटस्थ (कलिङ्ग, कुडुग्राह्य, कैकेय, आशेष, काशोन्न, पात्सोक, यवनभृति, सिधु, वांघार, लौवीर, मूर, मीर, द्योसक, वाह्यान, भागद्वाक और काव-नोय) और उत्तर दिशाके (तार्थ, काश, प्रच्छान आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्मकी ओर ऋतु किया था ।^x

भगवान् महावीरका धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही; किन्तु उन्होंने साधुसौंके विषय विगम्यत्वका भी उपदेश दिया था + । उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैमधर्ममें दिगम्वर साधु ही निर्वास प्राप्त कर सकता है । बिना दिगम्वर वेष धारण किये निर्वास प्राप्त करना असंभव है । और उनके इस वैज्ञानिक उपदेशका बादर आवाह-वृद्ध-व्यतिहार किया था ।

विदेह में जिस समय म० महावीर पहुँचे तो उनका वहाँ लोगों ने विशेष स्वागत किया । कौशाम्बी में उनके शिष्या भी संख्या अधिक थी । मगध राजा चेटक उनका शिष्य था । अङ्गदेश में जब भगवान् पहुँचे तो वहाँ के राजा कुक्षिक अज्ञात मनु के साथ सारी प्रजा भगवान् की पूजा करने के लिये उमङ्ग पड़ी । राजा कुक्षिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुँचाने गये । कौशाम्बी नरेश प्रसिद्ध हुये कि वह दिगम्बर मुनि होनाये । मगधदेश में भी भगवान् महा-

x इतिहासपुराण (कलकता) पृ० १८

+ भगवतु० ५५-८० पं. १५, पृ० ८१३

वीर का खूब विहार हुआ था और उगका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था । सम्राट् श्रेयिक विम्वसाग भगवान् के अनन्य मक्त थे और उन्होंने धर्मप्रमादना के अनेक कार्य किये थे । श्रेयिकके अमयकुमार, वारियेण आदि कई पुत्र दिगंबर मुनि हो गये थे । दक्षिण भारतमें जब भगवान् का विहार हुआ तो हेमांग देशके राजा अर्धंबर दिगम्बर मुनि हो गये थे । इस प्रकार भगवान् का जहां २ विहार हुआ वहां वहां दिगंबर धर्मका प्रचार हो गया । शतानीक, उदयन, आदि राजा; अमय, नंदियेण आदि राजकुमार; शान्तिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतंकर आदि धनकुवेर; इन्द्रभृति, गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान्; विद्युच्चर आदि सदृश पतितात्मायें—अरे न जाने कौन कौन भगवान् महाबोर को अरण्यमें आकर मुनि हो गये ।*

सबसुख अनेक धर्म-विपास्तु भगवान् के निकट आकर धर्मासूत पान करते थे । यहाँ तक कि स्वयं म० गौतमबुद्ध और उनके संघ पर भगवान्के उपदेशका प्रभाव पड़ा था । बौद्ध भिक्षुओं ने भी नानता धारण करनेका आग्रह म० बुद्ध से किया था । इसपर यद्यपि म०बुद्धने तन धेरको घुरा नहीं बतलाया, किन्तु इससे कुछ व्याधा शिष्य पानेका लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया । † पर सोमी एक

* समस्तु, पृष्ठ ६५-६६ † समस्तु, पृ० १०२, १०३

‡ 'महाभला' (म-२५-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने म० बुद्ध से पास नी हो आकर कहा कि समस्तु ने संघकी पुष्प की बहुत बर्तता की

समय नेपाल के तांत्रिक बौद्धों में नव साधुओं का अस्तित्व हो गया था + । सच बात तो यह है कि तत्काल को साधु-पद के भ्रष्ट रूपमें लवटों को स्वीकार करना पड़ता है । उसका विरोध करना प्रकृति को कोसना है । उसपर म० बुद्ध के समानेमें लो वसका विशेष प्रचार था । इसी म० महावीरने धर्मोपदेश देना प्रारंभ नहीं किया था कि प्राचीन जैन और आर्चीविक आदि साधु नये धूमकर उसका प्रचारकर रहेये x ।

हे, जिसने शरीर को जो बाध है और शक्तियों को क्षीत किया है तथा न दवा लू, विनयी और सादसी है । हे माधव ! यह नगता कई प्रकार से संभव और संतोष को उत्पन्न करने में अगण्युत है—इससे पाप विरहा, कषय दशके, दयाभाव बढ़ता तथा विषय और इच्छा क्षय है । यशो ! यह अच्छा ही यदि क्षय भी नग्न होने की चया है ।" बुद्ध ने अंतमें कहा कि "भिक्षुओं के लिए यह वधित न होगी—एक धाम ६ जिनके यह अयोध है । इसलिये इसका पावन नहीं करना चाहिये । हे मूर्ख ! तिरिपयों की तरह तू भी कर्म कोसे होना । हे मूर्ख, इससे नये शोक भी दीक्षित न होंगे ।"

+ नेपाल में बुद्ध और तांत्रिक नामकी एक बौद्धधर्म की बाधा है । सि० इमरुनने लिखा है कि, इस बाधा में नाद प्रति प्ठा करते हैं ।—
नैसिमा०, ११२-५ ५० ५५

x वेम्वर रक्षी, जो० नैसोकी तथा बा० एल्वर इस ही बात का समर्थन करते हैं कि दिगम्बर म० बुद्ध के पहले से प्रचलित या और आनीषिक आदि शीर्षकी पर जैनधर्म का प्रचार पड़ा था; यथा—

"In James d' Alwis' paper (Ind. Ant. VIII) on the Six Vihāras the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines."—IA, IX, 161.

Prof. Jacobi remarks "The preceding four

देखिये बौद्धग्रन्थोंके आधारसे इस विषयमें डॉ० स्टीवेन्सन
लिखते हैं :-

Tirthakars (*Makabhai Goshai* etc.) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jain system, probably from the Jains themselves .. It appears from the preceding remarks, that Jain ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him. This combined with other arguments, leads us to the opinion that the *Nirgrantha* were really in existence long before Mahavira." --(I.A. IX, 169)

Prof T. W. Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "The sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Svetambara: the latter of which eat naked. They are known to be the successors of the school called *Niganthas* in the Pali Pitakas"—S.B.B. XIII, 41

Dr. Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread considerably . Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, in order to gain esteem, copied the *Nirgranthas* and went unclthed, or that they were looked upon by the people as *Nirgranthas* holy ones, because they happened to lost their clothes" --A.B.J, p 86

+ *वेणिसा*, ११-११४ "The people bought clothes in abundance for him, but he (Kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect. Kassapa said,

“(एक तीर्थक नम हो गया) सोच उसके निचे बहुतसे वस्त्र ह्राये, किन्तु बनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूँ तो संसारमें मेरी श्रद्धिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि तज्जा रक्ष्य के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और मज्जा ही पापका कारण है; हम अर्हत् हैं, इसलिए विषयवासना से अशुद्ध होनेके कारण हमें तज्जाकी कुछभी परवाह नहीं।’ इनका यह कथन सुनकर यही प्रसन्नता से वहाँ इसके पाँच सौ शिष्य बन गए; यदिक संवृद्धीय में इसी को श्लोक सचचा बुद्ध कहने लगे।’

यह कहतेवक संभवतः मकखलि गोशक्त अथवा पूर्ण अक्षय के मन्त्रग्रन्थ में है। ये दोनों साधु म० पार्वनाथकी शिष्यपरंपरा के मुनि थे०। मकखलि गोशक्त म० महावीरसे कष्ट होकर अलग वर्मप्रचार करने लगा था और वह “आजीविक” संप्रदायका नेता बन गया था। इस संप्रदाय का निवास प्राचीन जैनधर्मसे हुआ था † और इसके साधु भी नाम गृहते थे ‡। पूरुष-अक्षय गोशक्तका साथी और

“Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin I am an Arabat. As I am free from evil desires, I know no shame.” etc

—BS, pp 74-75

* ममव०, पृष्ठ १०-११

† मोटू, वर्ष ३, पृ० ३१२ व ममव० पृष्ठ १०-११

‡ ‘आजीविको ति नग-सभयको।’—पद्म-सूरी १/१०६—

1HQ, III, 248.

बहुमी दिग्भ्रमर रहा था। सचमुच दिग्भ्रमर जैनधर्म पहले से ही चला आ रहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था।

उस पर, भगवान महावीरके अवतीर्ण होतेही दिग्भ्रमरत्वका महत्व औरभी बढ़ गया। यदातिक्रमिक दूसरी संप्रदायोंके लोगभी नग्न वेप धारण करनेको काला-यित्त होगये, जैसेकि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रोंमें निप्र^१न्य (विनाभ्यंग) महामुनि महावीरके विहारका उल्लेखभी मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के 'अमय-राजकुमार सुत्त' से प्रकट है कि वे राजगृहमें एक समय रहे थे +। 'वपालीसुत्त' से भ० महावीरका नालन्दामें विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बड़ी संख्यामें निप्र^२न्य छात्रु थे ‡। 'सामनामसुत्त' से यह प्रकट है कि भगवान् ने पाषाणे मोक्ष प्राप्त की थी +। 'दीधनिकाय' का 'पासाणिक सुत्त' भी इसी बातका समर्थन करता है X। 'संयुत्तनिकाय' से भगवान महावीरका संबलहित 'मच्छिका-करण्ड' में विहार करना स्पष्ट है +। 'ब्रह्मजालसुत्त' में

+ मज्झिम० (P. T. 8) पृ० १ पृ० ३६२—अमरु० पृ० १६१

‡ मज्झिम० १ : ३०१ व "The M. N. tells us that once Nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas"—AIT, p. 147.

+ मज्झिम० १:६१—अमरु० २०२

X दी०, III 117-118,—अमरु० पृ० २१४

+ संयुत्त० ४ : १२०—अमरु० पृ० २११

राजगृहके राजा अशानशुक्रको मगधान महावीरके दर्शनके लिये गया लिखा है वा 'द्विपयिटक' के 'महावग्ग' ग्रंथसे महावीर म्यामीका देशासीमें धर्मप्रचार करना प्रमाणित है + । एक 'जानक' में अ० महावीरको 'अश्वेतुक नातपुत्र' कहा गया है x । 'महावस्तु' से प्रगट है कि अश्वेतोकें राजपुत्रोदित का पुत्र नालक बनारस आया था । वहां उसने निर्ग्रन्थनाथ-पुत्र (महावीर को) धर्म प्रचार करते पाया † । 'दीघनिकाय' से यह स्पष्ट है कि कौरुलके राजा पसेनदीने निर्ग्रन्थ नातपुत्र (महावीर) को नमस्कार किया था ‡ । उसकी रानी महिला ने निर्ग्रन्थोंके उपयोगके लिये एक भवन बनवाया था ¶ । सारांशतः बौद्ध शास्त्री भगवान् महावीरके दिव्यत्वका जो और सफल विहारकी साक्षी बने हैं ।

भगवान्के विहार और धर्मप्रचारसे जैनधर्मका विशेष बढाव हुआ था । जैनशास्त्र फइते है कि उनके चइमें चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे; जिनमें ६६०० साधारण मुनि, ३०० अष्टपूर्वधारी मुनि, १३०० अर्धविज्ञानधारी मुनि, ६०० त्रिदिविक्रिया युक्त, ५०० चार हासके धारी, ७०० केवलज्ञानी

* मयपुत्र, पृ० १२०

+ महावग्ग § ११ । ११—मयपुत्र पृ० २११-२१६

x जानक २ । १८२

‡ ASM, p. 159.

‡ दीप० शिखर-३६—IIIQ, I, 163.

† LWB, p 109

और ६०० अनुत्तरवादी थे । महावीर-सङ्घके ये दिगम्बर मुनि बस गणोंमें विभक्त थे और म्यारद गणधर उनकी वंश-रेख रखते थे। इन गणधरोंका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है :—

(१) इन्द्रमूर्ति गौतम, (२) धायुमूर्ति, (३) अग्निमूर्ति, ये तीनों गणधर मगध देशके शीर्षर ग्राम निवासी बज्रभूति (शांडिल्य) ब्राह्मणकी स्त्री पृथ्वी (स्थिरिडला) और कंसरीके गर्भसे जन्मे थे । गृहस्थाश्रम त्यागनेके बाद ये क्रमसे गौतम, गार्ग्य और मार्गष नामसे भी प्रसिद्ध हुये थे । जैन होनेके पहले ये तीनों वेदधर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान् थे । म० महावीर के निकट इन तीनोंने अपने कई सौ शिष्यों सहित जैन-धर्मकी सीक्षा ग्रहणकी थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियोंके नेता हुये थे । देश-वेदान्तरमें विहार करके इन्होंने खूब धर्म-प्रभाषनाकी थी ।+

चौथे गणधर व्यक्त कोरन्नग सन्निवेश निवासी घन-मिश ब्राह्मणकी धारसी X नामक पत्नीकी जोड़ से जन्मे थे । दिगम्बर मुनि होकर यद्यपी गणनायक हुये थे ।

पाँचवें सुधर्म नामक गणधरकी कोरन्नग सन्निवेशके निवासी चम्मिह ब्राह्मणके सुपुत्र थे । इनकी माताका नाम यज्ञिका था । म० महावीरके उपरान्त इषकं द्वारा जैवधर्मका विशेष प्रचार हुआ था ।+

‡ कम०, २।७। + हर्षक०, ३० ६०-६१।

X लौक०, १० ८। + हर्षक०, ३० ८।

इष्टे मण्डिक नामक गणधर मौर्याख्यदेश निवासी धनदेश ब्राह्मणकी विजया देवी छोके गर्भसे जन्मे थे । दिगम्बर मुनि होकर यह वीर सहर्षे सम्मिलित हो गये थे और ब्रह्म विदेशमें धर्म प्रचार किया था ।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देशके निवासी 'मौर्यक' ब्राह्मणके पुत्र थे । इन्होंने भी ३० महाशोरके निकट दिगम्बरीय डोहा प्रदत्त करके सर्वत्र धर्म-प्रचार किया था ।

आठवें गणधर अकम्पन् थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मणकी अम्बती नामक छोके उदरसे जन्मे थे । इन्होंने भी वृष धर्मप्रचार किया था ।

नवें धवला नामक गणधर कोयलापुरी के वसु विभ्रके सुपुत्र थे । इनको मांका नाम मन्दा था । इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हों सर्वत्र विहार किया था ।

दसवें गणधर मैत्रेय थे । यह वत्सदेशस्थ मुक्तिवत्य नगरीके निवासी दत्त ब्राह्मणकी स्त्री कवचाके गर्भसे जन्मे थे । इन्होंने भी अपने गणधके साधुओं सहित धर्म प्रचार किया था ।

ग्यारहवें गणधर प्रमान राजगृह निवासी वल्ल नामक ब्राह्मणकी पत्नी महाकी कुक्षिसे जन्मे थे । और दिगम्बर मुनि तथा गणनाथक होकर सर्वत्र धर्मका उद्योग करते हुए विचरे थे ।०

इन गणधरोंकी अथ्यलतामें रहे उपरोक्त बौद्ध इन्द्रा दिगम्बर मुनिबोंने तत्कालीन भारतका महान् उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सद् बद्योगसे भारत में खूब फैले थे। जैन और बौद्धशास्त्र यही प्रष्ट करते हैं :—

"The Buddhist and Jaina texts tell us that the itinerant teachers of the time wandered about in the country, engaging themselves wherever they stopped in serious discussion on matters relating to religion, philosophy, ethics morals and polity," †

माघार्थ—बौद्ध और जैन शास्त्रोंसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म-गुरु देशमें सर्वत्र विचरते थे और जहां वे बहरते थे वहां धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवार्ता विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान् हित हुआ था।

बौद्धशास्त्रोंमें भी म० महावीरके सद्बुद्धके किन्हीं दिग्म्बर मुनिबोंका वर्णन मिलता है, यद्यपि जैनशास्त्रोंमें इनका पता लगा लेना सुगम नहीं है। ओ हो, हमसे यह स्पष्ट है कि म० महावीर और उनके दिग्म्बर शिष्य देशमें निर्वाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

सत्राट् भौतिक विम्वरारके पुत्र राजकुमार क्षम्य दिग्मय्य मुनि होगये थे, यह बात बौद्धशास्त्रोंमें प्रगट करते हैं * । उन राजकुमारने ईगन देशके वासिपोंमें भी धर्मप्रचार कर दिया था । फलतः उस देशके एक राजकुमार आर्द्रक निर्झान्य साधु होगया था । †

बौद्ध शास्त्र वैशाखीके दिग्म्वर मुनिधर्मोंमें सुषकसत्त, कल्लारमत्सुक, और पाटिकपुत्र का नामोल्लेख करते हैं । सुषकसत्त एक लिच्छवि राजपुत्र था और यह बौद्धधर्म छोड़कर निर्झान्य मतका अनुयायी हुआ था ‡ ।

वैशाखीके सन्निकट एक कन्दरमत्सुक नामक दिग्म्वर मुनिके आवासकामी उल्लेख बौद्धशास्त्रोंमें मिलता है । उन्होंने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधिमें विहार करने की प्रतिष्ठा ली थी । †

आषस्तीके कुल पुत्र (Councillor's son) अर्हतेन भो दिग्म्वर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे । X

* PB. p. 30 व मज्झि, पृ० २६६ ।

† A.D.J.R., I p. 112 ‡ मज्झि, पृ० १४४ ।

‡ "सकलौ कन्दरमत्सुकी वंशान्वितम् पटिकसति आसन्न-प्यसौच एव पञ्चम, पत्तोच शक्तिगामे । तस्य सत्तत्त-पदानि सप्तदानि समादिन्दानि होन्ति—'पावसौचम् सचेत्तको अससम्, न ससम् पत्तिरेवम्पम् : पावसौचम् सत्तत्तको अससम् न ससम्पम् पत्तिरेवम्पम्त्वादि ।'"—श्रीचरितकाम, (P. T. S) पृ० ११०

६-१० व मज्झि, पृ० २११ ।

X PB p. 88 व मज्झि, पृ० १६७ ।

यह दिगम्बर मुनि और इनके साथ जैन साध्वीयोंभी सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुसुजुओंको जैनधर्ममें दीक्षित करते थे+ । इसी उद्देश्यको लेकर वे नगरोंके चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और वाद भेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "इस समय तीर्थक साधु—प्रत्येक एककी अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासीको एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे।"६

इन साधुओंको जदांभी अवसर मिलता था वहीं वे अपने धर्मकी श्रेष्ठताको प्रमायित करके अवशेष धर्मोंको गौण प्रकट करते थे।

म० महावीर और म० गौतम बुद्ध दोनों ने ही अहिंसा धर्मका उपदेश दियाथा, किन्तु म० महावीरकी अहिंसा मन, बचन, काय पूर्वक जीवदत्तासे विलग रहनेका विधान था—मोजन या मोज शौकके सिधे भी उसमें जीवोंका प्रायुःक्यपरोपण नहीं किया जा सकताथा । इसके विपरीत म० बुद्धकी अहिंसामें बौद्ध भिक्षुओंको मांस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी। एक बार नहीं अनेक बार स्वयं० म० बुद्ध ने मांस-भोजन किया था। ऐसीही अवसरों पर दिगम्बर मुनि

+ बौद्धों के बेर-येरी भाषाओं से यह प्रकट है। समु०, पृ० २५६—२६८।

* महाव्या २/१।६ व समु०, पृ० २४०। † समु० पृष्ठ १७०।

पौद्द विद्युओंको श्राद्धे इत्यर्थो जंतोये । एक मरतया अथ अपवान
 महावीरने बुद्धके इस हितक कर्मका विषय किया, तो बुद्धने
 कहा: "मिच्छुओ, यह पहला मौका तर्हहि बहिक नातपुत्त (महा-
 वीर) हमने पहिलेमी कई मरतया खास मेरे लिये एके हुए
 मौनका मेरे भक्षण करने पर आरोप कर चुके हैं † ।" एक
 दूसरी बार अथ वैशालीमें स० बुद्धने सेनापतिसिंहके घर पर
 मांसदाह किया तो, पौद्द शास्त्र कहता है कि "निर्ग्रन्थ एक
 बड़ी संख्यामें वैशालीमें सडक २ और चौराहे २ पर यह शौर
 मन्त्रते कहते फिरे कि आज सेनापतिसिंहने एक वैशक्य बध
 कियाहे और उसका आहार भक्षण मौनमक लिये पचाया है ।
 भक्षण गौतम जानचूक कर कि यह वैश मेरे आहार के निमित्त
 मारा गया है, फुका मांस खाताहै; इसलिये वही उस पशुके
 मारनेके लिये बधक है‡ ।" इन उल्लेखोंसे उस समय दिग्गजर
 मुनियोंका निर्घातकपमें जनताके मध्य विचरने और धर्मोपदेश
 देनेका अर्थोत्तर्य होता है ।

† *Cowell, Jataka: II 182*—अमरु०, पृ २३१ ।

‡ "At that time a great number of the Nigan-
 thas 'tramping' through Vesali, from road to road,
 cross-way to cross-way, with outstretched arms cried,
 'Today Siba, the General has killed a great ox and
 has made a meal for the Samana Gotama, the
 Samana Gotama knowingly eats this meat of an
 animal killed for this very purpose, & has thus be-
 come virtually the author of that deed.'—*Vimaya*
Texts, S.H.E., Vol XVII, p. 116 & H.G., p. 85.

बौद्ध गृहस्थोंने कई मरतवा दिगम्बर मुनियोंको अपने घरके अन्तर्गुरमें बुलाकर परीक्षा की थी + । सारांशतः दि० मुनि वस्र समय हाड—बाझार, घर—मदक, रंक—राव—सब और सबही को धर्मोपदेश देते हुये विहार करते थे । अब आगेके पृष्ठोंमें भगवान महावीरके उपरान्त दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व और विहारका विवेचन कर देना उचित है ।

+ HG., pp. 88—95 व मसु०, पृष्ठ २१६—२२६ ।

दिगम्बरात्त श्री दि० मुनि०



श्री १००८ महाशान् पार्श्वनाथ जी (पृष्ठ ८४)

(विकटोरिया जेट फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित)

नन्द-साम्राज्यमें दिगम्बर-मुनि !



"King Nanda had taken away 'images' known as 'The Jina of Kabuga'..... Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early..."

—K.P. Jayswal, c

शिशुनागवंशमें कुण्डिक अजातशत्रुके उपरान्त और पराक्रमी राजा नहीं हुआ और मगधसाम्राज्यकी

बागदोर सम्बन्धके राजाओंके हाथमें आ गई। इस वंशमें 'उद्वेद' (Udvēda) उपाधि-धारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतट बर्ता देश जीत लिये थे तथा उसमें हिमालय प्रदेश और काश्मीर एवं अफन्ती और कन्निर देशको भी उसने अपने आधीन कर लिया था†। कन्निर-विजयमें वह वहाँसे 'कन्निर-जिन' नामक एक प्राचीन मूर्ति लेआया था और उसे विनय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्रमें स्थापित किया

* JBORS, Vol, XIII p 245.

† Ibid, Vol. I. pp. 78-79

था । उसके इस कार्यसे नन्दवर्जितका जैनधर्मावलम्बी होना स्पष्ट है । 'सुद्वाराक्षस नाटक' और जैनसाहित्यसे इस वंशके राजाओंका जैनी होना सिद्ध है और उनके मन्त्रीभी जैन थे । अन्तिम नन्दका मन्त्री राजस नामक नीतिनिपुण पुरुष था । 'सुद्वाराक्षस' नाटकमें उसे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दियम्बर जैन मुनिके प्रति विनय प्रगट करते दर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देशमें—हादवाङ्गार और अम्तापुर—क्षप ही छोर धेरोक टोक बिहार करता था, यह बातभी उक्त नाटकसे स्पष्ट है† । ऐसा होना है भी स्वाभाविक; क्योंकि जब नन्दवंशके राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्यमें दिगम्बर जैन मुनिकी प्रतिष्ठा होना लाजमी थी । जनश्रुतिसे यहभी प्रगट है कि अन्तिम नन्दराजाने 'पञ्चपहाडो' नामक पाँच स्तूप पटभामें बनवाये थे+ । 'पञ्चपहाडो' (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है । नन्दने उसीके अनुरूप पाँच स्तूप पटना

‡ Chanakya says.—

"There is a fellow of my studies, Jeep
The Brahman Indusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hither;
And here repairing as a Buddha (क्षपणक) mendicant."‡

† Having the marks of a Keapanaka... the individual is a Jaina... Raksasa repose in him implicit confidence.—EDW., p. 10

+ "Sir G. Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans. . . . the Nandas were Jainas and therefore hateful to

में बनवाये प्रतीत होते हैं। यह कार्य्यभी उत्तरी मुनि मठि का परिचायक है।

जैन कथाग्रन्थोंसे सिद्धित है कि एक कन्द राजा स्वयं द्विगम्बर जैन मुनि होगये थे तथा उनके मन्त्री गुच्छात्तमी जैनी थे* । गुच्छात्तके पुत्र स्थूलभद्रमी द्विगम्बर मुनि होगये थे† । सारांश यह कि कन्द-साम्राज्यके प्रसिद्ध पुरुषोंमें स्वयं द्विगम्बर मुनि होकर नरकासीन भारतका बह्वायु किया था और कन्दराजा जैनोंके संरक्षक थे‡ ।

विश्रुतागधंशके नाम और नन्दराज्यके आरम्भकारमें अम्बुस्वामी अन्तिमकेवह्नीसर्वज्ञने नक्षत्रेपमें हारे भारतका

the Brahmins . The supposition that the last Nanda was either a Jain or Buddhist is strengthened by the fact that one form of the local tradition attributed to him the erection of the Paoli Pahari or Patna a group of ancient stupas, which he either Jain or Buddhist."—EHL, p. 41

उनका जैन होना ठीक है, क्योंकि नन्दराजके जैन होनेमें कन्देह नहीं है और "बुद्धानुचर" कन्दराजके कारि को जैन प्रकृत करता है।

* इतिवेष कथाकोष तथा आगधनामकाकोष देखो।

† सप्तमी गुणगी साहित्य परिषद् रिपोर्ट, पृष्ठ ४१ तथा "भद्र-वाटु चरित्र" (पृष्ठ ४१) में स्थूलभद्राविको द्विगम्बर मुनि किला है। (शयसुस्तुत सदाय्य स्पृहाचार्योदियोजित ।)

‡ "Kanda were Jain"—CHL, Vol. I p. 184

"The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira)."—HARI, p. 58.

समय किया था। कहते हैं कि बङ्गालके कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की थी + । उनका बिहार बङ्गालके प्रसिद्ध नगर पुंड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदिमें हुआ था। एक दफ़ा वह मधुगमों पहुँचे थे। अन्तमें जब वह गङ्गण्ड विपुनाचलसे मुक्त हो गये, तो मधुगमों उनकी स्मृतिमें एक स्तूप बनाया गया था x ।

मधुगम जैनोंका प्राचीन केन्द्र था। वहाँ भ० पार्श्वनाथ जो के समयका एक स्तूप मौजूद था - । इसके अनिश्चित नन्दकालमें वहाँ पाँच सौ एक स्तूप और बनाये गये थे; क्योंकि वहाँस इतने ही दिगम्बर मुनियोंने समाधिमरस किया था। ये सब मुनि श्री जम्बूस्वामीके शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विष्णुचरनामक एक नामी डाकूमी अपनं पाँच सौ साथियाँ सहित दिगंबर मुनि हो गया था। एक दफ़ा यह मुनिसङ्घ देश-विदेशमें बिहार करता हुआ शामको मथुरा पहुँचा। वहाँ महाउद्यानमें वह ठहर गया। उपरान्त रातको उन मुनियों पर वहाँ महा

+ "In Kotikapur-Jamba attained emancipation
(? Omniscience)"

—बी०, पृ० १ पृष्ठ १०।

x ज्योत्सव, पृ० १ पृष्ठ १२१ :-

"मगधादिमहादेश मधुगमिगुरीसथा। कुर्वन् पमोवदेठ स क्षेत्रज्ञानलोचनः
०।१५०१२० वर्षेकादशपर्यन्तं स्थितस्तत्र विवापिनः, ततो जयाम
निर्वादे केसो विपुत्राचलात् ०।१६५—जम्बूस्वामी चरित

+ JOURNAL, p. 10

उपसर्गं दुःखा और उसके परिणामरूप मुनिर्वाणे साम्यभाषणे
प्राण त्याग दिणे । इस मन्त्रशाली घटकाची स्तुतिमें ही बर्दा
पात्र ही एक मृत्यु बना दिणे वषे वं ।॥

इस प्रकार न जाने कितने मुनि-मुद्गर उससमय हीरग
में विद्याए काके कोषोंका हिनसाधन करते थे ! उनका धना
क्या सेवा कटिब टै ! बन्द-साक्षात्कर्मों उनको पूरा पूरा संर-
क्षण प्राप्त था !

[१२]

सौर्य-समूह और दिगम्बर मुनि ।

“अद्भुतवाहुवचा भुजा चन्द्रगुप्तो करेश्वरः ।
अस्यैवशंभिनं पार्श्वे दधौ शैनेश्वर तपः ।३८॥
बभ्रुगुहस्तमुनिः शोर्षं पश्यतो दृष्टपूर्विणाम् ।
सर्वं सचात्रियो ज्ञानं विशाखाचार्यं संतुष्टः ।३९॥
शनेभन्तः शंभावि नमन्ना गुफवाल्पकः ।
होसुवा पयश्शक्यपुम्पाट दिवसं वर्षा ॥४०॥”

—हरिपेश कथाखण्ड १

१ शनेश्वर वर्ष १ पू० १३६-१४१—

“अथ दिगम्बरैः कथं परोक्षितं सम्पूर्णैः ॥

महाशक्तिविद्यासनोत्ती विद्वत्तपः ।

जगन्महो सविःशो मुनि पंचजनेश्वर ॥

मधुगर्वा यदोपाल परेशेवकम्पुश ।

वदामन्पुत्रं वेनयय नमस्तुतो अं विना ॥ शशादि ॥”

७, मस १२ पू० २१॥

‘मदवधरेसुं जग्मि जियविक्रं धरदि चन्द्रगुप्तो व ।’

—विज्ञोक्त प्रकृति †

चन्द्र राजाओंके पश्चात् मगधका राजकुल चन्द्रगुप्त

नामके एक क्षत्रिय राजपुत्रके हाथ लगा था । उसने

अपने भ्रुकविक्रमसे प्रायः सारे मगध पर अधिकार कर लिया

था और ‘शौच्य’ नामक राजवंशकी स्थापनाकी थी । जैनशास्त्र

इस राजाको विगम्बर मुनि ब्रह्मशापति श्रुतकेवली भद्रबाहुका

शिष्य प्रगट करतेहैं * । यूनानी राजदूत मेगास्थनीसमी

चन्द्रगुप्तको ब्रह्मच-भक्त प्रगट करताहैं† । सम्राट् चन्द्रगुप्तने

† कैटि, भा० १३, पृ० २११

* “चन्द्रगुप्तसम्बन्धीतिरचन्द्रमोदकृत्तम् । चन्द्रगुप्तवैपस्तका
उपकथासुखोदयः ॥७११॥

श्रमविज्ञानवाचीश्री जिनपूजापुरंदरः । चतुर्दा एव इत्यो यः पताप-
जित काङ्करः ॥८॥” —म०

† “उमाशाय च सूर्ये (मगधाहु) परोत्थ इत्यर्थान्वितः । तस्यस्यस्यं
गुरोः पादाभ्यां चरुकादिकैः ॥१६॥” —म०

‡ “That Chandragupta was a member of the
Jaina community is taken by their writers as a mat-
ter of course, and treated as a known fact, which
needed neither argument nor demonstration. The
documentary evidence to this effect is of compara-
tively early date, and apparently absolved from all
suspicion..... The testimony of Megasthenes
would likewise seem to imply that Chandragupta
submitted to the devotional teaching of the Sram-

अपने गृहन् स्वाज्ञात्मने दिगम्बर मुनियोंके विदार और धर्म-
 प्रचार करनेकी मुद्रिधाकी भी । धर्मयति भद्रवाहुके मंत्रकी
 वद राजा बहुत धिक्कर बनाया । भद्रवाहुजी बह्माल देशके
 कोटिबपुर नामके नगरके निवासीथे । एक दृक्का वहाँ भुक्त
 केवली गोपदर्शन स्वामी कश्यप दिगम्बर मुनियों मज्जित आनि-
 क्तने, भद्रवाहु उन्होंने निबट्ट दीक्षित हाकर दिगम्बर मुनि हो
 गये । गोपदर्शन स्वामीने कश्यपदिगम्बर मुनियोंकी शिष्याकर
 उपांग कियाया + । इस दखलेससे स्पष्ट है कि उनके समयमें दि-
 गम्बर मुनियोंका विदार करनेकी मुद्रिधा प्राप्त थी । भद्रवाहुजी
 ने भी मंत्रमदिगम्बर देगदेगान्तमें विदार कियाया और वद उ-
 ल्लेखी पदुंसे भी । यामिं उन्होंने उपांग देगकी ओर संघ सहित
 विदार कियाथा, क्योंकि उन्हें मान्य होयथा कि उत्तरापथ
 में एक ब्राह्मणवर्षीय विदार कृपाकर वदनेसे है जिसमें मुनि-
 चर्याका नामन कृपाकर टोगा x । मज्जट् चन्द्रगुप्तने भी इसी
 समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रवाहु स्वामीके निकट शिष्य-
 दीक्षा धारणकी थी और वद कश्यप दिगम्बर मुनियोंके साथ

under an appointment by the Emperor of the Brahmanas
 (Sanskrit, 21) in the 'Sanskrit', Vol. IX pp 175-176

† 'ब्रह्मवाहुके मंत्रके मंत्रकी वदनेसे है जिसमें मुनि-
 चर्याका नामन कृपाकर टोगा x । मज्जट् चन्द्रगुप्तने भी इसी
 समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रवाहु स्वामीके निकट शिष्य-
 दीक्षा धारणकी थी और वद कश्यप दिगम्बर मुनियोंके साथ

'भद्रवाहुके मंत्रके मंत्रकी वदनेसे है जिसमें मुनि-
 चर्याका नामन कृपाकर टोगा x । मज्जट् चन्द्रगुप्तने भी इसी
 समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रवाहु स्वामीके निकट शिष्य-
 दीक्षा धारणकी थी और वद कश्यप दिगम्बर मुनियोंके साथ

+ 'विदारके मंत्रकी वदनेसे है जिसमें मुनि-
 चर्याका नामन कृपाकर टोगा x । मज्जट् चन्द्रगुप्तने भी इसी
 समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रवाहु स्वामीके निकट शिष्य-
 दीक्षा धारणकी थी और वद कश्यप दिगम्बर मुनियोंके साथ

x मज्जट् चन्द्रगुप्तने भी इसी
 समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रवाहु स्वामीके निकट शिष्य-
 दीक्षा धारणकी थी और वद कश्यप दिगम्बर मुनियोंके साथ

दक्षिण भारतको चले गये थे + । श्रवणसेल्लगोल का कटवप्रनामक पर्वत ऊन्हींके कारण "चन्द्रगिरि" नामसे प्रसिद्ध होगया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्तने तपश्चरय कियाथा और वहाँ उनका समाधिमरय हुआथा + ।

विन्दुसारने जैनियोंके लिये क्या किया ? यह बात नहीं है, किन्तु जब उसका पिता जैनया, तो उस पर जैव प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावीहै x । उस पर उसका पुत्र असोक अपने

+Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a great twelve years' famine occurred, he abdicated, accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called Śrāstakenshās, to the South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately committed Suicide by Starvation at that place, where his name is still held in remembrance. In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as 'imaginary history' But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and that Chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic."

—Sir Vincent Smith, EHI, p. 154

+ Narasimhaachar's Sravanabelgola, p. 25-40,
लिको, भाग ० पृ० १२१-१२० तथा वैदिक० सूत्रिका पृ० २४-२०

x "We may conclude"" that Vindusara followed the faith (Jainism) of his father (Chandragupta)

प्राग्मिक जीवनमें जैनधर्मपरायण रहा था; परन्तु अल्प समय तक उसने जैनसिद्धान्तों का प्रचार किया, यह अल्पसिद्ध किया जासुका है * । १८ वृत्तमें विन्दुमारका जैनधर्म प्रेमी हाना उचित है । अशाकने अपने एक मन्त्रालयमें स्पष्टतः निर्गुण साधुओंकी गन्ताका उचित निष्ठावाया है । .

सम्राट् मम्मति पूर्णतः जैनधर्म परायण थे । उन्होंने जैन मुनियोंके विद्वान् और धर्मप्रचारकों व्यवस्था न केवल भारतमें ही की, बल्कि विदेशोंमें भी उनका विद्वान् कराकर जैनधर्मका प्रचार कर दिया † ।

इस समयमें दृष्टपूर्वके चारक, विशाल, प्रोचिद्ध, इन्द्रिय

and that in the 2nd or 3rd century A.D. he was prepared to have been his establishment's library were first lost at 13 A.D. —L. Thomas, JRAS IX 181

* इसका "सम्राट् अशोक जैन धर्मपर" शब्दक दृष्ट देखो ।
‡ मन्त्रालय में -

'The founder of the Mauryan dynasty, Chandragupta, as well as his Brahmin minister, Chanakya, were also inclined toward Mahavira's doctrines and even Asoka is said to have been led toward Buddhism by a previous study of Jain teaching."

—F. H. Russell, HARI, p. 59.

। सुप्रसिद्धमूर्तिमहामात्रविष्वक्पाटोनी अश्वमेधेन्द्रोच्चैरुत्थित
धर्मविद्वान् सुमति महामन्त्रमौडवत्

—शरदोत्सवकवचनम् LIII pp. २०२-२०३

आदि दिगम्बर जैनाचार्योंके संरक्षणमें रहा जैनसंघ तब फला फूलाथा । जिस साम्राज्यके अधिष्ठाता हूँ स्वयं जब दिगम्बर मुनि हांफर धर्मप्रचार करनेके लिये दुःख गये तो मजा करिये जैनधर्मकी विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियोंकी वाङ्मयता उस राज्यमें क्यों न होती । मौर्योंका नाम जैनसाहित्यमें इसी लिये स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है ।

[१३]

सिकन्दर महान् एवं दिगम्बरमुनि !



"Quercritus says that he himself was sent to converse with these sages. For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked, unused themselves to hardships and were held in highest honour; that when invited they did not go to other persons." —Mc Crindle, Ancient India, p. 70.

जिस समय अश्विम नवराज्य भारतमें राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्यकी नींव डालनेमें लगे हुएथे, उस समय भारतके पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्त पर युनातका म्हापो वीर सिकन्दर अपना सिक्कर जमा रहा था । जब वह तक्षशिला पहुँचातो वहाँ उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशंसा सुनी । उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख आये जायें, किन्तु ऐसा होता असंभवथा, क्योंकि दिगं-

५४ मुनि किसीका शासन नहीं मानते और न किसीका निम-
 न्त्यस्य स्वीकार करतेहैं। उस पर सिकन्दरने अपने एक दूतका,
 जिसका नाम अन्कुरनस (Ankuron) था, उनके
 पास भेजा। उसने देखा, लड़कियाँके पास उद्यानमें बहुतसे
 गैरे मुदितपत्तियाँ कर रहेहैं। उनमें से एक कल्याण नामक मुनि
 से उसका बलचीन होती रहीथी। मुनि कल्याणने अन्कुरनस
 से कहाथा कि यदि तुम हमारे तपका रहस्य समझना चाहतेहो
 तो हमारी नद दिव्यम्ब मुनि होजाओगे। अंगुष्ठतकके लिये
 ऐसा करना असंभवथा। अन्तर उसने सिकन्दरसे जाकर
 इन मुनियोंके नाम और चर्चाकी प्रार्थनाकीय चार्जे कही। सि-
 म्त उससे बहुत धमाकिन हुआ और उसने चाहा कि इनका
 ध्यान—उपोरतनका प्रकाश मेरे देगुमें भी पहुँचे। उसकी इस
 शुभ कामवाची मुनि कल्याणने पूरा कियाथा। अब सिकन्दर

* Al. p. 66. —“(Alexander) dispatched On-
 crotus to them ' γυμνασθησίνων', who relates that he
 found at the distance of 20 stadia from the city (of
 Taxilla) 16 men standing in different postures, sit-
 ting or lying down naked, who did not move from
 their position till the evening, when they return to
 the city. The most difficult thing to endure was
 the heat of the sun etc. ”

“Calanus bidding him (Onon.) to strip him-
 self, if he desired to hear any of his doctrine ”

---Plutarch. Al. p. 71

ससैन्य यूनानको लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे, किन्तु ईरानमें ही उनका देहावसान हो गयाथा । अपना अस्त समस्त जानकर उन्होंने अत्यन्त सल्लोचनाका पालन किया था । नये रहना, भूमिशोधकर चलना, हरितफायका विनाशन न करना, किसीका निमन्त्रण स्वीकार न करना, इत्यादि अिन नियमोंका पालन मुनि कल्याण और उनके साथी मुनिगण करते थे जससे उनका दिग्म्बर जैव मुनि होना सिद्धहै† । आधुनिक विद्वान्सी यही प्रगट करतेहैं‡ ।

मुनि कल्याण अयोध्याशहरमें निष्ठातथे । उन्होंने बहुत सी भविष्यद्वाणियाँकी थीं+ और सिकन्दरकी मृत्युको भी उन्होंने बदिसेसे ही बोधित कर दियाथा । इन भारतीय सन्तोंकी विज्ञाका प्रभाव यूनानियों पर विशेष पडाथा । वहाँ तक कि तत्कालीन दायजिनेस (Diogenes) नामक

† चीर नवंबर १० १९६ न १३१

‡ Encyclopaedia Britannica (11th ed.) Vol. XV p. 128. "....the term Digambara ...is referred to in the well-known Greek phrase, Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Niganthas (Digambara Jains)."

+ "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd century B. C., gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus "

यूनानी नस्बवेत्ताने द्वियम्बरदेव धानसु सियाथा + । यीर
यूनानियोंने बंगी मुनिबांकी बनवाईथी * ।

यूनानी लोगोंने इस दिग्म्बर मुनियोंके विषयमें म्यूर
लिखाई । वे कहतेहैं कि यह खालु नमै रहतेथे । सर्वो-पमोंको
परीषद सदन करतेथे । जनमामें इनको विशेष मान्यताथी ।
हाट बाजारमें जाकर यह धर्मोपदेश देतेथे । पढे २ शिष्ट घरोंके
अंतर्भुगोंमें गो ये जातेथे । राजासख इनकी विनय करते और
बम्बनि सेनेथे । स्पॉनियके अनुमार ये लोगोंको भविष्यका
कलाफलभी बनतेथे । सोअनका निमन्त्रण से स्वीकार नहीं
करतेथे । विचिपूर्णक काममें कोई मध्य उन्हें सोअन-दम देना
नो इसे ये मन्त्रण कर सेतेथे x । यूनानी लोगोंने इस बर्णन

+ NJ, Intro p 2

* Plin XXXIV 2—JRS Vol IV, p. 232

x Aristobolus—*ibid.* "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market-place in respect their being public councillors, they receive great honours etc."

Quero (Tusc. Deput. V 27)—"What foreign land is more vast & wild than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend their lifetime naked & endure the snows of Caucasus & the rage of winter without grieving & when they have committed their body to the flames, not a groan escapes them when they are burning."

Clement Alexandrinus—*ibid.* "Those Indians, who

से एक समयके दिग्गम्बर जैसे मुनियोंका महत्त्व स्पष्ट हो जाता है । उनके द्वारा भारतका नाम विदेशोंमें भी चमकाया ! भला हम जैसे सुनीश्चरोंको पाकर लोग न अपनेको चम्प मानेगा ?

are called *Sennoti* (चम्प) go naked all their lives. These practise truth make predictions about futurity and worship a kind of pyramid, beneath which they think the bones of some divinity lie buried (*Stupas*)”

—AL. p. 168

“St. Jerome—‘Indian Gymnosophists’ The king on coming to them worships them & the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers.” —AL. p. 184.

“Every wealthy house is open to them to the apartments of the women. On entering they share the repast.”—AL. p. 71

“When they repair to the city they disperse themselves to the market place. If they happen to meet any who carries figs or branches of grapes they take what he bestows without giving anything in return.

सुह्र और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि ।



"The Andhra or Satrabans rule is characterised by almost the same social features as the further south; but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jains & Buddhists."—S. K. Anjanagar's Ancient India, p. 34.

अग्निम मौर्व्यं सम्राट् बृहद्गुणका उतके सेनापति
 पुष्पमित्र सुह्रं बध कर दिया था । इस प्रकार
 मौर्व्य साम्राज्यका अन्त करके पुष्पमित्रने 'सुह्र राजवंश' की
 स्थापना की थी । नन्द और मौर्व्य साम्राज्यमें जहाँ जैन और
 बौद्धधर्म उन्नतिको प्राप्त हुये थे, वहाँ सुह्रवंशके राजत्वकालमें
 ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुआ था । किन्तु इसका
 अर्थ यह नहीं है कि ब्राह्मणोत्तर जैन आदि धर्मों पर इस समय
 कोई संकट आया हो । हम देखते हैं कि स्वयं पुष्पमित्रके
 राजसाम्राज्यके मन्त्रिक नन्दराज द्वारा जारी गई 'अतिरुजिनि
 की स्मृति' सुगन्धित रही थी । इस अवस्थामें यह नहीं कहा
 जासका कि इस समय दिगम्बर जैनधर्मको विकट बाधा
 सहनी पड़ी थी ।

कसएर सुह्र राजागण अधिक समय तक शासना-
 धिकारीभी न रहें । भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और

पञ्चासकी ओर तो यवन राजाओंने अधिकार समाना प्रारंभ कर दिया और मगध तथा मध्यभारत पर जैनसम्राट् कारवेक तथा शान्धराजाओंके आक्रमण होने लगे । कारवेककी मगध विजयमें शान्धराजों राजाओंने उनका सहाय दिया था । मगध पर शान्धराजाओंका अधिकार होगया ! इन राजाओंके हथोगसे जैनधर्म फिर एक बार चमक उठा ।

शान्धराजों राजाओंमें हास, पुलुमापि आदि जैनधर्म प्रेमी कहे गये हैं† । इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियोंको विहार और धर्मप्रचार करनेकी सुविधा प्रदानकी प्रतीत होती है । उदयनीके प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यभी इसी वंशसे सम्बन्धित बताये जाते हैं । वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्यके उपदेशसे जैन हो गये थे‡ ।

इस्वी पूर्व प्रथम शताब्दिमें एक भारतीय राजाका सम्भव रोमके बादशाह अॉगस्टससे था । उन्होंने उस बादशाहके द्विपे भेंट भेजी थी । जो लोग उस भेंटको लेगये थे,

“In the decadence that followed the death of Asoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Khavala of Kalinga, when he invaded Magadha in the middle of the 2nd century B. C. When the Kanvar were overthrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha.”
—SAI, pp 15-16.

† JBORS. I, 75-118 & OHS., I p 582

‡ Allahabad university Studies, pt. II pp 113-147

उनके साथ भृगुपण्ड (महर्षि) से एक धर्मशास्त्रार्थ (द्विपंचर
 जैनाचार्य) भी साथ हो गिये थे । यह युवाव पढ़े-लेखे से खूब
 यहाँ उनका सम्मान हुआ था । शालिन्सस्त्रोतना वतयो
 धाम्य करते उन्होंने अथेन्स (Athens) में प्राणविसर्जन
 किये थे । यहाँ उसी एक निपथिका बना हीगई थी । इस
 मला कटिये, जब उस समय द्विपंचर मुनि विदेशी तर्कमें
 हाकर धर्मप्रचार करनेमें सफल थे, तो वे शास्त्रमें क्यों न
 विद्वान् और धर्मप्रचार करने में सफल हों । जैन साहित्य
 फाना है कि गंगदेव, सुवर्ण, कशप, अथपात्र, पाण्डु, ध्रुवसेन
 आदि विपंचर जैनाचार्योंके नेतृत्वमें सत्सङ्गीत अथधर्म
 प्रसारी हो गये ।

इसकी पूर्व श्रम शालिन्समें भारतमें अपोषो और द्विपंचर
 नामक दो युवानों ने प्रवेश किया था । उनका महाजीन द्विपंचर

‡ "In the 11th year (25 B C) went an Indian
 embassy with gifts to Augustus, from a King called
 Puru by some and Pandua by others... They
 were accompanied by the man who burnt himself at
 Athens. He with a scroll kept upon the pyre asked
 the king what was this inscription, 'Zoraster
 eludes to the custom of his country, hee here'. Zer-
 aster here seems to be the Greek rendering of Sa-
 manabharj or Jainas Here and the self-immolation
 a variety of Nollekhan.' —III, vol II p 293.

(११ =)

मुनियोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ था† । नारायणः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्त्वशाली थे कि वे विदेशियोंका भी ध्यान आकृष्ट करनेको समर्थ थे ।

[१५]

यवन-छत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि !



"About the second century B. C. when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in high esteem by the Indo-Greeks, as is apparent from an account given in the Milinda Patha." —H.G., p. 78.

ग्रीकों के उपरान्त भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, पञ्जाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियोंका अधिकार हो गया था । इन विदेशी लोगोंमें भी

†"Apollonius of Tyana travelled with Damias. Born about 4 B. C., he came to explore the wonders of India.....He was a Pythagorean philosopher & met Iarchas at Taxilla and disputed with Indian Gymnosophists. (Niganthas)"

—QJMS, XVIII, pp. 205-206

जैन मुनियोंने अपने धर्मका प्रचार कर दिया था और उनमें से कई पादशाह जैनधर्ममें शोधित हो गये थे।

भारतीय धर्मों (Irrel.) में मनेन्द्र (Manendrel) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पञ्जाब प्रांत का प्रसिद्ध नगर लाहौर (Lahore) था। बौद्धग्रंथ 'त्रिनिन्दपण्ड' में लिखित है कि उस नगरमें प्रत्येक धर्मके गुरु पहुँच कर धर्मोपदेश देते थे। मालूम होता है कि दिग्भ्यः जैन मुनियोंको यहाँ विशेष आदर प्राप्त था। क्योंकि 'त्रिनिन्दपण्ड' में कहा गया है कि पाँचवीं एनानियोंने राजा मनेन्द्रसे सब धर्माधारके 'निर्ग्रन्थ' धर्म द्वारा मनश्चुष्टि करनेका आग्रह किया था और मनेन्द्रने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था। अन्तः यह जैनधर्ममें दीक्षित हो गया था और उसके राज्य में शक्ति धर्मकी प्रचलना हो गई थी।

यद्यपि (Hinduism) को दृष्टकर यहाँने फिर उत्तर पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होंने 'दुष्यप'— भारतीय साम्राज्य निश्चक करने का प्रयत्न किया था। इसमें राजा दुष्यप (Dushyap) के समय में तक्षशिलामें जैनधर्म उन्नति

* "They received with every of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the best and most of each of the differing sects"

—QJM, p. 8.

† QJM, p. 8

‡ श्री, वर्ष २, पृ० ४४६-४४६

पर था। उस समयके यने हुए जैन ऋषियोंके स्मारक-रूप स्तूप आजभी तक्षशिलामें भग्नावशेष हैं। +

शक राजा कनिष्क, बुविष्क और वासुदेवके राजकाह में भी जैनधर्म उन्नत दशामें रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रन्थ साधु वहाँ विचरते थे। उन नष्ट साधुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जनसमुदाय किया करते थे। X

कुत्रप नहपानभी जैनधर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरातसे भारत तक विस्तृत था। जैन साहित्यमें उसका उल्लेख नरदाहन और नहवास रूपमें हुआ मिलता है। नहपान ही संभवतः मूलशक्ति नामक विगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्सहस्रब्रह्म शास्त्र" की रचना की थी। +

कुत्रप नहपानके अतिरिक्त कुत्रप रुद्रवर्मनका पुत्र रुद्र सिंहका भी जैनधर्मसुक्त होना संभव है। जूनागढ़की 'अपर-कोट' की गुफाओंमें इसका एक लेख है, जिसका सम्बन्धजैन-धर्मसे होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैनमुनियोंके उपयोगमें आती थीं। †

+ AGT, pp. 76—80

X "Another locality in which the Jainas seem to have been firmly established from the middle of the 2nd Century B. C. onwards was Mathura in the old kingdom of Curasena."

—CHI, I, p 167 & see JOAM

+ सरस्वती, भा० २६ अर्ध १ पृ० ७४३--७४६

† IA, XX, 168 ff.

(१११)

इन उल्लेखोंमें यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी लोगों में धर्मप्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि पहुँचे थे और उन्होंने इन लोगोंके निकट सम्मान पाया था ।

[१६]

सम्राट् मेल्लगाबेल आदि कर्लिंग नृप और
दिगम्बर मुनियोंका उत्कर्ष ।



“नन्दराज नीनामि कालिग-जनम्-संविधेयं
महानमान परिद्वारंति शङ्खमागध धसधु वेयाति ।”

(१२ वीं पंक्ति)

“मुद्राणि-मनन-मुर्धिरितासुं च सतदिसासुं अनितम्
नपसि-नविने संविधेयं श्रगहन निनीदिपा समीपे पगरे वर-
धार-सुमयपतिदि धनेकसोजनारितादि प सि ओ वितादि
मिहपथ गति मिकुशाय निसयान.....अरा (अ)
क (ना) सनरे च वेदु-विपयमे धमे धनिकापयति ।” (१५-१६ वीं
पंक्ति)
—हाथोगुप्ता शिवालेख ।

क मिसूरदेशमें पहले नीचेंद्र नरवमान श्रुपमहेशके एक
पुत्रने पहले पहले राज्य कियाथा । उप सर्वश्रु हाकर
नीचेंद्र श्रुपमने शार्यपगदमें सिहार किया तो वह कलिप्रथी
पहुँचेथे । उनके धर्मोपदेशमे प्रभादिन हाकर उत्कालीन कलिह
गज अपने पुत्रको राज्य उँकर दिगम्बरमुनि होगये थे । वस,

कलिङ्गमें दिगम्बर-मुनियोंका सङ्गाव उस प्राचीन कालसे है।

राजा दशरथ अथवा यशधरके पुत्र पांचसौ साधियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिङ्गदेशसे ही मुक्त हुयेथे। तथा वह पवित्र कांठिशिक्षार्थी इसी कलिङ्गदेशमें है, जिसका योगम-ज्ञानसे उठाकर अपना बाहुधल प्रगट किया था और जिस पर से एक करोड़ दिगम्बर-मुनि निर्याणको प्राप्त हुयेथे। सारांशतः एक अतीव प्राचीन कालसे कलिङ्ग देश दिगम्बर-मुनियोंके पवित्र-चरण-कमलोंसे अलंकृत हो चुका है!

इक्ष्वाकुवंशके कौशलदेशीय क्षत्रिय राजाओंके उपरान्त कलिङ्गमें हरिवंशी क्षत्रियोंने राज्य कियाथा। भगवान महा वीरने सर्वश्व होकर जब कलिङ्गमें आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिङ्गके जितशत्रु नामक राजा दिगम्बर मुनि हो गये और उनके साथ और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुयेथे।

उपरान्त दक्षिण कौशलवर्ती चेदिगजके वंशके एक महापुरुषने कलिङ्ग पर अधिकार जमा लियाथा +। ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दिमें इस वंशका ऐल खारवेत्त नामक राजा अपने भुजविक्रम, प्रताप और धर्म कार्यके लिये प्रसिद्धथा। यह जैनधर्मका बड़ा उपासकथा। उसने सारे भारतकी विधिजय

† "असपर गुरुस्स मुवा । पंचसयाभुव कलिङ्ग तेसम्मि ॥

कोटिसिद्ध कोटि मुवि विव्याय गवाः खनां तेसम्मि ॥१८॥"

--विश्वाम्भ-शुभाहा

‡ हरिश्चन्द्रपुराण (कलकत्ता संस्करण) पृ० ६२१

+ JBOBS. Vol III pp. 484-484.

की थी। वह मगधके तुह्यवंशी राजाके दरबार वह 'कलिङ्ग
जिन' नामक शक्ति मूर्तियों वापन कलिङ्ग से लायाया। दिग-
म्बर मुनिपोंकी वद भक्ति और बिलय करताया। उन्होंने उन
के लिये बहुतसे कार्य कियेये। कुमारी पर्वत पर शक्तिभगवान
की नियन्त्राके निकट उन्होंने एक उन्नत जिन प्राप्त किया
या। तथा पंचदशकाप मुद्राओं को स्वयं कानके उस पर
वेदपुराण जड़ित स्तम्भ लङ्के कन्यापंचे। उनकी रामीके सी
जैसमन्दिर तथा मुनिपोंके लिये गुफाके बनवाई थी; जो अप
नक मौजूद हैं X। और भी न जाने उन्होंने दिगम्बर मुनिपोंके
लिये क्या २ नहीं किया था।

उस समय मधुग, उल्लेगी और मित्रिगत जैन ऋषियों
के संस्मरण थे +। लावेसने जैन ऋषियोंका एक महासम्मो-
हन प्रेरक कियाथा। मधुग, उल्लेगी, मित्रिगत काञ्चोपुर आदि
स्थानोंसे दिगम्बर मुनि उस सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये
कुमाटी पर्वत पर पहुँचेये। पद्म भारी धर्म महासम्मेलन
किया था। बुद्धिलिङ्ग, देव, धर्मसेत, नक्षत्र आदि दिगम्बर
जैसाचार्य उन महासम्मेलनमें सम्मिलित हुए थे †। इन ऋषि-

X इति श्री जैमा० पृ० ११

+ III३, Vol IV p 522

+ "महादिशुनुं बनिनम् तपसि-श्रितने सचिपन धमहत निशीहिषा
मसीये..... पोर्वाय धमसहिहं तुविं वपम्बलि ।"

—JHORS, XIII 286-287

† जैसमन्द, ११३ पृ० १२८

पुत्रोंमें मिलकर जिनवाणोंका उद्धार किया था तथा सत्राह् खारवेत्तके सहयोगसे वे जैनधर्म प्रचार करनेमें सफलमनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्रायः सारे भारतमें जैनधर्म फैला हुआ था। यहाँ तक कि विदेशियोंमें भी उसका प्रचार होगया था, जैसेकि पूर्वे परिच्छेदमें लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि पेल्ल खारवेत्तके राजकाहमें दिगंबर मुनियोंका महती उत्कर्ष हुआ था।

पेल्ल खारवेत्तके बाद उनके पुत्र कुक्षेपश्री खर महामेघ-बाह्य कलिङ्गके राजा हुए थे। वहभी जैनधर्मानुयायी थे †। उनके बादभी एक दीर्घ समय तक कलिङ्गमें जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। बौद्धग्रन्थ 'दाहावंसो' से ज्ञात है कि कलिङ्गके राजाओंमें २० बुद्धके समयसे जैनधर्मका प्रचार था। गौतम-बुद्धके स्वर्गवासी होनेके बाद बौद्धमिच्छु खेमने कलिङ्गके राजा ब्रह्मदत्तको बौद्धधर्ममें धीक्षित किया था। ब्रह्मदत्तका पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्वमी बौद्ध रहे थे+। किन्तु उप-

‡ JBOBS, III p. 505.

+ इत्तं वाहुं ततो सौमो अत्तया गहितं घटा ।

इत्तपूरे कलिङ्गस्तं ब्रह्मदत्तस्तं राजिनो ॥३७॥२॥

इसक्षिणत्तं सो धम्मं भेत्था सम्मं बुद्धिद्वियो ।

एवानं तं पक्षादेहिं अनाग्निस्तनत्तणे ॥३८॥

X

X

X

अनुनातो ततो उत्तं कासिणान् ब्वयो सुतो ।

एतं अत्ता अम्मदानं सोकसत्तमपावुदि ॥३९॥

X

X

X

गन्त फिर जैनधर्मका प्रचार कलिद्वयमें होगया । यह समय
 संभवतः खारवेला आदिका होगा । कालान्तरमें कस्मिणका
 गुहनिव नामक प्रवर्षी गजा निर्ग्रन्थ साधुओंका मळ कदा
 गया है । उसके बीस मंथीने उसे जैनधर्म विमुख बना लिया
 था । निर्ग्रन्थ साधु उसकी राजधानी छोड़कर पावलिपुत्र
 चले गये थे । सम्राट् पाण्डु घर्षा पर शासनारम्भकारी था ।
 निर्ग्रन्थ साधुओंने उससे गुहनिवको घृष्टताकी बात कही
 थी X । यह घटना लगभग ईसवी तीसरी या चौथी शताब्दि

मुसदा नाम शक्तिन्दो ज्ञानम्भवतो ततः ।
 तन्म भनो ततो शक्ति मुदताहननामका ३५६॥

- इत्य० पृ० ११-१२

X गुहनीव पंथागवा दुपतिष्कनतासनी ।
 ततो गजाशिरि रन्था अनुनण्डि महानन ३०१३२॥
 सभाम्भानमिज्जं तो सामासकवास्त्रोत्तुणे ।
 मापर्विनो अविज्जन्थे निगन्थे सवुपट्ठहि ३०५॥
 X X X
 तन्ना इवन्मत्त शीरवा कुशाकम्ममुपासितं ।
 दुत्तपट्टिमनमुत्तिष्ठावा पत्तंरिदत्तनचये ३०६॥
 X X X
 इति सा चिन्तापित्तान गुहनीवो नवाविषो ।
 पथात्तेसि सदात्तु निगच्छे ते चत्तेसके ३०६॥
 ततो निगच्छ सत्थेनि पत्तसित्तानसा यथा ।
 कीपमित्तसिता गच्छं पुंरं पायसित्तुत्तकं ३०७॥
 X X X
 तस्य गजा पहातेनो कम्मदीपसस इत्ततो ।
 पट्टु नामोवदा शक्ति ज्ञान्त कलपाइतो ३०९॥

की कही जा सकती है। और इससे प्रगट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियोंकी प्रधानता कस्त्रिह्न-अङ्ग-बङ्ग और मगधमें विद्यमान् थी। दिगम्बर मुनियोंको राज्याश्रय मिला हुआ था।

कुमारीपर्वत परके शिखाहेखोले यहमो प्रगट है कि कस्त्रिह्नमें जैनधर्म दसवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहाँ पर दिगम्बर जैनमुनियोंके विविध खंघ विद्यमान् थे, जिनमें आचार्य यशान्दि, आचार्य कुशचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द्र मुख्य साधु थे।+

इस प्रकार कस्त्रिह्नमें दिगम्बर जैनधर्मका बाहुल्य एक अतीव प्राचीनकालसे रहा है और वहाँ पर आजमी सराक लोग एक बड़ी संख्या में हैं, जो प्राचीन आश्रक हैं†। उनका अस्तित्व इस बातका प्रमाण है कि कस्त्रिह्नमें जैनत्वकी प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान् रही थी।

कौण्ठ्योडय निगच्छ ते जन्मे पंतुअकारका ।
एपठव्वम्मराअनं इदं वचनमव्वुं ॥६२३॥ इत्यादि'

—सोम०, पृ० ११-१४

+ धरिषो जैसमा०, पृ० ६४-६५

† धरिषो जैसमा०, १०१-१०२

गुप्त-साम्राज्यमें दिगम्बर-मुनि !



"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture, but the masses followed the religious traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continued to be public schools and universities for the greater part of India."

—E. B. Havelock, HARI, p. 150.

यद्यपि गुप्तवंशके राज्यकालमें ब्राह्मण धर्मकी उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारणमें अरबी जैन और शैव धर्मकाही प्रचलन था। दिगम्बर जैन मुनिके प्राप्त-प्राप्त विचार का जगतका कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन-विद्यापीठोंके द्वारा ज्ञान दान करते थे। गुप्त कालमें मथुरा, उत्तराखण्ड, भावन्ता, राजगृह आदि स्थान जैनधर्मके केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगम्बर जैन साधुओंके सङ्घ विद्यमान थे। गुप्त-सम्राट् अशोक साधुओंसे द्वेष नहीं रखते थे, तथापि जनक बाद ब्राह्मण विद्वानोंके साथ करार सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री सिद्धसेनदिवाकरके उद्धारोंसे पता चलता है कि

“उस समय सरलाबाद पद्यति और आकर्षक शान्तिवृत्तिका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था । निर्ग्रन्थ अकेले हुकेसे ही ऐसे स्वतंत्रों पर आ पहुँचतेथे और ब्राह्मणादि प्रति-
बादी विस्तृत शिष्य समूह और जनसमुदाय सहित राजसी डाठ-बाठके साथ पेश आते थे; तो भी जो यश निर्ग्रन्थोंको मिलता था वह इन प्रतिवादियोंको अप्राप्य था ।”†

ब्रह्मसूत्रमें पहाड़पुर नामक स्थान दिगंबर जैन सङ्घका केन्द्र था । वहाँके दिगंबर भूनि प्रसिद्ध थे ‡

गुप्तवंशमें चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था । उसने ‘विक्रमादित्य’ की उपाधि धारणकी थी । विद्वानोंका कथन है कि उसीकी राज-सभामें निम्नलिखित विद्वान् थे+ :-

‘ब्रह्मन्तरिब्रह्मणकोऽमरं विहगं कुर्वतात्महृद्यत्सर्परका-
सिदासः । उपातो वराहमिहिरो नृपतेः समीपं रत्नानि वै
वररुचिर्नैव विक्रमस्य ॥’

इन विद्वानोंमें ‘ब्रह्मणक’ नामका विद्वान् एक दिगंबर भूनि था । आधुनिक विद्वान् उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करतेहैं X । जैनशास्त्रमी उनका समर्थन करते हैं । उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेनने ‘महाकाशी’ के मन्दिर

† जैहि० भा० १४ पृ० १२६

‡ IHQ VII. 441

+ आ०, ११३ ।

X समा० बलि ह० १३३-१४१ ।

में चम्पार दिवाकर चन्द्रगुप्तका जैनधर्ममें दीक्षित कर लिया था।—

उपरोक्त विद्वानोंमें से अमरसिंह, बराहमिहिर † आदिने अपनी रचनाओंमें जैनोंका उल्लेख किया है, इससेभी प्रकट है कि उस समय जैनधर्म काफी शक्तिसंपन्न था। बराहमिहिरने जैनोंके अपभ्रंशदेवताको मूर्ति नष्ट बनती लिखी है, इससे यह स्पष्ट है कि उस समय उज्जैनीमें विगम्बर धर्म महत्प्रशान्ती था। जैनसाहित्यसे प्रकट है कि उज्जैनीके निकट महुदसपुर (भीलनगर) में उस समय दिगंबर मुनियोंका संघ मौजूद था, जिसके आचार्योंकी आक्रान्तिकार नामावली निम्नप्रकार है:—

१. श्री मुनि वसुकरदी	"	सन् १०७ में आचार्य हुये
२. " " कुमारकम्बी	" "	३२६ " "
३. " " लोकचन्द्रप्रयाग	" "	३६० " "
४. " " प्रभाकर	" "	३६६ " "
५. " " वेमिसिन्धु	" "	४२१ " "
६. " " भालुनन्दि	" "	४३० " "
७. " " उपनन्दि	" "	४५१ " "
८. " " वसुनन्दि	" "	४६८ " "
९. " " वीरनन्दि	" "	४७८ " "

* मीर, वर्ष १ पु० ५७१

† अमरकोश देखो

‡ 'चन्द्र' विनाश विदुः / -- बराहमिहिर संहिता

१०. श्री मुनि एतमन्दी	...	सू. ५०४	में	आचार्य	हुये ।
११. " " माशिनयनन्दी	...	५२८	" "	" "	
१२. " " मेघचन्द्र	...	५४४	" "	" "	
१३. " " शानिकीर्ति प्रथम		५६०	" "	" "	
१४. " " मेरुकीर्ति	...	५८५	" "	" "	*

इनके बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुए, उन्होंने मइल-पुर (मासवा) से बढ़ाकर जैनसंघका केन्द्र उज्जैनमें बना दिया † । इससेमी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके निकट जैवधर्मको आश्रय मिलाथा । उसी समय चीनी-यात्री फाह्यान भारतमें आयाथा । उसने मथुराके अपरान्त मध्यदेशमें ६६ पाषण्डोंका प्रचार बिखा है । वह कहता है कि "वे सब लोक और परलोक मानते हैं । उनके साधु-संघ हैं । वे भिन्ना करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते । सब नानारूपसे घर्मातुष्टान करते हैं।" दिगम्बर-मुनियोंके पास भिक्षापात्र नहीं होता—वे पाणिपात्र भोजी और उनके संघ होते हैं । तथा वे अहिंसा धर्मका उपदेश मुख्यतासे देते हैं । फाह्यानभी कहता है कि "सारे देशमें सिवाय जाणशास्त्रके कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न छहसुन जाता है ।".....न कहीं

* पञ्चकली तैरि०, भाग ६ सू. ७-८ पृ० १६-१० व LA, XX 351-352

† LA, XX, 352.

‡ काशान पृ० ४६ ।

स्नायात् और मयकी दूकनेई + ।" उसके इस कथनसे भी जैनग्रन्थशास्त्रा समर्थन होता है कि सद्गुरु, उत्कृती आदि मध्वदेश्वरोंने नगरोंमें दिगम्बर जैन मुनिवर्गके संघ भोजगृहों और उनके द्वारा श्रद्धेच्छाधर्मकी उन्नति होतीसी ।

फाह्यान संकाश्य, भावस्ती, रातगृह आदि नगरोंमें भी निर्गन्ध-श्रापुर्णोष्ण श्रान्तिव्य व्यवहृत कनाई । संकाश्य उस समय जैनतीर्थ माना जानाथा । संभवतः यह भगवान विमल नाथ तीर्थद्वारा संवत्मान स्थान है । दो-तीन वर्ष हुए वही निकटमें एक नग्न जैनमूर्ति निष्कलीषी और यह गुह्यकावकी अनुमानती गई है * । इस तीर्थके सन्ध्याधर्म निर्गन्धों और चौदमिष्ठुधर्मों वाद हुआ वह लिखताई † । भावस्तीमें भी चौदमिष्ठुधर्मोंमें विघाद किया वह बताताई ‡ । भावस्तीमें उस समय मुहूर्त्तवत्त पंचके जैवराजा राज्य करते थे † । कुह्लर (गारुडपुर) से आ स्कन्दगुप्तके राजकावका जैनलेख लिताई ‡, उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्यही दिगम्बर जैनधर्म उन्नतावस्था परया ।

साँचीसे एक जैन लेख विक्रम सं० ४६८ भाद्रपद चतुर्थीका मिलताई । इसमें लिखाई कि उन्दावकं पुत्र भाद्रपदकार

+ आसाव, पृ० ११

* IIIQ., Vol. V p. 149

+ आसाव, पृ० १५-१६

* आसाव, पृ० ४१-४२

‡ संयोजिका, पृ० ६२

‡ आसाव, पृ० १ पृ० २५६

देवने ईश्वरवासक गाँव और २५ दीनारोंका दान किया । यह दान काकनाचोटके जैन विहारमें पाँच जैनमिथुओंके भोजनके लिये और रत्नगृहमें दीपक जलानेके लिये दिया गयाथा । उक्त आमरकारदेव चन्द्रगुप्तके यहाँ किसी लैनिकपद पर नियुक्त था + । यहभी जैनोत्कपे का चोटकहै ।

राजगृह परमी फलहाण निर्भर्योंका वस्त्रलेख करताहै*। वहाँकी छुमप्रगुफामें तीसरी या चौथी शताब्दिका एक लेख मिलाहै जिससे प्रगटहै कि मुनिसंघने मुनि वैरदेवको आचार्य पद पर नियुक्त कियाथा‡ । राजगृहमें गुप्तकालकी अनेक दिगम्बर मूर्तियांभीहैं + ।

सारथितः गुप्तकालमें दिगम्बर मुनियोंका बाहुदप था और वे चारै वेशमें छुम २ कर धर्मोद्योत कर रहेथे ।

+ मयाच०, भा० २ पृ० २६३

* "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which he invited Buddha to partake. (The Niganthas were ascetics who went naked)" —Fa-Hian, Beal, pp. 110-11B
यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का चोटक है ।

‡ पवित्रो वैसा०, पृ० १६

+ "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to the Patna Court by R. B. Ramprasad Chanda. B. A. Ch. IV p. 30. (Jain Images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

[१८]

हर्षवर्द्धन् तथा हूणसांगके समयमें दिगम्बर-मुनि !

—

‘बौद्धों और जैतियोंकी भी.. .संख्या बहुत अधिक थी।सदृशमें शक्योंर राजाभी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक-सिद्धान्त और नीति-विचारोंमें तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाजमें माधुश्यों, नपसिध्यों, निजुश्यों और यतियोंका एक बड़ा भागी समुदाय था. जो उस समयके समाजमें विशेष महत्त्व रखता था।... (हिन्दुओं में) सदृशमें साधु अपने निश्चित न्यायों पर बैठे हुये ध्यान-व्यवधि करने थे, जिनके पास बहुत लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। सदृशमें साधु छद्मों व गांधोंमें घूम घूम कर लोगों को उपदेश एवं शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैत नाधुश्योंकी भी था। साधारणतः लोगोंके जीवनका नैतिक पथ धार्मिक बनानेमें इन माधुश्यों, यतियों और भिक्षुश्योंका बड़ा भागी भाग था ।’

—कुम्भचन्द्र विशालपुर. १

गुप्त-साम्राज्यके गढ़ होने पर उत्तर-भागतक शासन
अधोमुख्य हार्थोंमें न रहा। परिश्राम यह हुआ कि शीघ्र
ही हूण ज्ञानिके लोगोंके भारत पर आक्रमण करके उस पर

‡ हर्षवर्द्धन आगत—“रियासत” वर्ष १ सप्ट १ पृ. १०१

अधिकार जमा किया। उनका राज्य सभी अमीरोंके लिये थोड़ा बहुत हानिकर हुआ; किन्तु यमोवर्मन् राजाने संगठन करके उन्हें परास्त कर दिया। इसके बाद इर्षवर्द्धन् नामक सम्राट् एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारतमें शयः अपना अधिकार जमा किया था और दक्षिण-भागको हथि-बानेकी भी जिन्होंने कोसिशकी थी। इनके राजकाजमें प्रज्ञाने संतोषकी साँझ ही थी और वह धर्म-कर्मकी बातोंकी ओर ध्यान देने छपी थी।

गुप्तकाजसे ही ब्राह्मण-धर्मका पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी; किन्तु जैन और बौद्धधर्मभी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक आशुतिका वह उन्नत काल था। गुप्तकाजसे जैन, यौन और ब्राह्मण विद्वानोंमें वाद और शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ होगये थे। इर्षकाजमें उनको वह उन्नतरूप मिला कि समाजमें विद्वान् ही सर्व श्रेष्ठपुरुष गिना जाने लगा। इन विद्वानोंमें विगम्बर-मुनियोंका भी उद्भाव था। सम्राट् इर्षके राजकवि वाचने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा जब गडन अञ्जल में आ पहुँचा तो वहाँ उसने अनेक सरहके उपस्थी देखे। उन में गड (विगम्बर) आईत (जैन) साधुसी थे।" इर्षने अपने महासम्मेलनमें उन्हें शास्त्रार्थके लिये बुलाया था और वह एक

* भा०, पृ० १०१—१०४।

‡ सि०, पृ० २१।

बड़ी संख्यामें उपस्थित हुये थे। इससे प्रकट है कि उस समय हर्षकी गजधारीके आस पासभी जैनधर्मका प्रबलत्व था। वैसे तो यह सारे भारतमें फैला हुआ था । उल्लेखका दिग्दर्शक जैनसङ्घ मयभी मिलेगा या और उसमें सत्वाहीन निम्न दिग्दर्शक जैनाचार्य मौजूद थे + :-

१.	श्रीदिगं०	जैनाचार्य	महाश्रीति,	सन् ६२६	को	आचार्य	हुये,
२.	"	"	विष्णुनन्दि,	" ६५७	"	"	"
३.	"	"	श्रीमृग,	" ६६६	"	"	"
४.	"	"	भाचन्द्र,	" ६७८	"	"	"
५.	"	"	श्रीनन्दि,	" ६६२	"	"	"
६.	"	"	देवशृणु,	" ७०८	"	"	"

इत्यादि ।

मगधात् हर्षके समयमें (७ वीं श०) जोरवेगसे हुएनसांग नामक यज्ञी भाग्य आयादा। उसने भाग्य और भाग्यके बाहर दिग्दर्शक जैन मुनियोंका अस्तित्व बतलाया है * । यह उन्हें निर्ग्रन्थ और मन्त्रेसाधु सिद्धताहै तथा उनकी वैश्वकुञ्जकियाका भी उल्लेख करताहै - । यह वैश्वकर्षकी ओरसे भारतमें हुआथा ।

‡ HARL. p. 270.

+ धर्मो, पृ० ६ यह - पृ० ३० व IA, XX. 562

* "Hsuan Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries."—AISJ, p. 45. शिवेदे शिवे नृसिंहस्य का मन्त्र धर्म (इतिवत् तेषु वि०) है।

+ "The La-li (Nirgranthas) distinguish them-

और वहीं सिद्धपुरी उसने नये जैन मुनियोंको पाया था* । इसके उपरान्त पंजाबके और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, अहिचोष, कपिष, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, बनारस, श्रावस्ती, इत्यादि मध्यदेशवर्ती नगरोंमें यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियोंका प्रथक उल्लेख नहीं किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकारके साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्वको इन नगरोंमें प्रकट कर दिया है । मथुराके सम्बंध में वह लिखता है कि "पांच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें सब प्रकारके साधु उपासना करते हैं ।" स्थानेश्वरके विषयमें उसने लिखा है कि "कई सौ देवमन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जातिके अग्रणीत मिनत धर्मावलम्बी उपासना करते हैं ।" ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरोंके सम्बन्धमें उसने किये हैं ।

राजगृहके वर्णनमें हुएनसाँगेने लिखा है कि "विपुल पहाड़ीकी छोटी पर एक स्तूप उस स्थानमें है, जहाँ प्राचीन-कालमें तथागत मगधान्ने धर्मकी पुनरावृत्ति की थी । आजकल बहुतसे निर्मल्य लोग (जो नङ्गे रहते हैं) इस स्थान पर

selves by leaving their bodies naked & pulling out their hair. Their skin is all cracked, their feet are hard & chapped like cutting trees."

— (St. Julien, Vienna, p224).

* इ.स. ४७३ ई.पू.

† इ.स. ४७३ ई.पू.

‡ इ.स. ४७३ ई.पू.

आते हैं और रत्नदिन शशिंगम तपस्या किया करते हैं तथा सबेरेसे सांझ तक रत्न (मूर्त) की प्रदक्षिणा करने बड़ी सक्ति से पूजा करते हैं ।⁺

पुराणवर्द्धन् (बंगाल) में यह विश्वास है कि "बर्द लो देवमन्त्रिभो है जिनमें अनेक सम्प्रदायके सिद्ध धर्मावलम्बी बसासना करते हैं । अधिक संख्या निम्नस्थ लोगों (दिगम्बर मुनियों) की है x ।"

मसनट (पूर्वी बंगाल) में भी उसन अनेक दिगम्बर साधु पाये थे । वह लिखता है, "दिगम्बर साधु, जिनको निम्नस्थ कहते हैं, बहुत बड़ी संख्यामें पाये जाते हैं + ।"

मालजिमिमें यह विराघो और बौद्ध धर्मोंका मिश्रण यत्नकाता है । कर्णमुद्युर्गके सम्बन्धमें भी यही बात कहता है।

कल्लिङ्गमें इस समय दिगम्बर जैनधर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुये था । दुग्गल्लिंग कहता है कि वहाँ 'सबसे अधिक संख्या निम्नस्थ लोगोंकी है ।'[†] इस समय कल्लिङ्गमें सेनवंशके राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैनधर्मसे सम्बन्ध होना बहुत कुछ संभव है ।

+ इलाहाबाद, पृ० १०१-१०६

x इलाहाबाद, पृ० १०६

+ इलाहाबाद, पृ० १०१

* इलाहाबाद, पृ० १०१-१०२

† इलाहाबाद, पृ० १०१

‡ श्री लक्ष्मी, पृ० १०१-१०२

दक्षिण कौशलमें वह विधर्मों और शैक्ष ढांगोंकी बतता है। ग्राम्भमें भी विरोधियोंका अस्तित्व वह प्रकट करता है।†

चोलदेशमें वह बहुतसे निर्ग्रन्थ लोग बतता है। X द्रविड़के सम्प्रदायमें वह कहता है कि "कोई अस्ती देवमन्दिर और अस्तंख्य विरोधी हैं, जिनको निर्ग्रन्थ कहते हैं।"†

मालकूट (मल्लप्रदेश) में वह बतता है कि "कई सौ देव-मन्दिर और अस्तंख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निर्ग्रन्थ लोग हैं।"†

इस प्रकार हुएसोंग के समय-वृत्तान्तसे उच्च समय प्रायः सारे भारतवर्षमें दिगम्बर जैन मुनि निर्वाध बिहार और धर्मप्रचार करते हुये मिलते हैं।

† हुआ०, पृ० १४१-१४२

X हुआ०, पृ० १४०

+ हुआ०, पृ० १४१

† हुआ०, पृ० १४४

मध्यकालीन हिन्दू राज्यमें दिगम्बर मुनि ।



“श्री धारगणिव सोवगात्र मुकुट प्रोनाम्भरश्मिचन्द्रा—
 रुद्राया कुट्टम-यू-लिन-चरणाम्मोञ्जान-वत्सोषवा।
 न्वास्याञ्जान-गाम्भने दिनमन्दिशुद्धाश्च तद्दोमरि—
 म्येवापन्दिन-पुण्डरीक-नगणि श्रीमात्रमाचंश्रनाम्”

—चन्द्रगिरि शिलालेख ।



हरके उपरान्त उत्तर भागमें खोरे एक
 सम्राट् न रहा, बरिक्त अनेक छोटे-से
 राज्योंमें यह देश विभक्त होयवा । इन

राज्योंमें अधिकतर राजपूनोंके अधिकारमें ये और इनमें द्विज-
 म्बर मुनि निर्वाच विचर कर जनकक्षपाल करतेये । राजपूनोंमें
 अधिकतर ज्ञाने खौरान, पट्टिहार आदि एक समय जैनधर्म-
 भुक्तये और उनके कुलदेवता चकोभगी, शम्बा आदि शासन-
 ईशियायी ।

उत्तर भागमें कन्नोजको राजपूत-कालमेंही प्रधानता
 प्राप्त रहोह । यहाँके राजासोत्र पण्डित (८४०-६० ई०) सारे
 उत्तरभागमें शासनाधिपतीया । जैनचार्य वषस्त्रिने इस
 के करवायमें सादर शान्त कियाथा ।

• “श्री”, पृ० १, पृ० ४३१ एक शचीन जैन गुह्य से एक नाम
 लिखे हुए है।

† यादव, पृ० १०८ व द्वितीय, पृ० २१ पृ० ८४

आवस्ती, मथुरा, असाईखेड़ा, देवगढ़, वाराणसी, वरौन आदि स्थान उस समयभी जैनकेन्द्र बने हुयेये । ग्यारहवीं शतान्दि तक आवस्तीमें जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहाथा । वहां का अन्तिमराजा सुहृद्दुष्यन्तथाऽ। उसके संरक्षणमें दिगम्बर मुनियोंका झोककल्याणमें निरत रहता रहागाबिकई ।

वनारस के राजा भीमसेन जैनधर्मानुयायीथे और वह अन्तमें पिदिताश्रम नामक जैनमुनि हुयेये + ।

मथुरामें रणकेतु नामक राजा जैनधर्मका भक्त था । वह अपने भाई गुणधर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था । आश्विन गुणधर्माको राज्य देकर वह जैनमुनि होमयाथा । x

हरीपुर (जिला आगरा) का राजा जितशत्रुभी जैनीथा वह बड़े २ विद्वानोंका आश्र करताथा । अन्तमें वह जैनमुनि होमया था और शान्तिधीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुआथा - ।

मालवाके परमारवंशी राजा-
मालवाके परमार राजा
और दिगम्बर मुनि
आमें मुख्य और भोज अपनी
विचारसिद्धताके लिये प्रसिद्ध
हैं । उनकी राजधानी वाराणसी विद्याकी केन्द्रथी । मुख्यके
परवारमें धनपात्र, पद्मशुभ्र, धनक्षय, इलायुद्ध आदि अनेक

‡ संघमैत्रा०, पृ० १३

+ जैन० पृ० २४२

x पृ०

+ पृ०, पृ० २४२ ,

विद्वान्धे X । मुञ्ज नरेन्द्रसे दिगम्बर जैनाचार्य महातेजसे विशेष सम्मान पाया था - । मुञ्जके उत्तराधिकारी सिधुगात्रके एक नामन्त्रके अतुरोचसे उन्होंने 'प्रद्युम्न चरित्' का नक्की रचना की थी । कवि धनपालका छोटा भाई जैनाचार्यके उपदेशसे जैन हो गया था, किन्तु धनपालको जैनोंसे विद्वधी । चाकिर उनके दिक्षपर भी सत्य जैनधर्मका सिक्का कम गया और वह भी जैनी हो गये थे ।

दिगंबर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्रजी राजा मुञ्जके सम समीप थे । उन्होंने राजका मोह त्यागकर दिगंबरी ब्रह्म की चीड़ी ।

राजा मुञ्जके समयमें ही प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री अमिनगतिजी हुये थे । वह माहुरसंघके आचार्य भाववसेनके शिष्य थे । 'आचार्यवर्य अमिनगति बड़े भारी विद्वान् और कवि थे । इनकी अज्ञाधारण विद्वत्ताका परिचय पानेको इसके अर्थोंका मन्त्र करना चाहिये । रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बड़ी गंभीर और मधुर है । संस्कृत भाषा पर इनका अक्का अधिकार था *'

'भौतिकाध्याय' अथि अर्थोंके रचयिता दिगम्बरा-

X यासांग०, बा० १, पृ० १००

+ मयासेला०, पृ० १०

† मयासेला० बा० २, पृ० १०१-१०२

‡ पक्षी०, पृ० २४-२५

* दिक्की०, बा० २, पृ० १४

चार्य श्री सोमदेव सूरि श्री क्षमितगति आचार्यके समकालीन थे। उस समय इत दिगम्बरराचार्यों द्वारा दिगम्बर धर्मकी खूब प्रमाणा हो रही थी।†

मुझके समान राजा भोजके दरबारमें
 शक्यमोक्ष और श्री जैनोकी विशेष सम्मान प्राप्त था।
 दिगम्बर मुनि भोज स्वयं शीघ्र था, परन्तु 'बह जैनो
 और हिन्दुओंके आस्त्रार्थका बड़ा असुरागी था।' श्री प्रभा-
 चन्द्राचार्यका उसने पढ़ा आदर किया था। दिगम्बर जैना-
 चार्य श्री शान्तिसेनने भोजकी सभामें सैकड़ों विद्वानोंसे वाद
 करके उन्हें परास्त किया था।‡

एक कवि कालिदास राजा भोजके दरबारमें भी थे। कहतेहैं कि उनकी स्पर्धा दिगम्बरराचार्य श्रीमानतुङ्गाजीसे थी। उन्होंने उक्तसाले पर राजा भोजने मानतुङ्गाचार्यको अद्वैतालीस श्लोकोंके भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री 'मत्कामर स्तोत्र' की रचना करते हुये बह आचार्य अपने योगबलसे कन्धनमुक्त हो गए थे। इस घटनासे प्रभावित होकर कहते हैं, राजा भोज जैवधर्ममें दीक्षित होगये थे +; किन्तु इस घटनाका समर्थन किसी ग्रन्थ श्रोतसे नहीं होता !

श्री ब्रह्मदेवके अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्ता श्री नेमि-

† विर०, पृ० ११५

‡ महाकाण्ड भाग १ पृष्ठ ११८-१२१

+ मत्कामरस्था—वैश०, पृ० २१६

सम्राट्कार्यमी राजा भोजदेवके दरबारमें थे + । श्री गणेशदि नामक दिगम्बर जैनचार्यने अपना "सुवर्जित चरित" राजा भोजके राजकात्तमें समाप्त किया था । +

मोजने अपनी राजधानी बननेमें स्थापितकी थी । इस समयमी बननेनी अपने "दि० जैन संघ" के लिए प्रसिद्ध

थी । उस समय तक इस संघमें निम्न आचार्य हुए थे० :—

अनन्तकीर्ति	सन् ७०८ ई०
गणेशदि	" ७१८ "
विद्यानन्दि	...	"	" ७५१ "
रामचन्द्र	" ७८३ "
रामकीर्ति	" ७९० "
अभयचन्द्र	"	...	" ८२१ "
हरचन्द्र	" ८४० "
नामचन्द्र †	" ८५९ "
हरिनन्दि	"	...	" ८८२ "
हरिचन्द्र	" ८९१ "
सद्दीचन्द्र	"	...	" ९१७ "

+ ११७०, पृष्ठ १ छलिका

+ शशास्त्रिका, पृष्ठिका ५० १०

० जै० ६, भा० ६ पृष्ठ ७-८ पृ० १०-११

† इस से शायद पद्मपुराण में लिखा है कि "इन्होंने दस वर्ष विहार किया था और वह स्थिर लुप्त हो गये।"—द्वितीय वर्ष १४ पृष्ठ १० पृ० १७-१४

माधवचन्द्र...	सन् ६३२ ई०	आपके सठमैं दिगं० मुनियोंको
सुकवीचंद्र	॥ ६९९ ॥	संख्या अधिक थी और आपके
शुण्डीचिं	॥ ६७० ॥	धर्मोपदेशके द्वारा धर्म प्रमावना
शुण्डीचन्द्र	॥ ६६१ ॥	विशेष हुई थी । ७
सोकचन्द्र	॥ १००६ ॥	
श्रुतकीर्ति	॥ १०२९ ॥	रगकीटपाणियाँ 'त्रिचिन्त्रविभेश्वर
भावचन्द्र	॥ १०३७ ॥	रक्षैयाकण्ठमान्कर-महा-संज्ञता-
महीधर	॥ १०५८ ॥	चार्यतर्कवाणीश्वर' थी । इनके
		विहारद्वारा रूप प्रमावना हुई । १

व्यक्त परमार राजाओंके
समयमें दिगम्बरमुनि

मालवाके परमार राजाओं
में विन्ध्यवर्माका नामसे
बह्लोखनीय है । इसराजा

के राजकासमें प्रसिद्ध जैन कवि आशाचरने ग्रन्थरचनाकी थी और उस समय कई दिगम्बर मुनिभी राजसम्मान पाये हुये थे । इनमें मुनि वस्यसेन और मुनि मदनकीर्ति बह्लोखनीय हैं । मुनि मदनकीर्ति ही विन्ध्यवर्माके पुत्र अर्जुनदेवके राज-गुरु महाराजाध्याय अनुमान किये गये हैं । इन्हें और मुनि विशालकीर्ति, मुनि विजयचन्द्र आदिको कविधर आशाचरने जैनसिद्धान्त और साहित्यज्ञानमें निपुण बनाया था । नालवा उस समय जैनधर्मका केन्द्र था । १

१ दिगै०, वर्ष १५ बह्ल १० पृ० १७-२४ ।

१ पृ०

२ भाग०, भाग १ पृ० १४७ व साम०, नृसिंह पृ० ६

श्वेताश्वर ग्रन्थ "चतुर्भिः मुनि प्रबन्ध" में लिखा है कि उरुवैगीमें विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मन्व, कोर्ति नामके दिगंबर साधु थे। उन्होंने वादिपोंको पराजित करके 'महाप्रामाणिक' पदवी पाई थी और कर्णाटक देशमें जा कर विजयपुर नरेश कुन्तिभोजके दरबारमें आकर पाया था और अनेक विद्वानोंको पराजित किया था, किन्तु अन्तमें यह मुनिपदसे हटा हांगए थे।⁺



मालवाके अनुरूप गुजरातमें दिगम्बर जैन मुनियोंका केन्द्र था। उदुसेश्वरमें भूतपति और पुण्ड्रवन्ताचार्यने दिगंबर आगम ग्रन्थोंको रचनाकी थी। गिरि नगरके निकटकी गुफाओंमें दिगंबर मुनियोंका सङ्घ प्राचीन कालसे रहता था। भृगुकच्छमी दिगंबर जैनोंका केन्द्र था।

गुजरातमें चातुर्व्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओंके समयमें दिगंबर जैनधर्म उन्नतशील था। घांसीकेपोंको राजधानी अणहिलपुरपट्टनमें अनेक दिगंबर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनिने वही ग्रन्थ रचताकी थी^x। योगेश्वर मुनि - और मुनि कनकामरणी शायद गुजरातमें हुए थे। इंदरके दिगम्बरसाधु प्रसिद्ध थे।

+ बौद्धि, भा० ११ पृ० ४४४

x बी० ४४१ १० ११०

+ बी०, ४४१ १ १०१३८

खोलकी सिद्धराजने एक वाद समा करार्य थी; जिस में भाग लेनेके लिये कर्णाटक देशसे कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे । दिगम्बराचार्य बल ही पाटन पहुँचे थे । सिद्धराजने उनका बड़ा आदर किया था । देवघरि नामक श्वेताम्बराचार्यसे उनका वाद हुआथा † । इस उद्देशसे स्पष्ट है कि उस समयभी दिगंबरजैनोंका गुजरातमें इतना महत्व था कि शासक राजकुमारोंका भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था ।

गुजरात, सौराष्ट्र आदि देशोंमें सिम्बरचार्य जिनधर्मका प्रचार भी दिगम्बर ज्ञानभूषण महारक ज्ञानभूषणजी द्वारा हुआ था । कश्मीरदेशमें उन्होंने पैरकपय धारण किया था और चाम्बरदेशमें महाजनोंको उन्होंने कस्त्रिकार किया था । बिहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलब, तिलंग, द्राविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, सेदपाट, माहब, मेवाल, कुबजांबल, तुलब, विराटदेश, नमियाडदेश, टग, राट, नाम, चोल आदि देशोंमें बिचरे थे । तौलबदेशके महावादीनवर विद्वत्जनों और चक्रवर्तियोंके मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी । तुरबदेशमें पदवर्धन के हातामोंका गर्व उन्होंने नष्ट किया था । नमियाड देशमें जिनधर्म प्रचारके लिए नौ हजार उपदेशकोंको उन्होंने निष्कृत किया था । दिल्ली पहुँके वह सिद्धसनाधीश थे । श्रीदेवराव-

राज, मुदिवाकराय, गमनायराय, बोरकराय, कछपराय,
पारहुराय आदि राजाओंने उनके चरणोंकी बन्दनाकी थी ।*



श्री ज्ञानसूय्याजी के प्रशिष्य श्री
गुरुचन्द्राचार्यजी दिवम्बर मुनि
थे । उनका पहला दिल्लीमें रहा

था । उन्होंने भी विद्वान् करते हुये गुजरतके वादियोंका मद्
नष्ट किया था । वह एक अद्वितीय विद्वान् और वादी थे ।
अनेक ग्रन्थोंकी उन्होंने रचनाकी थी । पहलाखलीमें उनके लिखे
लिखा है कि "वह ह्दय-अलङ्कारादिशास्त्र—समुद्रके पारगामो,
गुहात्मा के स्वरूपचिन्तन करनेकी से निद्राकां विनिष्ट करने
वाले, सब देशोंमें विद्वान् करनेसे अनेक कल्पायुषोंको पाने
वाले, विवेक, विचार, चतुरता, मन्मीरटा, धीरता, धीरता
और गुणगणके समुद्र, महद पात्र वाले, अनेक क्षत्रियोंका
पालन करने वाले, सभी विद्वत्समसङ्गोंमें सुशोभित करीर
वाले, गौड़वादिपोंके अणुकारके लिखे सूर्यकेसे, कविल्लवादि-
रूपी मेघके लिखे वायुके से, कर्णवादिपोंके प्रथम वचन
बहदन करनेमें परम समर्थ, पूर्ववादीरूपी मातङ्गके लिए
सिंहके से, तौलवादिपोंकी विद्वम्बनाके लिए वीर, गुल्ल
वादिरूपी समुद्रके लिए अगस्त्यके से, शास्त्रवादिपोंके लिखे
मस्तकप्रज्ञ, अनेक अभिमानियोंके सर्वका नाश करने वाले,

* वैश्वानर, भाग १, पृ. १५७ & १५८-१६०

स्वसमय तथा परसमयके शास्त्रार्थको जानने वाले और महा-
व्रत श्लोकार करने वाले थे ।[†]

उज्जैनके उपरान्त दिगम्बर
मुनियोंका केन्द्र यिन्याचक
पर्वतके निकट स्थित वाराणसर

नामक स्थान हो गया था। वाराण एक प्राचीनकालसे ही
जैनधर्मका यह था। आठवीं या नववीं शताब्दिमें यहाँ श्री
एकनाथि मुनिने 'अम्बुद्वीपग्रहति' की रचनाकी थी। इस ग्रन्थ
की प्रशस्तिमें लिखा है कि "वाराणसरमें शान्ति नामक राजा
का राज्य था। वह नगर घनधान्यसे परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि
जनोंसे, मुनियोंके समूहसे और जैनमन्दिरोंसे विभूषित था।
राजा शक्तिजिनशासनधरसत्त्व, वीर और नरपति संपूजित था।
श्री परमन्दिश्री ने अपने मुख व अन्यरूप इन दिगम्बर मुनियों

† मैसिया०, या० १ कि० ४ पृ० ४६-४० :—

"श्रद्धेयव्याघरि शाकसर्गस्वविषाण वाप्यार्थ, सुदक्षिणचिन्तन
विनायि निद्वन्द्व, समदेवविद्यारवाप्यानेकमद्वेषां, त्रिकविचार चतुर्व्यं
मन्वीर्ष्यैर्व्यपीर्ष्यैर्गुणायसमुदाया, वत्कृष्णार्था, पानिधनेक शब्दाभ्यासां,
विद्विमानेकोत्तमपाश्र्व्याद् सकलविद्वन्मनसपामोभितगाथसा, गौडवादिमः
सूर्य, कश्चिद्वादिबलदसदागति, कर्माश्रयादिपथमनजन सरहनसमर्थ, पूर्व-
चदि मत्तमातङ्गभोग्य, तौष्ठादिविभग्वनधोर, गुणैर वादिस्त्रियुक्तभोग्य,
नाभवादिमसकम्पूष, निदानेक्य सर्वैतवैशाल्य दत्तापर्यासां, ज्ञानसकल-
स्वसमयपरसमय शास्त्रार्थानां, अन्नेकमहाभुक्ताभ्याम् ।"

‡ IA, XX. 858—854.

या इत्येव क्रिया द्वैः शौरनन्दि, चमनन्दि, क्षुण्डितपगुरु,
 माघनन्दि, चक्रचन्द्र और श्रीनन्दि । इन्दी ज्ञपियोंकी शिष्य
 परम्परामें उपरान्त बागनगरमें निम्नलिखित दिग्दर्शनार्थी
 का सम्बन्ध रहा था :—

माघचन्द्र	..	सन् १०६३
ब्राह्मन्दि	१०८७
शिघ्रनन्दि	.. .	१०६१
विष्णुचन्द्र	१०६८
हरिनन्दि (मिह्रनन्दि)	१०६६

* "निर्मितिको गुणान्तरि निर्मितिको गुणित्तिवत्तयात् ।"

"हर गजवत्पत्तौ विशयको माघनन्दिगुण ।"

"गुणित्तिवत्तयात्तौ गुणान्तो मयनन्द गुण ।"

"तस्मैव इ वदित्तिवत्तौ निम्नचक्रगुणान्तो गुणित्तिवत्तौ ।"

मन्दिगुणान्तौ निर्मितिको निर्मितिको निर्मितिको ०१२३३"

गुणान्तो मयनन्दो गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

हरिनन्दि-शिघ्र-शिघ्र गुणान्तो व श्रीनन्दि ०१२३३"

"मन्दि-शिघ्रान्तौ गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

वर्तमानिकान्तौ मयनन्दि गुणान्तो निर्मितिको ०१२३३"

वर्तमानिकान्तौ मयनन्दि गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

वर्तमानिकान्तौ मयनन्दि गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ०१२३३"

"निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

"निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

द्वितीया—मन्दिगुणान्तौ मयनन्दो निर्मितिको गुणान्तो मयनन्दो निर्मितिको ।"

† तिथि, भा० ६ अ० ७-८ पृ० ३१ व 1A. XX 364

भाषनम्बि	सन् ११०३
देवतम्बि	" १११०
विद्याचन्द्र	" १११३
सूरचन्द्र	" १११६
माघनम्बि	" ११५७
हाननम्बि	" ११६१
गङ्गकीर्ति	" ११४२

इन दिगम्बराचार्यों द्वारा उस समय मध्यदेशमें जैन धर्मका खूब प्रचार हुआ था ।

वि० सं० १०२५ में अल्लू नामक राजाकी सभामें दिगम्बराचार्यका बाद एक श्वेताम्बर आचार्यसे हुआ था ।†

चन्देल राजा मदनवर्मदेव के
समय (११३०-११६५ ई०) में
दिगम्बर धर्म उन्नतरूप रहा

था + । खजुराहोमें घंटाईके मन्दिर वाले शिखारोपसे उस समय दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रका पता चलता है ।×

तेरहवीं शताब्दिमें अमन्त वीर्य नामक दिगम्बराचार्य प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने वादियोंको गतमन् किया था + ।

इसी समयके लगभग एक गुचकीर्ति नामक महामुनि विशद

† ADJB, p. 45

+ वि० सं० भा० ५ पृ० १६२ ।

× वि० सं० भा० ५ पृ० ६५० ।

△ ADJB, p. 85

धर्म-प्रचारक थे। उन्हींके उपदेशमें पद्मनाभ नामक काव्यस्थ
कविने 'पद्मोपर चन्द्रि' की रचनाकी थी। x

<p>रत्नसूत्रना, मध्यमांश मन्वानस्तदि देवो के शासन घोरे दिग्भ्यः मुनि ।</p>	<p>सत्त्वमेवके नी- दान राजास्यो ने मी दिग्भ्यः</p>
--	--

जैनधर्मका अन्तर्ग था। योजोत्तियाके श्री पार्ष्वनाथजी के
मन्दिरका दिग्भ्यः मुनि पद्मनन्दि और शुभचन्द्रके उपदेशमें
पृथ्वीगजने मंगलकृतीमर्षि और सोमेश्वर राजाने रेशसुनामक
गीत भेंट किये थे। ७

चिन्तौरका जैनशक्ति मन्त्रा यहां पर दिग्भ्यः जैन
धर्मकी प्रधानताका चोत्तर है। सम्राट् कुमागपालके समय
यहां पहाड़ी पर बहुतसे दिग्भ्यः जैन (मुनि) थे।†

दिग्भ्यः जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्रजी का सम्मान और
और विजय महागण्ठा हस्तीर किया करने थे।‡

भर्तृहरी शिलेका देवगढ़ नामक स्थानकी मण्डपान्तर्ग
दिग्भ्यः मुनिर्षाका केन्द्र था। यहां पाँचवीं शताब्दिमें तेर-

x 'पद्मेन उपदेशेन गुणयैति भाषयतेः।
पद्मनाथ पद्मनाथेन उचितः पूर्णं सूत्रम् । —संशोभर पारि।

† गद०, भा० १, पृ० १६३।

‡ "It (शैव शक्तिमन्त्र) belongs to the Ujjainar
Jain-panth of which it is to have been upon the
Hill in Kumargal's time" —पद्मनाथो, पृ० १३५

§ "श्रीपरमेश्वरानुचितवचने ह्येवै मयात एवधर्मिय"। "शैव-
भा० ६, पृ० ३-४ १० २६।

इसमें महाभक्ति तत्काल शिष्टाचार्य दिगम्बर धर्मकी प्रधानता का चोत्क है।

ग्वालियरमें कच्छुपघाट (बड़वाहे) और पड़िहान राजाओंके समयमें दिगम्बर जैनधर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किल्लेकी जैनजैनमूर्तियां इस व्याख्याकी साक्षी हैं। बाराणस के बाद दिगंबर मुनियोंका केन्द्रस्थान ग्वालियर हुआ था। और वहाँके दिगम्बर मुनियोंमें स० १२६६ के आचार्य रत्नमूर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्वाहाधविद्याके समुद्र, बाल ब्रह्मचारी, तपस्वी और ब्राह्मण थे। उनके शिष्य तथा शैश्योंमें कैले हुए थे।+

मध्यप्रान्तके प्रसिद्ध हिन्दू शास्त्रक कलचुरीकी दिगंबर जैनधर्मके आश्रयदाता थे।

बङ्गालमें भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओंसे स्पष्ट है। 'भक्तमङ्गल' में चम्पापुरका राजा कर्ण जैनी लिखा है। म० महाबीरकी जन्मनगरी विशाला या राजा लोकपाल जैनीका। पटनाका राजा घासीदाहन श्रीशिवभूषण नामक मुनिके उपदेशसे जैनी हुआ था। गौड़देश का राजा प्रतापति पौण्ड्रमर्षा, परन्तु जैनसाधु मतिवायरकी वादशक्ति पर मुग्ध होकर प्रजासहित जैनी हुआ था X। इस समयका जो जैन शिल्प बङ्गाल आदि भागोंमें मिलता है, उससे उक्त जैन कथाओंका समर्थन होता है। आश्रयक बङ्गाल में

+ पैगि०, भा० ६, पृष्ठ ७-८ पृ० २१)

X पैगि०, पृ० २४०—२४३

शास्त्रीय शास्त्रक 'मन्त्रक' लोकोक्त पक्षी संख्यामें मिलना बहुत
 पर एक समय दिग्भ्रम जैनधर्मकी प्रधानताका द्योतक है ।

एक प्रकार मध्यकालके हिन्दू गुरुओंमें प्रायः समस्त
 उत्तर भारतमें दि० मुनियोंका विद्या और धर्मप्रचार होताथा ।
 आठवीं शताब्दिके उपरान्त जब दक्षिण भारतमें दिग्भ्रमजैनों
 के साथ झगडा होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्रस्थान
 उत्तर भारतकी ओर पढ़ाना शुरू कर लिया था । उल्लेख, बतान-
 नमर, शालिगर आदि म्णालोका जैनकेन्द्र होना, इसही बात
 का द्योतक है । ईस्वी ६-१० शताब्दिके जब झगडा सुखेमान
 नामक यात्री भारतमें आया तो उसने भी यहाँ महुँ साधुओं
 की एक बड़ी संख्यामें देखा था २ । मार्गशतः मध्यकालीन
 हिन्दूकालमें दिग्भ्रम मुनियोंका भारतमें बाह्यत्व था ।

२ "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rarely communicate with the rest of mankind..... Some of them go about naked"

—Sulstman of Arab, Ethos, I, p. 4

[२०]

भारतीय संस्कृत-साहित्य में दिगम्बर मुनि ।

—+—

“पाणिः पाशं पवित्र भ्रमणपरिगतं मैत्रमकुर्व्यमन्नं ।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशा सुदश कममहं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
वेपं निःसङ्गं ताक्षी कण्ठपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणाम्बे ।
घम्याः सन्धस्तदैन्दुशमिकरुतिकरः कर्मनिर्मुक्तयन्त्रिः ॥”

—वैराग्यशतक ।

भारतीय संस्कृत साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंके क्लेश मित्रते हैं । इस साहित्यसे हमारा मतलब उस सर्वसाधारणयोगी संस्कृत साहित्यसे है, जो किसी खास सम्प्रदायका नहीं कदा जा सकता । उदाहरणतः कवि-वर भृत् हरिके शतक-ग्रन्थको लीजिये । इनके 'वैराग्यशतक' में उपरोक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनिकी प्रशंसा इन शब्दों में की गई है कि “धिनका हाथही पवित्र बर्तन है, मांग कर खाई हुई मोसही जिनका भोजन है, दशों विकारों ही जिनके बख हैं, सम्पूर्ण पृथ्वीही जिनकी शय्या है, एकान्तमें निःसंग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दोगटाको जिन्होंने छोड़ दिया है तथा कर्मोंको जिन्होंने निर्मूल कर दिया है और जो अपने में ही संतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषोंको घन्य है॥” आगे इसी

'शुनस' में कविधर दिगम्बर मुनिवत् चर्चा करनेको भावना करते हैं :-

अशीमद्विषय विज्ञानाशा वासोवसीमहि ।

शुनो मदि मदी पृष्ठे कुर्वीमहि किमोदधरः ॥६०॥

अर्थात्—“अब हम जिज्ञाही काके भोजन करेंगे, दिशाही के शत्रु धारण करेंगे अर्थात् गान रहुँगे और मूर्ति पण्डो श्रुत करेंगे। फिर मथा हमें धनवानों से क्या महत्त्व !” †

इस प्रकरणके दिग्म्बर मुनिओ कवि जमादि गुणगोन अभय प्रकट करते हैं -

धैर्यं तस्य पिता हाता च जगती शान्तिश्चिरैर्गद्विषी ।

सत्यं मित्र मित्रं दया च भगिनी ज्ञातजनक संयमः ॥

शुष्या भूमिर्लव्यं दिशोऽपि बसत ज्ञानाभृतं भोजनं ।

सेते यस्यकुटुंबिनो वद सखे कस्याङ्गयं योगिनः ॥६२॥

अर्थात्—“धैर्य जिसका पिता है, सुमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संयम जिन्हा दुष्मा मन जिसका भार है, भूमि जिसकी मुख्य है, दशों दिशाये ही जिसके बसू है और ज्ञानाभृतही जिसका भोजन है—यह सब जिसके कुटुंबो हों मथा उस योगी बुद्धको जिसका गण हो सकता है !” ‡

‘शैवगव्यसतक’के उपरोक्त श्लोक स्पष्टनवा दिग्म्बर

† शैवैः, पृ० ४०

‡ शैवैः, पृ० ४०

मुनियोंको लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमें वर्णित सधर्मी कश्यप जैन मुनियोंमें मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटकमें कश्यप जीवसिद्धिका पाठ दिगम्बर मुनिका द्योतक है +। वहाँ जीवसिद्धि के मुखसे कहलाया गया है कि—

“सासकमसिंहंताणं पडिवल्लह मोहवाहि वेत्तासुं ।

जेसुसमात्तकहुअं पन्हापत्थं मुपदिसन्ति ॥१८॥४॥”

अर्थात्—“मोहरूपी रोगके इच्छा करने वाले अहंताओंके छाछनको स्वीकार करो, जो मुहूर्त मात्रकेलिये कहुवे हैं, किंतु पीछेसे पथ्यका उपदेश देते हैं।”

इस नाटकके पाँचवें अहमें जीवसिद्धि कहता है कि—

“अल्लहंतासुं पयमामि जेदेगंभीसदाप बुद्धीप ।

सोएत छोहि लोप सिद्धि मग्गेहि पक्कान्दि ॥२॥”

भावार्थ—“संसारमें जो बुद्धिकी गंभीरतासे कोष-तीत (असौक्य) मार्गसे मुक्तिको प्राप्त होते हैं, उन अहंताओंको मैं प्रणाम करता हूँ।”

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेखसे गन्धर्वनालमें कश्यप—दिगम्बर मुनियोंके निर्वाध विहार और धर्मप्रचारका समर्थन होता है, जैसे कि पहले लिखा जाचुछ है।

'धराहमिहिर संहिता' में भी दिगम्बर मुनियोंका

+ HDW., p- 10

* वेदो., पृ० १०-११

उल्लेख है। उन्हें वहाँ जिन भगवानका उपासक बताया है।
बराहमिहिरके इस उल्लेखसे उनके समयमें दिगंबर मुनियों
का अस्तित्व प्रमाणित होना है। अर्थात् भगवानकी मूर्तियों
भी बह नभ ही बताते हैं।†

कवि द्रुमिदन् (आठवीं श०) अपने "दृशकुमारचरित्"
दिगंबर मुनिका उल्लेख 'क्षपणक' नामसे करते हैं, जिससे
उनके समयमें नानमुनियोंका होना प्रमाणित है।‡

'पञ्चतन्त्र' (सूत्र ४) का निम्न श्लोक उस कालमें
दिगंबर मुनियोंके अस्तित्वका सातक है x :—

"श्रीमद्गो मकरध्वजस्य जयिनीं सवार्थं सम्यक् करी ।
ये मूढाः प्रविष्टाय पान्ति कुपियो मिथ्या कर्तविपियः ॥
ते तेषैव निहस्य निर्दयतरं नभीह्ला मुषिद्धताः ।
केचिद्वृक्षपटीह्लाभ्य अटिताः कापामिकाभापरे ॥"

"पञ्चतन्त्र"के "अपरीक्षितकारकपञ्चमतन्त्र" की कथा
दिगंबर मुनियोंसे सम्बन्ध रखती है। उससे पारमिषुत्र

† "शाक्यान् मथोत्तस्य शान्ति मनपो नगान् भिनानां विद्."
७१६/५११

‡ "सात्रानु नम्यषट्पुः श्वेत्कालाद्वा पशान्त्रमुत्तिष्य ।
दिग्गोत्रान्प्रदत्तो नपयान्त्र कामोऽदृती देव ॥१७४२५३॥"
—बराहमिहिर उल्लेख।

+ बीर, वर्ष २ पृ० ३१५

x पञ्च दिगंबरधार ग्रंथ ३० १६०२ पृ० १६४—JG XIV.

(पटला) में दिग्म्बर धर्मके अस्तित्वका बोध होता है। कथा में एक वार्द्धके अपत्यक विहारमें जाकर त्रिनेत्रमगधानकी वन्दना और प्रवक्षिणा देते दिखा है। उसने दिग्म्बर मुनियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंने आपत्तिकी कि श्रावक होकर यह क्या करते हो? ब्राह्मणोंकी तरह यहाँ आमन्त्रण कैसा? दि० मुनि तो आहार वेला पर घूमते हुये मरु ध्यावकके यहाँ शुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं + । इस उल्लेखसे दिग्म्बर मुनियोंके निमन्त्रण स्वीकार न करने और आहारके लिये भ्रमण करनेके नियमका समर्थन होता है। इस तन्त्रमें भी दिग्म्बर मुनिको एककी, गृहत्यागी, पाश्चिपत्र भोजी और दिग्म्बर कहा है †

“प्रबोधचंद्रोदयनाटक” के अङ्क ३ में विम्वरिखित वाक्य दिग्म्बर तीन मुनिको एककासौग चातुस्यताके बोधक हैं :-

“सदि पेक्य पेक्य एसो गल्लयतमक पड्ड पिच्छिसवी-
 इच्छवेद्वच्छुदीच्छुच्छि अचिउरो मुक्कवसणवेसदुद्धुदसपो
 सिदिच्छिद्वपिच्छुआइत्वो इदोउोष पडिइहावि ।”

भावार्थ—“हे सज्जि वेक देव, वह इस ओर आरहा

+ “अपत्यकविहार गया त्रिनेत्रस्य प्रवक्षिण्यर्थं विपाय.....”

‘नोः शक्यं, धर्मोऽपि किञ्चैव वक्षसि । किं त्वं ब्राह्मणतमानाः एव आच-
 न्मस्य कुरुषि । त्वं सर्वैव उक्तास्य परिष्कारं समन्तोऽर्त्तमानं चक्षकमव-
 लोम्य तस्य सुते गच्छायः ।.....’ पत्र., ३० १-१ व JG XIV.126

‡ ‘एककीगृहत्यागकः पाश्चिपत्रो दिग्म्बरः ।’

है । उसका शरीर अच्युत और मलच्छिन्न है । शिरके चाल सुखिन किसे हुये है और वह मृदा है । उसके हाथमें मोरपिच्छिका है और वह इंद्रने में शमनोप है ।”

इस पर उस सखीने कहा कि —

“मां व्रतं मया, महाभोदप्रवर्तिनोऽयं दिग्म्बर सिद्धांतः ।”

(मगः प्रविशति यथानिर्दिष्टं सुषणुक्षेत्रो दिग्म्बरसिद्धांतः)

मावार्थ—“मैं जान गई ! वह मायाभोह द्वारा प्रवर्तित दिग्म्बर (जैम) सिद्धांत है ।” (सुषणुक्षेत्रमें दिग्म्बर मुनिने वहाँ प्रवेश किया :)६

गाइकके उक्त उल्लेखसे हम बातका भी समर्थन होता है कि दिग्म्बर मुनि त्रिपौरुं सम्मुख घटमें भी घर्षोपदेशके लिये पहुँच जाते थे ।

“योगाध्याय” नामक उपोनिषद् ग्रन्थमें दिग्म्बर मुनियों की दो सूत्र्य और दो चन्द्रादि विषयक मान्यताका उल्लेख करने उसका निर्घन किया गया है। इस उल्लेखसे ‘योगाध्याय’ के कर्ताके समयमें दिग्म्बर मुनियोंका वाङ्मय प्रमाणित होता है। ‘योगाध्याय’ के टीकाकार लक्ष्मीदास दिग्म्बर सम्प्रदाय में स्वयं ‘जैमों’ का प्रकट करते हैं और करते हैं कि “जैमोंमें दिग्म्बर प्रचल थे ।” +

+ प्रबोध चन्द्रोदय भाग संक ३—16, XIV pp 45-50.

+ (Goladharya 8, Verses 8-10)—The naked ascetarians and the rest affirm that two erms, two

संस्कृत साहित्यके उपरोक्त उल्लेखोंसे दिगम्बर मुनिवर्गके अस्तित्व और उनके निर्वाचन विहार और धर्मप्रचार करनेका समर्थन होता है ।

[२१]

दक्षिण भारतमें दिगम्बर जैन मुनि ।

“सरसा पयसा रिक्केनाति नुच्चजलेन च ।
जिनजग्मादिकल्पसुखेने तीर्थत्वमाश्रिते ॥४०॥
नाशमेभ्यति सदमौ मारवोर मच्चिद्धः ।
रघास्यतीह अचिरप्रान्ते विषये वृक्षिणादिके ॥४१॥”

—श्री भद्रबाहुचरित ।

द्विगम्बर जैनधर्म दक्षिण भारत में रचना निरिचत है ।	द्विगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्तने जो स्वप्न देखा उसका
---	---

फल बताते हुये कह गये हैं कि “अक्षरहित तथा कहीं छोड़े

moons and two sets of stars appear alternately; against them I allege this reasoning. How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons, and stars, when you see the revolution of the polar fish (*Ursa Major*)! The commentator Lakshmidas agrees that the Jainas are here meant ... & remarks that they are described as 'naked sectarians' etc, because the class of Digambaras is a principal one among these people.”—AR., Vol. IX. p. 817.

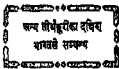
जनसंभरे हुये सरोवरके देखनेसे यह सब जाना कि जहाँ श्रीधर मगवानके कल्याणदि हुये हैं ऐसे हीर्यस्थानोंमें काम-देवके मङ्गलका छेदन करने वाला उत्तम जिनधर्मनाशको प्राप्तहोगा तथा जहाँ दक्षिणदि देशमें कुछ रहेगा सोः॥” और दिगम्बर-चार्यकी यह शक्तिवाणी कृपेव कृपेव डोक ही उतरी है । जय हि उत्तर भागमें कमी २ दिगम्बर मुनियोंका अभाव भी हुआ । नय दक्षिण भागमें आजतक परापर दिगम्बर मुनि होते आये हैं । और दिगंबर जैके ओ कृष्णकुन्दानि पड़े २ आचार्य दक्षिण भागमें ही हुये हैं । अतः दक्षिण भागमें दिगम्बर मुनियोंका गट रुदना योजना नहीं है ।

अपने श्री
द्विभू भाष

अच्छ तो यह देखिये कि दक्षिण
भागमें दिगम्बर मुनियों का
सङ्घात किस जगह से हुआ है ?

जैक्याह वनवाते हैं कि इस कल्पजन्ममें कर्मभूमिके आदिमें श्री श्रृपसदेवजीने सर्व प्रथम धर्मका निरूपण किया था और उनके पुत्र बाहुधरि दक्षिण भारतके शासनाधिकारी थे । पाद-नयुन इनकी राजधानी थी । भगवान् श्रृपसदेव ही सर्वप्रथम वहाँ धर्मोपदेश देते हुये पहुँचे थे । यह दिगम्बर मुनि थे, यह पटले ही सिद्धा जा चुका है । उनके समयमें ही बाहुधरि भी राजपाठ छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गये थे । इन दिगम्बर मुनि

की विशालकाय नव मूर्तियां दक्षिण भारतमें अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। अथशिवलोलमें स्थित मूर्ति ५७ फीट ऊंची अति मनोहर है, जिसके दर्शन करने देश-विदेशके यात्री आते हैं। कारकल—वेनूर आदि स्थानोंमें भी ऐसी ही मूर्तियां हैं। दक्षिण भारतमें बाहुबलि मुनिराजकी विशेष मान्यता है †



शृंगभद्रके उपरान्त अन्य तीर्थहरीके समयमें भी विगम्बर धर्मका प्रचार दक्षिण

भारतमें रहा था। तेह्रसवें तीर्थहरी श्री पार्श्वनाथजीके तीर्थमें हुबे राधा करकण्डुने आकर दक्षिण भारतके जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावणके वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थहरी की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने वन्दना की थी +। वहीं बाहुबलिकी और श्रीपार्श्वनाथजी की मूर्तियां थीं जिनसे रामचन्द्रजीने लङ्कासे काकर वहां स्थापित किया था X। अस्तिम तीर्थहरी मगधल मदावीरने भी अपने पुनीत चरणोंसे दक्षिण भारतको पवित्र किया था। मलयपर्वतवर्ती हेमंगवेश में जब वीर प्रभु पहुँचे थे तो वहां का जीवम्बर नामक राजा उनके निपट विगम्बर मुनि होगया था + .। इस प्रकार एक

† कैलिंग, मूर्तिका पृ० १०-१२

+ करकण्डु बलि संधि ५

X कैलिंग, मूर्तिका पृ० २६

+ भगवत, पृष्ठ ६६

अन्यत्र प्राचीनकालसे विगम्यर मुनिपौका सद्भाव दक्षिण भारतमें है ।

दक्षिण भारत है इतिहास है ६५४	किन्तु आधुनिक इतिहास- वेत्ता दक्षिण भारतका इतिहास ईसवी पूर्व छठी
---------------------------------	--

या चौथी शताब्दिसे आरम्भ करते हैं और उसे निम्न प्रकार
द्वै भागों में विभक्त करते हैं—

- (१) प्रागैमिक काल—ईस्वी ५ वीं शताब्दि तक
 - (२) पहलवकाल—ई० ५ वीं से ६ वीं शताब्दि तक
 - (३) चालुक्यकाल—ई० ६ वींसे १४ वीं शताब्दि तक
 - (४) विजयनगर साम्राज्यका उत्कर्ष—१४ वीं से १६ वीं श०
 - (५) मुसलमान और मगदहा काल—१६ वीं से १८ वीं श०
 - (६) ब्रिटिश काल—१८ वीं से १९ वीं श० ई०
- दक्षिण भारतके उत्तर सीमावर्ती प्रदेशके इतिहासके

द्वै भाग इस प्रकार हैं—

- (१) आर्य काल—ई० ५ वीं श० तक
- (२) प्रागैमिक चालुक्य काल—ई० ५ वींसे ७ वीं श०
और राष्ट्रकूट ७ वीं से १० वीं श०

* S.A.L., p. 81.

- (३) अन्तिम चातुर्व्य काल—ई० १० वीं से १४ वीं श०
 (४) विजयनगर साम्राज्य
 (५) सुतसुमान—मरुहट्टा
 (६) ब्रिटिश काल ।

अथवा तो उपरोक्त ऐति-
 हासिक कालोंमें दिग्म्बर
 प्राग्मिक काल में
 सिक्खी मूर्ति।
 जैन मूर्तियोंके अस्तित्वको
 दक्षिण भारतमें देख लेना चाहिये । दक्षिण भारतके "प्राग्-
 मिक काल"में चेर, चोल, पाण्ड्य—यह तीन राजवंश प्रधान
 थे † । अर्थात् अशोकके सिक्खालोकमें भी दक्षिण भारतके इन
 राजवंशों का बहिष्कार मित्रता ही ‡ । चेर, चोल और पाण्ड्य—
 यह तीनों ही राजवंश प्राग्मिकसे जैनधर्माभ्यासी थे x । जिस
 समय कुरुपट्ट राजा सिंहल द्वीपके लौट कर दक्षिण भारत
 —शशिपु देशमें पहुँचे तो इन राजाओंसे इनको मुठभेड़ हुई
 थी । किन्तु अशोकके जव उन्होंने इन राजाओंके मुकुटोंमें
 जिनोन्द्र मगवान्की मूर्तियाँ देखीं तो इनसे सन्धि करली + ।

† S.A.L., p 38 ‡ अशोक सिक्खालोक

x "Pandya Kingdom can boast of respectable
 antiquity. The prevailing religion in early
 times in their Kingdom was Jain creed"
 —मथैसा, पृ० १०६

+ "दक्षिण भारत में सिक्खिक-संस्कृत कालकुरुपट्ट का ।
 या सिक्खिकदेशमें किन्तु यमनु—संपत्तक वही मङ्गलकुरुपट्ट ॥

कलिह्वयकवर्ती ऐतम्पारवेश जैन थे। उनकी सेवामें इन राजाओं में से पाण्ड्यराजने स्वतः राज-श्रेष्ठ भेजी थी X । इससे भी इन राजाओंका जैनहोना प्रमाणित है, क्योंकि एक श्रावक का श्रावकके प्रति अनुगम होना स्वाभाविक है । और जब ये राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियोंका आश्रय देना प्राकृत आदर्शपथ है ।

पाण्ड्यराज उपसंभवहृदो (१२०-१४० ई०) के राजदरबारमें दिगम्बर जैनगुरु श्री कुन्दकुन्द विरचित तामिलग्रन्थ "कुरुरेण" प्रगट किया गया था। जैन कथाग्रन्थोंसे उस समय दक्षिण भारतमें अनेक दिगम्बर मुनियोंका होना प्रगट है । 'करकण्ठ चरित्' में कलिह्व, तेर, द्रथिड आदि ऋषिसावर्ती देशोंमें दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है । भ० महावीरने महामहिन इन देशोंमें विद्वान् किया था, यह रूप सिखा जा चुका है । तथा मौर्यचन्द्रगुप्तके समय शुकसेवतो भद्रबाहु का मनु सदिह दक्षिण भारतका जन्म इस बातका प्रमाण है कि दक्षिण भारतमें उनसे पहले दिगम्बर जैनधर्म विद्यमान था । जैनग्रन्थ "राजावली कथा" में वहाँ दिगम्बर जैन मन्त्रिणां श्री

तदि चोरे चोर पटिय जिवाह—हेण्ण विरासदेने निवीवाहि ।
 "करकण्ठ" चरित्तसे सिस्सो सिगमवट मत्तिय वरवेदि त्थो ।
 मवड मदि वंत्तियि जिथपविट करकण्ठोत्तयव वट्टुणु इह ११०१
 —करकण्ठचरित्त सन्धि ८

X JBORS, III p 446

‡ पल्लवशा०, पृ० १०५

दिगम्बर मुनियोंके होनेका वर्णन मिलता है। बौद्धग्रन्थ 'महि-
मेसल्लै' में भी दक्षिण भारतमें ईस्वीकी प्रारम्भिक शताब्दियों
में दिगम्बर धर्म और मुनियोंके होनेका उल्लेख मिलता है।*

“शुतावतार कथा” से स्पष्ट है कि ईस्वीकी पहली
शताब्दिमें पश्चिम और दक्षिण भारत दिगम्बर जैनधर्मके केन्द्र
थे। शोधर सेनतत्त्वार्थजीका संघ गिरनार पर्वत पर उस समय
विद्यमान था। उनके पास आगमग्रन्थोंको अवधारण करने के
लिये दो तीक्ष्ण-बुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आये
थे और उपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरामें चतुर्मास ज्वलीत
किया था। इस उल्लेखसे उस समय दक्षिण मथुराका दिग-
म्बर मुनियोंका केन्द्र होना सिद्ध है। †

तामिल जैनकाव्य “नालदि-
“नालदियार” और शिगम्बर मुनि । यार”, जो ईस्वी पांचवीं
शताब्दीकी रचना है, इस बात
का प्रमाण है कि पारल्यराजका देश प्राचीन कालमें दिगम्बर
मुनियोंका आश्रय-स्थान था। स्वयं पारल्यराज दिगम्बर मु-
नियोंके भक्तथे। “नालदियार” की उपरिष्ठके सम्बन्धमें कहा
जाता है कि एक दफा उत्तर भारतमें दुर्मिष्ठ पड़ा। उससे
बचनेके लिये आठ हजार दिगम्बर मुनियोंका सङ्घ पारल्यदेश
में जा रहा। पारल्यराज उन मुनियोंकी विद्वत्ता और तपस्या
को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अन्धे दिन आये तो

* SSLJ., pp. 82—88.

† पृष्ठा ०, पृ० १९-२०

इस सङ्घने उत्तर भागकी ओर लौट जाना चाहा, किन्तु पाल्हाणजिन उनकी सत्सङ्गति छोड़ने के लिये तैयार न थे। अतएव उस मुनिमहू का प्रत्येक माधु एक एक श्लोक अपने अपने कामन पर लिखा छोड़कर विद्वान् कर गये। अब ये श्लोक प्रत्येक चिन्ते मये तो वह संप्रदाय एक अन्धा आसा काव्यग्रन्थ बन गया। यही "नालविचार" था †। इससे स्पष्ट है कि पाल्हाणजिन उस समय दिग० जैवधर्मदा केन्द्रण और पाल्हाणजिन कलसुवर्णशुद्धे सजाट् थे। यह कलसुवर्णशुद्धे उत्तरभारत से दक्षिणमें पहुँचा था और इस वंशके राजा निम्बवर मुनियों के मफल और शुक थे + ।

गङ्गावर्ण राजा और
दिगम्बर मुनिमल।

इन्हीं दूस्त्री श्लाघिमें मैसूर
में गङ्गावर्णी जमीरजा माधव
कौमुदियमां राज्य कर रहे

थे X। उनके गुरु वि० जैवधर्म सिंहात्मिक थे। गङ्गावर्णकी स्थापनामें एक आचार्यका महारा हाथ था। शिलालेखोंसे प्रकट है कि इन्दाब् (मूर्धवंश) के राजा धनसुवर्णकी अन्तर्निमें एक गंग-दत्त नामका राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नामसे इस वंश का नाम 'गङ्गा' वंश पडा था। इस गङ्गावंशमें एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका सुभद्रा उज्जैनके राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारतकी ओर चला गया था।

† SSII., p 91 + 'परीक्षा', मुद्रिका पृ० ५-६

X स्था०, परिष्क, पृ० १६५

उसके दो पुत्र दक्षिण और माघव भी उसके साथ गये थे । दक्षिण में पेवूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट कर्णभण्डारके आचार्य सिद्धनन्दिसे हुई, जिन्होंने उन्हें निम्नप्रकार उपदेश दिया था —

“यदि तुम अश्वनी प्रतिष्ठा भंग करोगे, यदि तुम जिन-शासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्रीका प्रदूषण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अश्वमांसा संसर्ग करोगे, यदि तुम आश्विनका रखने वालोंको दाम न दोगे और यदि तुम युद्धमें नाम आओगे तो तुम्हारा वंश नष्ट होजायगा ।”*

द्विगम्बरप्राचार्यके इस साहस बढ़ाने वाले उपदेशको दक्षिण और माघवने शिरोधार्य किया और उन आचार्यके सहयोगसे वह दक्षिण भारतमें अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे । उपरान्त इस वंशके सभी राजाओंने जैन-धर्मका प्रभाव बढ़ानेका उद्योग किया था । द्विगम्बर जैनाचार्य की कृपासे राज्य या क्षेत्रकी याददाशमें उन्होंने अपनी ध्वजा में “मोरपिच्छिका” का चिह्न रक्खा था, जो द्विगम्बर मुनियों के उपकरणोंमें से एक है ।

गङ्गवंशी अविनीत कौमुदी (स. ४२५—४७८) ने पुन्नाह १००० में जैनमुनियोंको मूमिदान दिया था । गङ्गवंशी कुर्वनीठिके शुक ‘शम्भान्तार’ के कर्ता द्विगम्बरप्राचार्य भी पूज्यपाद थे । †

* मनीषा०, पृ० ११६-१४०

† मनीषा०, पृ० १४४

कादम्बरगजावली दिग्गज मूर्तियों के एक वंश	महाराष्ट्र और कोकल देशोंकी और उम समय कादम्बरवंश के राजा लोग
---	---

उत्पन्न हो गये थे । यह वंश (१) गोंया और (२) बनवासी, ऐसे दो शाखाओंमें बंटा हुआ था और इसमें जैनधर्मकी मान्यता विशेष थी । दिग्गजर मुदकोंकी विनय कादम्बरगजावली कहते हैं । एक विद्वान् लिखते हैं कि :—

"Kadamba Kings of the middle period (1750-1780) were unable to suppress the growth of Jainism as they had to bow to the "supreme Archats" and endow lavishly the Jain ascetic groups. Numerous orders of Jaina priests, such as the Yajnyas, the Sivranthas and the Kurchakas are found living at Palasika (JA. VII. 36-37) Agan Sctipatas and Aharaohiti are also mentioned. (Ibid VI) 81) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks. Four Jaina Men named Jayadharala, Vijaya Dharala, Atidharala and Mahadharala written by Jaina Gurus Vinayaka and Jinasena living at Banavase during the rule of the early Kadambas were recently discovered"

—QJMS XXII 61-62

सर्धान्—“मध्यकालके मुरेशले इण्डिया तक कादम्बर-

वंशी राजागण जैनधर्मके प्रभावसे अपने फों बचा न सके । 'महान् ग्रहस्तवेव' को नमस्कार करते और जैनसाधुसंघों को सब दान देते थे । जैन साधुओंके अनेक संघ जैसे वापनीय ० निर्ग्रन्था और कूर्चकः कावम्बोंकी राजधानों पालाशिकमें रह रहे थे । श्वेतपट + और ग्रहगण्टि x संघोंके बढा होनेका बह्लोक्षमी मिलता है । इन तरह पालाशिक और बनवासी सयल जैन साधुओंसे वेदित मुख्य जैनकेंद्र थे । दिगम्बर जैन गुरु बोरसन और जिनसेन ने जिन उपधवल, विजयधवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रंथों की रचना बनवासीमें रहकर प्रारंभिक कदम्ब राजाओंके समयमें की थी, उन चारों ग्रंथोंकी प्रतियां हालही में उपलब्ध हुई हैं ।^१

श्री० शेषागिरि राय इन प्रारंभिक कदम्बोंको भी जैनधर्मका मक्त प्रगट करते हैं । उनके राज्यमें दिगम्बर जैन मुनियोंको धर्मप्रचार करनेकी सुविधायें प्राप्त थीं ।— इस प्रकार कदम्बवंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियोंका समुचित सम्मान किया गया था ।

* वापनीय उपके मुनिगण दिगम्बर भेष में बढते थे, यद्यपि वे श्री-भक्ति आदि मानते थे । सेत्रो दर्शनसार

† 'निर्ग्रन्थ'—दिगम्बर मनि

‡ 'कूर्चक' किन जैनसाधुओं का चोतक है वह प्रगट नहीं है !

+ श्वेतपट—श्वेताम्बर

x ग्रहगण्टि संभवतः दिगम्बर मुनियों का चोतक है । शायद 'गण्टीक' शब्द से इसका विकास हो ।

+BSIJ., pt. II p. 89-72



एक समय पल्लववंशके राजा

श्री जैनधर्मके रक्षक थे ।

सानवां शताब्दिमें जब ह्वार-

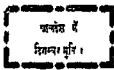
म्यांग इन देशमें पहुंचा ता उसने देखा कि यहां दिग्म्बर जैन

साधुओं (निरर्थकों) की संख्या अधिक है । पल्लववंशके शिव-

कचवधर्मा नामक राज्यके गुरु † दिगंपराचार्य कुन्दकुन्द थे ।

उपगत इस पंडितका प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्म्मन् पहले जैन

था और दिग्म्बर साधुओंकी विनय करता था † ।



चौल्लदेशमें भी उस चीनो यात्री

ने दिग्म्बरधर्मके प्रचलित

पाया था । * मल्लकूट

(पाण्ड्यदेश) में भी उसने मोगी जैनोंको बहुतसंख्यामें पाया

था † । सातवीं शताब्दिके मध्यभागमें पाण्ड्यदेशके राजा

कुण या सुन्दर नामके दिग्म्बर मुनिको का भक्त था । उसके

पुत्र दिग्म्बराचार्य श्री अमलकोलि थे ‡ और उसका विशाल

एक चोल राजकुमारों के साथ हुआ था, जो शैव थी ।

उनके संसर्ग से सुन्दर पाण्ड्य भी शैव हो गया था । †

† P. S. Hist. Intro., p. XV

+ E.H.I. p. 415

* इ.स. ७००

‡ इ.स. ७००—'The nude Jainas were present in multitude'—E.H.I. p. 478

+ A.D.J.R. p. 16

‡ E.H.I. p. 478

दूसरों का तक प्रायः सब राजा	सच बात तो यह है
हिन्दू धर्मधर्मको आभयदाता थे	कि दक्षिण भारतमें
	दिगम्बर जैनधर्मको

मान्यता ईसवी दूसरों प्रतापि तक खूब रही थी । दिगम्बर मुनियों सर्वप्र विद्वान् करके धर्मका उद्योग करते थे । इसी का परिणाम है कि दक्षिण भारतमें आजभी दिगम्बर मुनियों का बड़ाव है । यह बात इस विषयमें लिखते हैं कि—

"For more than a thousand years after the beginning of the Christian era, Jainism was the religion professed by many of the rulers of the Kannarese people. The Ganga Kings of Talcaul, the Rashtra Kuta and Kolachurra Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains. The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism. The Panjya Kings of Madura were Jains and Jainism was dominant in Gujarat and Kathiawar"

भाषार्थ—“ईसवी सन्के प्रारंभ होनेसे एक हजारसे ब्यास वर्षों तक कन्नड़ देशके अधिकांश राजाओंका मत जैनधर्म था । तत्कालके महू राजाका, मान्यसेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल सब इस ही धर्म थे । ब्राह्मणमतको मानने वाले को कादम्बराला

ये उन्हींने श्री शरंभके चालुक्योंने जैवधर्मके प्रति उदारता का पत्रिचय दिया था । मद्राके पाण्ड्यराजा जैन ही ये श्री- गुजरात तथा कठियावाड़में भी जैनधर्म प्रचार था ।”

चालुक्य राजा
वै दिगम्बर मुनि ।

आन्ध्रवंशी राजाओंने जैनधर्म के आशय दिया था, यह पाले लिखा जा चुका है ।

चौथ श्री चालुक्य समुदायका नाम दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था । चालुक्य राजाओंमें पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदिने दिगम्बर विद्वानोंका सम्मान किया था । विक्रमादित्यके समयमें विज्ञप् पंडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रनिभाग्रामी वादीथे । इस राजाने एक जैनमंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था । चालुक्यराज गोविन्द तृतीयने दिगम्बर मुनि अर्धकीर्तिका सम्मान किया और दान दियाथा । यह मुनि ज्योतिष विद्यामें निपुण थे । वेङ्गिराज चौलुक्य विज्ञयादित्य ६ म के मुरु दिगम्बराचार्य अर्हन्मन्दि थे । इन आचार्यकी शिष्या आमेक्षाम्बादे रुद्रने पर राजाने दान दिया था । मारांश यह कि चालुक्यराज्यमें दिगम्बर मुनियों और विद्वानोंने निरापद हो धर्मोद्योत किया था ।

गच्छकृतपालमें
दिगम्बर मुनि ।

राष्ट्रकूट अथवा राष्ट्रकूट राजवंश जैनधर्मका महान् आशय दाता था । इस वंशके कई

* SSIJ, pt I p 111
† ADJB, II 19 व किंबो, भा. १२ २० ७६ ‡ ADJB, p. 69

राजाओंने अणुजनों और महाजनों का धारण किया था, जिस के कारण जैनधर्मकी विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनंफालक दिग्गज विद्वान् दिग्म्बर मुनि विहार और धर्म-प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रंथएत आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हृदयशुद्धिपुराण", श्री सुषभद्रा-चार्यका "उत्तर पुराण", श्रीमहावीरचार्यका "गणितसार संग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओंके समयकी रचनायेंहैं +। इन राजाओंमें अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरबके लेखकोंने की है और उसे संसारके श्रेष्ठ राजाओं में गिना है x। वह दिग्म्बर जैनाचार्यका परमभक्त था।

सम्राट् अमोघ वर्ष दिग्म्बर मुनि ये	उसने अरब राज-पाठ त्याग कर दिग्म्बर मुनिका व्रत स्वीकार किया था - ।
---------------------------------------	--

उसका रचा हुआ 'एनमास्तिका' एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। उसके शुक दिग्म्बराचार्य श्री जिनसेन थे, जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोकमें कहा गया है कि वे श्री जिन सेनके परश्योंमें नतमस्तक होते थे :-

+ SSIJ, pt. I pp 111-112

x Elliot, Vol I pp. 3-24--"The greatest King of India is the Balahara, whose name imports 'King of Kings'."—Ibn Khurdadbeh. व भाषाशा०, भाग ३ पृ ११-१५

+ 'एनमास्तिका' में अर्थाधिकारी इस बातकी इन शब्दों में स्वीकार किया है :-

"विशेषात्पत्न्याज्येन राजेश एनमास्तिका
 शिवाऽमोघवर्षेण मुनिय सद्भक्तकृतिः ॥"

"यस्य प्राणान् कान्तुमात्रं विसरद्वाग्मनराविमोह—
 त्वादात्मोन्नराजः पित्रुहमुकुटं प्रत्यग्ररत्नमुक्तिः ।
 संस्मर्ता स्वममोघवर्षवृषतिः पूनोऽहमघोत्पत्तां
 स श्रीमास्त्रिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥"

अर्थात्—“जिन श्री जिनसेनके वेदीयमान नरोंके
 फिरण समूहसे फैलती हुई चारा बहती थी और उसके नीचे
 आं उनके चरखकमलकी शोभा को धारण करते थे उनको राज
 से अब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर लगे हुए ग्लोकी
 कति पीछी पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपको
 पवित्र मानता था और अपनी बच्ची अबद्याका सदा स्मरण
 किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिन-
 सेनाचार्य सदा संकल का मंगल करे ।”

अमोघवर्ष के राज्य काज में एकान्तपक्षका नाम
 होकर स्वाहाह मतकी विधेय धनति हुई थी । इसीविधे
 दिगम्बरचार्य श्री महावीर “गणितसारसंग्रह” में उनके
 राज्यकी वृद्धिकी भाषना करते हैं * । किन्तु एव राजा
 के बाद राष्ट्रकुट राज्यकी शक्ति क्षिप्त मिन्न होने
 लगी थी । यह बान मंगवाजीके जैनधर्मानुयायी एकराजा तर-
 सिङ्गको सहन नहीं हुई । उन्होंने कल्याणोन राठौर राजा की
 सहायता की थी और राठौर राजा इन्द्र चतुर्थको पुनः राज्य-
 सिंहासन पर बैठाया था । राजा इन्द्र दिगम्बर जैनधर्म

* “विश्वलोकान्तपक्षस्य स्वाहाक-प्रपथितः
 ऐस्य वृष्टुइत्य भद्रेता तस्य उत्पन्न ॥६॥”

का अनुयायी था और उसने सख्तेजना वत धारण किया था * ।

गङ्गादा और सेनापति चामुण्डराय ।	इस समय गंगवादी के गङ्गाजाओंने जैनोत्कर्ष के लिये खास प्रयत्न
------------------------------------	--

किया था । गङ्गमहल सत्यवाचक और उनके पूर्वज मारसिंह के मन्त्री और सेनापति दिनन्द† जैन धर्मानुयायी घोरमार्तण्ड राजा चामुण्डराय थे । इस गङ्गवंशकी राजकुमारी पत्निकन्देने आर्यिकके वत धारण कियेथे। श्री अजितनेनाचार्य और मेमिचन्द्राचार्य इन राजाओंके गुरु थे। चामुण्डरायजीके कारण इन राजाओं द्वारा जैनधर्मको विशेष उन्नति हुई थी । दिगंबर मुनियोंका सर्वप्र आनन्दमई विहार होता था‡ ।

कलाचूरि बंसके राजा दिगम्बर मुनियों के बड़े उरधक थे ।	किन्तु राजाका साहाय्य पाकर भी गङ्गकूट वंश अधिक टिक न सका ।
---	--

और पश्चिमीय चालुक्य प्रधानता पा गये । किन्तु यह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके—उनको कलाचूरियों ने हरा दिया । कलाचूरी बंसके राजा जैतधर्मके परम भक्त थे । इनमें विक्रमवराहा मसिह और जैतधर्मानुयायी था । इसी राजाके समयमें वासुधने "सिंहायत" मत स्थापित कियापर ।

* SBLJ pt. I p. 112

† महीला ० पृ० १२०

‡ तीर, पर्व ० अङ्क १-२ देखो

किन्तु विजयनगर राजा श्री विगम्वर जैनधर्मके प्रति अटूट भक्ति के कारण शासक अपने मठका बहुप्रचार करनेमें लक्ष्मण त हो सका था । आशिर अब विजयनगरके फतेहपुरके गिरीसाहज राजाके विरुद्ध युद्ध करने गये थे, तब इन शासकने घोषे से उन्हें विप देकर मान डाला था + । और तब काही शिवायल मठका प्रचार हो सका था । इस घटनासे स्पष्ट है कि विजयनगर विगम्वर मुनियोंके लिये कैसा आशय था ।

<p>होयसाभवर्गी राजा श्री विगम्वर मुनि ।</p>	<p>मैसूरके होयसाहज वंशके राजापणु श्री विगम्वर मुनियों के आशयदाना</p>
---	--

ये । इस वंशकी स्थापनाके विषयमें कहा जाता है कि साब नामका एक व्यक्ति एक मंदिरमें एक जैन धर्मके पास विद्या-ध्यान कर रहा था, उस समय एक शेरने उत साधुपर आक्रमण किया । साबने शेरको भागकर बचकी रहा की और वह 'होयसान' नामसे प्रसिद्ध हुआ था X । वरदान ठन्ही जैन-साधुका आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्यकी नींव जमाई थी, जो गृह बना हुआ था । इस वंशके सबही राजाओंने विगम्वर मुनियोंका आदर किया था, क्योंकि वे सब जैन थे - । होयसाहज राजा विगम्वरके गुरु विगम्वर साधु श्री शालि-देव मुनि थे । इन राजाओंमें विहिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन

+ कर्त्तव्या, १०, १० (१२१-१२५)

X SSIJ, pt I p. 115

+ कर्त्तव्या, १० (१२५-१२७) * SSIJ, pt I p. 115

राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैनधर्मका दृढ़ भ्रष्टानी था। उसकी रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बरगचार्य श्री प्रभावन्द्रजी शिष्या थीं। किन्तु उसको एक दूनने रानी वैष्णवधर्म की अनुयायी थी। एक बड़े राजा इस रानीके साथ राजमहल के झोखेमें बैठा हुआ था कि सड़क पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजाको यहकाने के लिये यह अवसर अच्छा समझा। उसने राजासे कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे मुँह हैं तो मला उन्हें बुलाकर अपने हाथमें भोजन करादो"। राजा दिगम्बर मुनियोंके धार्मिक नियमको भूलकर कहने लगे कि "यह कौन षड़ी बाल है"। अपने हीन अहंका उसे खयाल न रहा। दिगम्बर मुनि लड़ू हीन, रोगी आदिके साथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनिमहागज को षड़माह लिया। मुनिराज अंतराय हुआ जानकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ़ गया और वह वैष्णव धर्ममें दीक्षित होगया। किन्तु उसके वैष्णव हो जानेपर भी दिगम्बर मुनियोंका शाश्वत उसके राज्यमें बना रहा। उसकी अप्रमदपी शान्तलदेवी अभी दिगम्बर मुनियोंकी भक्त थी और उसके सेनापति तथा प्रधान मंत्री गंगराजभी दिगम्बर मुनियोंके परम सेवक थे। उनके संसर्गसे विष्णुदर्शनने अन्तिम समयमें भी दिगम्बर

‡ Ibid. p. 116

* AR, Vol. IX p.266

मुनियोंका सम्मान किया और जैन मन्दिरों को ध्वस्त किया था। उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वाराभी दिगम्बर मुनियोंका सम्मान हुआ था। नरसिंहका प्रथममंत्री दुन्दुभि दिगम्बर मुनियोंका परम भक्त था। उस समय दक्षिण भारत में चामुण्डराय, गङ्गादास और दुन्दुभि दिगम्बरधर्मके महान् प्रभावक और स्वयं समझे जाते थे †। बल्लाळराय होयसालके गुरु श्री चामुण्डराय प्रती थे †। राजा पुलिस्त होयसालके गुरु अस्तिगमुनि थे †।

विजयनगर साम्राज्यमें दिगम्बर धर्म।	विजयनगर साम्राज्यकी स्थापना शार्ङ्ग-सम्भता और संस्कृतिकी रक्षाके
---------------------------------------	--

लिये हुए थी। वह हिन्दू संगठनका एक आदर्श था। शैव-वैष्णव-जैन—सबसे कठिने से कठिना लड़ा कर धर्म और देश रक्षाके कार्यमें पगे हुए थे। स्वयं विजयनगर सम्राटोंमें इन्द्रिह द्वितीय और राजकुमार उग्र दिगम्बर जैनधर्ममें दीक्षित होकर विंशंकर मुनियोंके महान् आश्रयदाता हुये थे †। विंशंकर मुनि श्री धर्मभूषणराज राजा देवरायके गुरु थे तथा आचार्य विद्यामन्दिने देवराज और कृष्णराय नामक राजाओं के दानधारणें वाद किया था तथा विहागी और कारकणमें दिगम्बर धर्मकी रक्षा की थी †।

† अश्वमेधा० प्रवचनना १० ११

+ अश्वमेधा०, पृ० १६२

+ SSLJ., pt. I p. 118

‡ Ibid.

x ADJB., p. 81

* अश्वमेधा०, पृ० १६२

मुस्लिम काल में
दिगम्बर मूर्ति ।

मुस्लिमकाल में देश अक्षित
और दुःखित हो रहा था ।
आर्यधर्म संकटाकुल थे ।

किन्तु इस परभी हम देखते हैं कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक
हैदरअलीने अन्धधेलगोलकी मत्तदेवमूर्ति श्री गोमटदेवके
सिधे श्री शैवीकी जगोर मेंकी थी † । उस समय अन्ध-
धेलगोलके जैनमठमें जैनसाधु विद्याभ्ययन कराते थे । दिगं-
बराचार्य विशालकौर्तिने शिकन्दर और बौद्ध पट्टनायकके
सामने वाद् किया था ‡

मैसूर के राज और
दिगम्बर मूर्ति

मैसूरके शोहबरायसी राजा-
ओंने दिगंबर जैनधर्मको
विशेष आशय दिया था और

वर्तमान शासकमी जैनधर्म पर लक्ष्य हैं । समहर्षी शताब्धि
में महाकबडू देव नामक दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैनमठके
गुरुके शिष्य और महावादी थे । उन्होंने कर्णसाधारणमें वाद्
करके जैनधर्मकी रक्षा की थी । वह संस्कृत और कन्नडके
विद्वान् तथा छै भाषाओंके ज्ञाता थे+ । जैनरानी मैरवदेवीने
मणिपुरका नाम बदलकर इनकी स्मृतिमें 'महाकबडूपुर' रखा
था—वही आजकलका शटकल है x । श्री कुम्भराय और

† AR, Vol. IX 207 & 281J, pt. I p. 117

‡ मैसूर ०, पृ० १११

+ HKL, p. 88

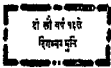
x इलौव०, भा० १ पृ० १०

अश्वत्थामय राजाके सम्मुख श्री दिगंबर मुनि नेमिचन्द्रने वाद किया था । †



पुण्डरी (उत्तर अर्घट) के तीसरे क्षुण्णदेव मंदिरके दिग्दर्शन कहा जाया है कि

पण्ड्यादेव राजाकी मङ्गलीका मृतवाधा सतानी थी । उसी समय क्रुद्ध शिवायिोंके पास एक दिगंबर मुनिने श्री ऋषभदेव का मूर्ति देखी । मुनिजी ने वह मूर्ति उनसे लेली । इन्हीं शिवायिोंने राजासे मुनिजी की प्रशंसा की । उसपर राजाके मुनिजी की पन्ड्या भी श्री उनसे मृतवाधा दूर करनेका अतुरोध किया । मुनिजी ने अतुरोध की मृतवाधा दूर करदी । राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त मंदिर बनवाया । ‡



इसिये भारतमें दो सौ वर्ष पहले कई एक दिगंबर मुनियोंका सङ्घाष था ।

उनमें मन्नागुडीके पर्याकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध हैं । उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरोंकी प्रविष्टा करती थी । † उनके अनिर्दिष्ट सौंघ महा मुनि और परिजन महासुनिभी प्रसिद्ध हैं । उन्होंने जित्ताम्बूर नामक ग्राम

† मञ्जुसा, पृ० १६१

‡ दिग्दर्शन, पृ० ६५७

‡ Ibid, p. 801

में वहाँ के ब्राह्मणोंके साथ बाध किया था और जैनधर्म का बरका बजाया था। तब से वहाँ पर एक जैन विद्यापीठ स्थापित है०। सचमुच दक्षिण भारतमें एक अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियोंका सङ्गाव रहा है। प्र० प० एम० उपाध्याय इस विषयमें लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमितरूपमें दिगम्बर मुनि हाँते आये हैं। पिछले सौ वर्षों में सिद्धय्य आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस ओर हो गुरूरे हैं; किन्तु खेद है, उनको जीवन सम्बन्धी घातों उपलब्ध नहीं है।

दक्षिण भारतकी तरफ ही महा-
महागाइ देव के
दिगम्बर जैन मुनि। राष्ट्रेशमी जैनधर्मका केन्द्र था।
वहाँ अब तक दिगम्बर जैनोंकी

बाहुल्यता है। कोल्हापुर, वेतगाम आदि स्थान जैनोंकी मुख्य बस्तियाँ थीं। कहते हैं एक मरतवा कोल्हापुरमें दिगम्बर मुनियोंका एक वृद्ध लक्ष आकर ठहरा था। राजा और रानीने भक्तिपूर्वक उसको वन्दनाकी थी। वैषयोंग से लक्ष जहाँ पर ठहरा था वहाँ आग लग गई। मुनिगल उसमें भस्म होगये। राजाको बड़ा परिताप हुआ। उसने उनके स्मारकमें १०८ दि० मन्दिर बनवाये। लक्ष में १०८ ही दिगम्बर मुनि थे। इस घटनासे महाराष्ट्रमें एक समयमें दिगम्बर मुनियोंकी बाहुल्यता

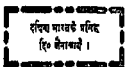
* दिगैशो, पृष्ठ ८५६

† Jainism was specially popular in the Southern Maratha country." E.H.L., p. 444

‡ पञ्चासैखाना, पृ० ३६

का पता चलता है। सचमुच महागाष्ट्रके गृह, चालुक्य, शिला-
हार आदि संशुके राजा दिगंबर जैनधर्मके पोषक थे; और
बड़ी शान्ति है कि वहाँ दिगंबर मुनियोंका बड़ी संख्यामें
विद्यालय हुआ। शिलाहारों शनाष्ट्रमें दूयें दो दिगंबर मुनियों
का पता चलता है। महादो एक पद्वि जिनदासके गुरुविद्याल-
दिगंबराचार्य श्री बल्लभकीर्ति थे। दूसरे महत्सिंहार ली
थे। उन्होंने स्वतः कुम्भकपद्म दीक्षा ली थी। उपरान्त वेकेन्द्र
कीर्ति भद्राचार्यसे विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की थी। बन्नादेश
में उन्होंने तृण धर्मप्रस्थापनाकी थी। गुरुओंको उन्होंने जैनी
बनायाथा। इदी गाँव आजका समाधिस्थान है, जहाँ सदा मेजा
लगता है। उनके स्तूपे हुए अत्यन्त मिसले हैं। (म. ३६० पृ०
६५—६२)

शाके ११२० में कांठदापुरके अजगन्धर्व स्वामिने त्रिभुवन
शिलाक धर्मशालामें श्रीविद्याकीर्ति आचार्यके श्रीसोमदेश-
चार्यने ग्रंथ रचना की थी।



दिगंबर जैनियोंके प्रायः
सब ही दिग्गज विद्वान्
और आचार्य दक्षिणभारत
में ही हुए हैं। उन सबका संक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहाँ
संभव नहीं है; किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगंबराचार्योंके वर्णन
यहाँ पर दे देता हूँ। अक-ज्ञानके शता दिगंबराचार्योंके वर्ण-
रान्त जैनसङ्घमें श्री कुम्भकुन्दाचार्यका नाम प्रसिद्ध है। दिगं-
पर जैनोंमें उनकी मान्यता विशेष है। यह महातपस्वी और

बड़े ब्राह्मी थे । दक्षिण भारतके अधिवासी होने परभी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेतांबरोंसे वाद किया था + । तामिल साहित्यका नीतिग्रन्थ कुरैल उन्हींकी रचना थी x । उन और उन्हींके समान अन्य दिगंबरपण्डितोंके विषयमें प्रो० रामास्वामी वेण्णर लिखते हैं :—

"First comes Yalindra Kunda, a great Jain Gura, 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by *Rojas*, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet'. Uma Svami, the compiler of *Tattvarka Sutra*, *Griddhrapanchha*, and his disciple *Balakapanchha* follow. Then comes *Samantabhadra*, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the palace of the three worlds filled with the all meaning *Syadvada*'. This *Samantabhadra* was the first of a series of celebrated *Digambara* writers who acquired considerable predominance, in the early *Rashtrakuta* period. Jain tradition assigns him *Saka* 60 or 188 A. D. He was a great Jain missionary who tried to spre-

+ विज्ञेय, ३० पृ०

x SSLJ, I. pp. 40—41 & 80

and for and with Jain doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects when ever he went, Samantabhadra's appearance in South India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature..... After Samantabhadra a large number of Jain Monks took up the work of proselitism. The more important of them have e attributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affairs. Their names, for example, Sudhanandi, the Jain sage, who, according to tradition, founded the state of Gangavadi. Other names are those of Pujyapada, the author of the incomparable grammar, *Jinendra Vyakarana* and of Akalanka who, in 788 A. D., is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himsatala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India."—SSIJ, pt I pp 29-31

भावार्थ—“पहले ही महान् वैजयुक्त यतीन्द्र कुन्दका नाम विद्वान् है जो राजाओंके प्रति निस्वृष्टता दिखाने हुये अघट चण्डले थे। ‘सत्त्वार्थ सूत्र’ के कर्ता उमास्वामी रुद्रचिन्क

और उनके शिष्य ब्रह्मपिच्छ उनके बाद आते हैं। तब सम-
न्तमद्रका नाम दृष्टि पड़ता है जो सदा भाग्यवान् रहे और
जिनकी स्याद्वाद्बुधायी तीन लोकको प्रकाशमान् करती थी।
यह समन्तमद्र प्रारंभिक राष्ट्रकूट कालके अनेक प्रसिद्ध दिगं-
बर मुनियोंमें सर्व प्रथम थे। उनका समय जैनमतानुसार सन्
१३=१० है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होंने चहुँओर
जैनसिद्धान्त और शिक्षाका प्रचार किया और उन्हें कहीं भी
किसी विधर्मी संग्रहायके विरोधको सहन न करना पड़ा।
उनका मातृभूच दक्षिण भारतके दिगंबर जैन इतिहासके लिये
ही युगप्रवर्तक नहीं है, बल्कि उससे संस्कृत साहित्यमें एक
महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तमद्रके बाद बहुसंख्यक जैन
साधुओंने अजैनोंको जैनी बनानेका कार्य किया था। उनमें से
प्रसिद्ध साधुओंने जैनसंसारको साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा
बलवत् बनायाथा। उदाहरणतः जैनाचार्यसिंहनन्दिने गङ्गाबाड़ी
का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्योंमें पूज्यपाद,
जिनकी रचना अद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अक्षराङ्क
देव हैं जिन्होंने कांची के हिमशौठल राजाके दरबारमें बौद्धों
को धारमें परास्त करके उन्हें दक्षिण भारतसे निकलवा
दिया था।"

श्री उमास्वामी—श्री कुन्दकुन्दाचार्यके उपरान्त श्री
उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो० सा० का यह प्रकटकरना
निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि० सं० ७६ है। गुजरात

प्रान्तके विरिजगरमें जब यह मुनिराज विहार कर रहे थे और एक ब्रह्मपायक नामक ब्राह्मणके घर पर उसकी ब्रह्मपस्थितिमें आहार लेने गये थे, तब वहाँ पर एक ब्रह्मज्ञ सूत्र देखकर उसे सुद्ध कर आये थे। ब्रह्मपायकने उस घर आकर यह देखा तो उसने उमास्वामीसे "सत्यार्थसूत्र" रचनेकी प्रार्थनाकी थी। तदनुसार वह ग्रन्थ रचा गया था। उमास्वामी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकुन्दके शिष्य थे, ऐसा इनके 'शुद्धपिच्छ' विशेषणसे बोध होता है। *

श्री भक्तभद्राचार्य—श्रीसमन्तभद्राचार्य दिगम्बरजैनों में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशमें उनका मस्मक रोग हो गया था, जिसके निवारणके लिये वह काञ्चीपुरके शिवालय में शैव-संन्यासियोंके श्रेयमें आरहेथे। वहाँ 'स्वयंस्व स्तोत्र' रचकर शिवकोटि राक्षसोंके आत्मर्यचक्रित कर दिया था। परिश्रमरतः वह दिगम्बर मुनि होगया था। समन्त-भद्राचार्यने सारे भारतमें विहार करके दिगम्बर सौवधर्म का डंका बजाया था। उन्होंने प्रापञ्चित लेकर पुनः मुक्तिवेष और क्षिप्र आचार्य पद धारण किया था। उनको ग्रंथ रचनार्थे जैन धर्मके लिए बड़े महत्त्व की है।†

श्री पूज्यपादाचार्य—कर्नाटक देशके कोलंगाल नामक प्रांतमें एक ब्राह्मण भाषवमहद विक्रमकी चौथी शताब्दिमें रहता था। इनकीके नामध्यान पुत्र श्रीपूज्यपादाचार्यथे। इनका दीक्षा

* मसूदा, पृ० १४

† Ibid इ० १२।

नाम श्री देवनन्दि था । नाना देशोंमें विहार करके उन्होंने क्षमोपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे सैकड़ों प्रतिज्ञ पुस्तक उनके शिष्य हुये थे । गङ्गवंशी दुर्दिनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था । "जैनेन्द्रवाकरण", "शब्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं । †

श्री वादीभस्ति—पतिवर श्री वादीभस्ति श्रीपुष्पसेन मुनिके शिष्य थे । उनका प्रहस्य दृशका नाम 'शोक्यदेव' था, जिससे उनका दक्षिणदेशवासी होना स्पष्ट है । उन्होंने सातवीं श० में "सत्रचूडामणि", "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थोंकी रचना की थी । +

श्री नेमिचन्द्राचार्य—श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती मन्विसंहके स्वामी समयनन्दिके शिष्य थे । वि० सं० ७९५ में द्रविडदेशके मथुरा नगरमें वह रहते थे । उन्होंने जैनधर्मका विशेष प्रचार किया था और उनके शिष्य गङ्गवंशके राजा श्री राघवमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे । उनकी रचनाओंमें "गोमहृत्कार" प्रम्य प्रधान है । ×

श्री अकलङ्काचार्य—श्री अकलङ्काचार्य देवसंहके साधु थे । बौद्धमतमें रहकर उन्होंने विद्याभ्ययन किया था । उपरान्त बौद्धोंसे वाद करके उनका परामर्श और जैनधर्मका स्वरूप प्रकट कियाथा । काँचीका हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य

† Ibid. पृ० १६ ।

+ Ibid पृ० ४० ।

× Ibid पृ० ४०-४८ ।

था। उनके रचे हुये ग्रन्थ में राजबार्त्तिक, अष्टशती, न्ययार्थ-
निश्चयसङ्ग्रह आदि मुख्य हैं।*

श्री जिनसेनाचार्य—राजाशोषे पूजित श्री वीरसेन
न्यायोके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सत्राद् शमोषधर्मके गुरु
थे। उस समय उनके द्वारा जैनधर्मका उत्कर्ष विशेष हुआ
था। वह अद्वितीय कवि थे। उनका "पार्श्वान्युदयकाव्य"
कालिदासके मेघदूत काव्यकी समस्यापूर्ति रूपमें रचा गया
था। उनकी दूसरी रचना 'महापुराण' भी काव्ययष्टिसे एक
श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुरुभद्राचार्यने इस पुराणके श्लेषांश
की पूर्ति की थी।†

श्री विद्यानन्दिशाचार्य—श्रीविद्यानन्दिशाचार्य कर्णा-
टकदेशवासी और ब्रह्मव्यदशर्म एक वेदान्तवादी ब्राह्मण थे।
'द्वेषनाम' श्लोकको सुनकर वह जैनधर्ममें दीक्षित होगये थे।
द्विगंधर मुनि होकर उन्होंने राजदरबारमें पहुँचकर ब्राह्मणों
और बीहोंसे वाद किये थे; जिनमें उन्हें विजय भी प्राप्त हुई
थी। अष्टमहस्रौ, ज्ञान्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी दिव्य
रचनाएँ हैं।‡

* Ibid १० ४६।

† Ibid १० २०-२१।

‡ Ibid १० २१-२२।

श्री वादिराम—श्रीवादिपञ्चसूरि नन्दिसंघके आचार्य थे। इनकी 'पटलकल्पमुख', 'स्वाहावृषिद्यापति' और 'अम-
देकमङ्गलवादी' उपाधियाँ उनके गौरव और प्रतिभाकी सूचक
हैं। इनको एक बार क्रुष्ट रोग होगयाथा, किन्तु अपने योगबल
से 'धकीभाषस्तोत्र' रचते हुए उस रोग से बह मुक्त हुए थे।
यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रंथमो उन्होंने
रचे थे।

आप आहुत्यसंघीय नरेण अयसिंहकी समाधि प्रख्यात्
वादी थे। वे स्वयं सिंहपुरके राजा थे। राज्य त्यागकर
दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा-गुरु श्रीपालभी सिंहपुरा-
धीश्र थे। (जैमि०, वर्ष ३३ अङ्क ५ पृ० ७२)

इसी प्रकार श्री मल्लिनेयाचार्य, श्रीसोमदेवसूरि आदि
अनेक ब्रह्मप्रतिष्ठ दिगंबर जैनाचार्य दक्षिणभारतमें ही गुजरे
हैं, जिनका वर्णन अन्य ग्रंथोंसे देखना चाहिए।

इन दिगंबराचार्योंके विषयमें उक्त विद्वान् आगे लिखते
हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान् जैन साधुओंके छोटे छोटे
समूहोंसे असंछुत था, जो धीरे २ जैनधर्मका प्रचार जगताकी
विविध भाषाओंमें ब्रह्म रचकर कर रहे थे। किन्तु यह सम-

कहा जात है कि यह साधुगण शौरिक क्रायोंसे विमुक्त थे ।
 किसी इव तक यह सब है कि वे जगतासे इन्फदा मिलते-
 जुझते नहीं थे । किन्तु ई० पू० चौथां शताब्दिमें मेगास्थनीज़के
 कथनसे प्रगट है कि जैन धर्म, जो जगत्में फैलते थे, उनके
 पास अपने राजदूतों को भेजकर राजाशोक वस्तुओंके धरणा
 के विषयमें उनका समिप्राय जानते थे । जैन गुरुओंने ऐसे कई
 राज्योंकी स्थापना की थी, जिन्होंने कई शताब्दियों तक जैन-
 धर्मको धारण दिया था” ।

* "The whole of South India was then with small groups of learned Jain ascetics, who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. But it is a mistake to suppose that these ascetics were indifferent towards worldly affairs in general. To a certain extent it is true that they did not mingle with the world. But we know from the account of Megasthenes that, so late as the 4th century B. C., The Sarmates or the Jain Sarmates who lived in the woods were frequently consulted by the kings through their messengers regarding the cause of things. Jaina Gurus have been founders of States that for centuries together were tolerant towards the Jaina faith."

• प्रो० डॉ० बी० रोपागिरिवावने दक्षिण भारतके दिगंबर मुनियोंके सम्बन्धमें लिखा है कि "जैन मुनियोंके विद्या और विद्याके द्वारा वे, आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्रके भी वे महा विद्वान् थे; ज्योतिषज्ञान उनका अज्झाखासा था; न्याय-शास्त्र सिद्धांत और साहित्य को उन्होंने रचा था । जैनमान्यतामें ऐसे अफल एक प्राचीन आचार्य कुन्वकुन्द कहे गए हैं, जिन्होंने बेतारी जिल्ले के कोन्कुण्डल प्रदेशमें ध्यान और तपस्या की थी" † ।

इस प्रकार दक्षिण भारतमें दिगंबर मुनियोंके अस्तित्व का अमूर्त्यरिक्त कर्ण है और यह इस बातका प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीनकालसे दिगंबर मुनियों का आश्रयस्थान रहा है तथा वह आगे भी रहेगा, इसमें संशय नहीं ।

तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनि ।

"Among the systems controverted in the Mahābhārata, the Jain-system also figures as one and the words *Sambhava* and *Amara* are of frequent occurrence; as also references to their *Pitakas*, so that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country," *

तामिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगम्बर जैन विद्वान् रहे हैं। और उसका सर्वप्राचीन ध्याकरसु-ग्रन्थ "तौत्तकाप्पियम्" (*Touttakappiyam*) एक जैनाचार्य की ही रचना है †। किन्तु हम यहां पर तामिल-साहित्य के जैनों द्वारा रचे हुये ग्रन्थ को नहीं लूयेंगे। हमें तो केवल तामिल-साहित्यमें दिगम्बर मुनियोंके वर्तनको प्रकट करना है।

अर्थात् तो, तामिलसाहित्यका सर्वप्राचीन समय "संगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दिसे ईस्वी

* See p. 82 above—तामिल शब्द 'सम्भवेत्यै' व 'अमरा' अथवा 'अमर'—"अमर" तथा उनके विद्वानों का कलेस विशेष है; तिसमें तामिल देश में स्त्रीय प्राचीनकाल से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

† SSIJ, pt I p 89

पाँचवीं शताब्दि तकका समय है। इस कालकी रचनाओंमें बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मण्डिमेल्ले" प्रसिद्ध है। "मण्डिमेल्ले" में दिगम्बर मुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठोंका अच्छा खासा वर्णन है। जीवनदर्शनको इस काव्यमें दो भागोंमें विभक्त किया है—(१) आजीविक और (२) निर्ग्रन्थ। आजीविक म० महावीर के समयमें एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था, किन्तु उपरान्तकालमें वह दिगम्बर जैनसंप्रदायमें मिला हुआ हो गया था। निर्ग्रन्थ संप्रदायको 'अरहन्' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनोंका श्रोतक है। इस काव्यके पात्रों में सेठ कावसुन्की पत्नी कण्ठकिके पिता मानाएकके विषयमें लिखा है कि 'जब उसने अपने दाताएँके मारे जानेके समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ। और वह जैनसंघमें गया मुनि हो गया †।' इस काव्यसे यह भी प्रकट है कि शोल और पाण्ड्य राजाओंने जैनधर्मको अपनाया था। ‡

"मण्डिमेल्ले" के वर्णनसे प्रकट है कि "निर्ग्रन्थगण" ग्रामोंके बाहर शीतल मठोंमें रहते थे। इन मठों की दिवालें बहुत ऊँची और लाल रंग से रंगी हुई होती थीं। प्रत्येक मठके साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराहों और चौराहों पर अवस्थित थे। जैनोंने अपने

* BS, p. 15 † Ibid, p. 681

‡ BSLJ, pt. I, p. 47

फोटफार्मोंकी यना गफ्तें थे, जिनपरसे निर्ग्रन्थाचार्य अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करते थे । जैनसाधुओंके मठोंके साथ २ जैनसार्धियोंके आश्रमों होते थे । जैन साधुओंका प्रभाव तामिल मदिश्व समाज पर विशेष था । कावेरीव्युत्पत्तिमत् जो चोल राजाओंकी राजधानी थी, वहां और कावेरी तट पर स्थित उर्दपुरमें जैनोंके मठ थे । महुरा जैनधर्मका मुख्य केन्द्र था । सेठ कांसलन् और ठगडी फनी कवण्णिकि जव महुराका जाह्ने थे तों रास्तेमें एक जैन आर्थिकाने ऊहें किसी जीवको पोछा न पहुँचानेके लिये सावधान किया था, क्योंकि महुरामें निर्ग्रन्थों द्वारा यह एक महान् पाप कृत्य दिशा गया था । यह निर्ग्रन्थपण तोव ह्ययुक्त और अशोक वृत्तके तखे बँडायें गये । अर्हत भगवान्की वैशेष्यमात्र मूर्तिकी विनय करते थे । यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्यके वर्णनसे स्पष्ट है । पुहर्में जय इन्द्रांसय मनाया गया तब वहांके राजाने सब धर्मोंके आचार्योंको धाव और धर्मोपदेश करनेके लिये बुलाया था । विचम्बर मुनि इस अवसर पर बडी संख्यामें पहुँचेथे और उनके धर्मोपदेशसे अनेकानेक तामिल स्त्री पुरुष जैनधर्ममें दीक्षित हुये थे ।” +

+ Ind. pp. 47—48 “That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith”.

“मणिमोकली” काव्यमें उसकी मुख्य पात्री मणिमोकली एक विप्रान्ध साधुके जैनधर्मके सिद्धान्तोंके विषयमें जिज्ञासा करती भी बताई गई है। इस तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईश्वरीकी शारम्भिक शताब्दियोंमें तामिल देशमें दिगम्बर मुनियों की एक बड़ी संस्था मौजूद थी और तामिल देशमें वे विशेष मान्य तथा प्रभाषशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायोंके तामिल साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है। शैवोंके ‘पेरियपुराणम्’ नामक ग्रन्थ में मूर्ति नायनारके वर्णन में लिखा है कि कलात्र बंशके राजा जैसे ही दक्षिण भारतमें पहुँचे जैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैनधर्म का अपना किया। उस समय दिगम्बर जैनों की संस्था वहाँ अत्यधिक थी और उनके आचार्योंका प्रभाव फलनों पर विशेष था। इस कारण शैवधर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलात्रोंके बाद शैवधर्मको उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निःश्रम होगये थे, किन्तु जैन धर्म भी प्रघातता लिये हुये थे †। शैवाचार्यों का

* “Manimokali asked the Rigantha to state who was his God and what he was taught in his sacred books, etc.”
—SSLJ, pt. I, p. 50

† Ibid, p. 55

‡ “It would appear from a general study of the literature of the period that Buddhism had declined as an active religion but Jainism had still its

बादशाहाने मुहापसा लैने के बिचे दिगम्बराचार्य—जैन अवस्थ ही अवश्येप थे । शैशवे सङ्गन्धर और अम्बर नामक आचार्य जैनधर्मके कट्टर विरोधी थे । इनके प्रचार से साम्प्रदायिक विद्वेषकी आग नामित देशमें मड़क उठी थी +, जिसके परिणाम म्बस्व उपरान्तके शैव ग्रंथोंमें ऐसा उपदेश दिया हुआ मिलता है कि पीछे और समर्थ (दिगम्बर मुनियों) के न हो शैव बने और न उनके धर्मोपदेश सुनो । बल्कि शिव से यह प्रार्थना की गई है कि वह मुक्ति प्रदान करे जिससे चौदों और समर्थ (दि० मुनियों) के निर फोड़ जाने आये, जिसके धर्मोपदेश को सुनते २ उन लोगों के कान भर गये है x । इस विद्वेष का भी कोई ठिकाना है ! किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दि० मुनियोंका प्रभाव दक्षिण भारतमें काफी था ।

वैष्णव तामिल साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका विकार मिलता है । उनके 'तेघारम' (Teyarum) नामक ग्रंथसे ई० सातवीं-आठवीं शताब्दिके जैनोंका हाल मालूम होता है । उक्त ग्रंथसे स्पष्ट है कि "इस समय भी जैनों का मुख्य केंद्र मधुराई था । मधुराई बहुत ही स्थिर कालसे, पसुमती आदि अनेक पर्वतों पर दिगम्बर मुनिवृत्त रहते थे और वे ही जैन संघ का संचालन करते थे । वे प्रथा जगत से

stronghold. The chief opponents of these sects were the
the nas of the Jainas." —BS., p. 689

+ SSLJ., pt. I pp. 60-61. x तिलकसे—BS., p. 692

अलग रहते थे—उससे अत्यधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। स्त्रियोंसे तो वे बिल्कुल दूर रहते थे। नासिका-स्पर्शसे वे श्राद्ध व अन्ध मंत्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदोंका वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूपमें वे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर वेदोंके विरुद्ध प्रचार करते हुए विचरते थे। उनके हाथमें पीछी, चदर और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियोंको सम्यन्दर द्वेपयश बन्दरोंकी उषमा देता है; किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करनेके लिये बड़े तात्पर्यित थे और उन्हें बिपत्तीको परास्त करनेमें आनन्द आता था। केवलतोंच वे मुनिगण करते थे और स्त्रियोंके सम्मुख नम्र उपस्थित होनेमें उन्हें रुचि नहीं आती थी। भोजन लेनेके पहले वे अपने शरीरकी शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे)। मंत्रशास्त्रको वे सूच जानते थे और उसकी खूब तारीफ़ करते थे।*

त्रिहानसम्यन्दर और अपरने जां अपरोक्त प्रमाण-दिगम्बर मुनियोंका वर्णन दिया है, यद्यपि यह द्वेपको लिये हुये है, परंतु सोमी उससे उस कालमें दिगम्बर मुनियोंके बाहुल्य रूपमें सर्वांग विहार करने, विकट तपस्वी और बकट घादी होनेका समर्थन होता है।

दक्षिण भारतकी 'नन्द्याल कौफियत' (Nandyala Kalphiyat) में लिखा है † कि "जैनमुनि अपने सिरों पर

* SSJ., pt. I pp. 68-70 † Ibid., pt. II pp. 10-11

चाह नहीं रखते थे कि श्रावण कहीं ऊँच न पद जाय और वे जिसाके खापी हों । अब वे चाहते थे नां भोगविच्छेदसे राजाको भाग्य ही मते थे कि कहीं मृत्यु जीवोंकी विगमना न हो जाय । वे दिगम्बर वैपद्याण्ड किये थे, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके कपड़े और मुण्डोंके संसर्गसे स्वस्व जीवोंको चोट न पहुँचे । वे मूर्खत्वके उपगन्त मोक्षन नहीं करते थे, क्योंकि भयके साथ उदने हुए जीवजन्तु कहीं उनके मोक्षनमें विरक्त मर न जाय ।" एह वर्णनसे भी दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनिपौत्रा बहुस्य और निर्वाण धर्मप्रचार कला प्रमाणिक है ।

“सिद्धवत्तम् कैफियत” (*Siddhavattam Kappilvat*) से प्रकट है कि “धरंगलके जैनराजा उदार प्रकृति थे । वे दिगम्बरोंके साथ २ अन्य धर्मों को भी भाव्य देते थे ।” “धरंगल कैफियत” से प्रकट है+ कि यहाँ ब्रह्मचार्य नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे ।

दक्षिणभारतके ग्राम्य-कथा-साहित्यमें एक कहानी है, उससे प्रकट है कि “धरंगलके काकनीयवशी एक राजाके पास बेसी सदासुखी, जिनको पहन कर वह उद सफला था और रोड़ यथासमये जाकर गङ्गा स्नान कर आता था । किमीको भी इसका पता न चलता था । एक रोज़ बसकी गर्वीने देखा कि गङ्गा नहीं है । वह कैव्यमंथरापण थी ।

उसने अपने मुखमौसे राजाके सर्वधर्म पूंछा । जैनगुरु ज्योतिषके विद्वान् विशेष थे, उन्होंने राजाका सब पता बता दिया । राजा जब लौटा तो रानीने उसका बनाया कि वह कदा गया था और शायमा की कि वह उसेभी बनास ले जाया करे । राजाने स्वीकार कर लिया । वह रानीभी बनारस जाने लगी । एक गेड़ मार्ग में वह भामिकधर्मसे होगई । कलक जटाजूकी वह विशेषता नष्ट होगई । राजाको उसपर बड़ा दुःख हुआ और उसने जैनोंको कष्ट देना प्रारंभ कर दिया ।^७ इस कहानीसे विधर्मी राजाओंके राज्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका प्रतिमाशाली होना प्रकट है ।

अरुणमण्डि शैवाचार्य कृत "शिवशानसिद्धिचार" में परपञ्च संप्रदायोंमें दिगम्बर जैनोंका "अमण्डप" उल्लेख है । तथा "हालात्म्यमाहात्म्य" में मटुराके शैवों और दिगम्बर मुनियोंके बादका वर्णन मिलता है ।^८

इस प्रकार तामिलसाहित्यके उपरोक्त वर्णनसे भी दक्षिणभारतमें दिगम्बर मुनियोंका प्रतिमाशाली होना प्रमा-
णित है । वे वहाँ एक अरपन्त प्राचीनकालसे धर्मप्रचार कर रहे थे ।



* SSLJ, pt. II pp. 27—28 † SC, p. 248

‡ IRQ., Vol. IV. p. 564

भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि ।

— — — — —

"The absolute civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation" "In the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilised and warlike people."

—J. H. Humpstead Chanda, †

मोहन-जो-दारो का युग और दिगम्बर ।	भारतीय पुरातत्वमें सिंधुदेशके मोहन जोदारो और पंजाब
-------------------------------------	--

के हस्तगत नामक प्रामाण्य प्राप्त पुरातत्व अभिलेखीय है । यह ईसा पूर्व से तीन-चार हजार वर्ष पदमेका अनुमान किया गया है । जिन विद्वानों ने उसका अध्ययन किया है, यह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सिंधुदेशमें उस समय एक ज्ञानिय मध्य और उत्तरीय प्रकृतिके मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और मन्थना वैदिक धर्म और सम्भन्धसे विताप्य भिन्न थी । यह विद्वान ने उन्हें "प्रात्य" विद्व किया है और मनुके अनुसार "प्रात्य" यह वेद-विशेषी संप्रदाय था "जिसके सात द्विजों द्वारा उनकी मजातीय पत्तियों से बतान हुए थे, किन्तु जो

(वैदिक) धार्मिक नियमोंका पालन न कर सकनेके कारण खाधिभीषे प्रकट कर दिये गये थे।" (मनु १०।२०) वह मुख्यतः क्षत्री थे। मनु एक मात्र क्षत्रीसे ही ऋतव्रत, भवन, क्षिप्रद्वि, नात, करव, कस और द्राविड वंशोंकी धर्मचिन्ता बताते हैं। (मनु १०।२२) यह पहलेभी लिखा जा चुका है। सिन्धुदेशके उपरोक्त मनुष्य इसी प्रकारके क्षत्री थे और वे भवान तथा योगका स्वयं अभ्यास करते थे और योगियोंकी मूर्तियोंकी पूजा करते थे। मोहन-जो-दरो से जो कतिपय मूर्तियाँ मिलीं हैं उनको दृष्टि जैनमूर्तियोंके लक्षण 'नलप्रदष्टि' है। किन्तु ऐसी जैनमूर्तियाँ प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान् प्रकट करते हैं+। यद्यपि जैनोंकी मान्यताके अनुसार इनके मंदिरोंमें बहुमाचीनकालकी मूर्तियाँ मौजूद हैं। वस पर, हाथीशुकाके शिलालेखसे कुमारी पर्वत पर बन्दकालकी मूर्तियोंका होना प्रमाणित है x तथा मथुरा के देवों द्वारा निर्मित 'जैनस्तूप' से भगवान् पार्श्वनाथके समयमें भी ध्यानचट्टिमय मूर्तियोंका होता सिद्ध है+। इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य तथा बौद्धोंके क्लेशसे भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीरके पहलेके जैवोंमेंही ध्यान और योगाभ्यासके नियमोंका होना प्रमाणित है। 'संशुचनिकाय' में जैनोंके अचित्तक और अविचार श्रेणियोंके ध्यानोंका उल्लेख

+ Ibid. pp 25-26 x JBOBS.

+ हीर वने ४५० ५६६

है और "दीर्घनिश्चाय" के 'ग्रहणासमुच्च' से प्रकट है कि गौतम हृदयसे पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विचार द्वारा मनुष्यके पूर्वजन्मोंको पचसाया करते थे। जैनशास्त्रों में आत्मादि प्रत्येक तीर्थङ्गके विभवसमुदायमें ठीक ऐसे साधुओंके वर्णन मिलता है। तथापि उपनिषद्में कैवर्षिके 'शुद्धध्यान' का उल्लेख मिलता है, यह पहले ही सिद्धा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैनसाधु एक उत्तीव्र प्राचीन-शास्त्रसे ध्यान और योगका अभ्यास करते आये हैं। तथा कल्ल, मल्ल, सिन्धुवि, काट्ट आदि ज्ञान क्षत्रिय प्रायः जैन थे। अन्वय यह सिद्ध किया जा चुका है कि "आत्य" क्षत्रिय बहुतरकरके जैस्ये और उनमेंके स्पष्ट आत्य विधाव 'दिगधर-सुनिके' और कोई न थे। इस अवस्थामें सिन्धुदेशके उपरोक्त कल्लवर्षी मनुष्योंका प्राचीन जैन श्रमियोंका मूल होना बहुत कुछ संभव है। किन्तु मोहन जोदगो से जो मूर्तियाँ मिली हैं वह ब्रह्मसंस्कृत हैं और उन्हें विद्वान् लोग 'पुजारी' (Priest) आत्मीयोंकी मूर्तियाँ अनुमान करते हैं। हमारे विचारसे वे हीव-आत्य (अयुवती शावकों) की मूर्तियाँ हैं। आत्य साधुकी मूर्ति यह हो नहीं सकती, क्योंकि वसे शास्त्रोंमें वह प्रकट किया गया है। वहाँ 'स्वेयंआत्य' का एक विशेषण 'समनिच-मैद्र' अर्थात् 'बुद्धपरिचयसे रहित' विधा हुआ है जो न्याताका

* PTS. IV, 287 † पण्डित, पृ० २१६-२१०

‡ अथवा, प्रजापति हृदय १२-२२

घोसक है। हीनव्रातियोंकी पोशाकके वर्णानमें कदा कदा है कि वे एक पगड़ी (निर्यन्त्र), एक जाल कपड़ा और एक चांदी का आभूषण 'निष्क' नामक पहनते थे। उक्त मूर्तिकी पोशाकमी इसी ढंगकी है। माथे पर एक पट्ट रूप पगड़ी जिसके बीचमें एक आभूषण अड़ा है, यह पहने हुये प्रयत् है और बपुसले निकला हुआ एक झोंददार कपड़ा यह ओढ़े हुये है। इस अवस्थामें इन मूर्तियोंको हीन व्रातियोंकी मूर्तियां मानना ही ठीक है और इस तरह पर यह सिद्ध है कि ब्राह्मण-जतिष एक अतीव प्राचीनकालमें अवश्यही एक वैद-विरोधी सम्प्रदाय था, जिसमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनिके अनुसरण थे। अतः प्रकारान्तरसे भारतका सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगसुत्राका पोषक है *।

सिंधु देशके पुरातत्वके अपरांत
सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित
पुनातत्व ही सर्व प्राचीन है।

यह पुरातत्वमी दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वका सांगक है। सम्राट् अशोक ने अपने एक शासन लेखमें आजीविक साधुओं के साथ निर्भ्रंश साधुओंका भी उल्लेख किया है †

† SP. CIV., Plate I, Fig. 3'

* 'SP. CIV.' pp 25—28 में मोहन जोड़ने की मूर्तियोंके मिल मूर्तियोंके समान और नवका पूर्ववर्ती रूप पर ध्यान दिया गया है।

‡ स्वप्नोच्छेद नं० *

संस्कृत-अक्षरलिपि
गुप्तकाल में दि० मुनि

अशोकके पश्चात् अश्वमेधिका-
वदयचिरिका पुरातन दिगम्बर
धर्मका चोपक है । जैत सन्नाद्

आग्नेयके हाथीगुफा वाले शिलाशेखरमें दिगम्बर मुनियोंका
"तापस" (तपस्वी) रूप उल्लेख है । और उन्होंने सारे भारत
के दिगम्बर मुनियोंका सम्मेलन किया था, यह पहले लिखा
आ चुका है । आग्नेयकी पटगमोने श्री दिगम्बर मुनियों—
अहिहू धर्मियोंके लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख
अपने शिलाशेखरमें निम्न-प्रकार किया है :—

"अरहन्तपसादायम् अहिहूतानम् समनानं खेनं अरितम्
राष्ट्रो सासकसर्षीसाहसपपेतस् ध्रुतवाअहिहूचकवर्तितो
श्री आरधेतस्य अनामहिहूतिना अरितम् ।"

भावार्थ—“अहंशके प्रासाद वा मन्दिर रूप यह गुफा
अहिहू देशके अमणों (दिगम्बर मुनियों) के लिये अहिहू चक्रवर्ती
राजा आग्नेयकी मुख्य पटगमोने निर्मित कराई, जो हथील-
हसके पौरव शासककी पुत्री थी ।”

अश्वमेधिका नद्वगुफा पर जो लेख है वह वास्तुवि
का लिखा हुआ है + । 'अमन्त्र गुफा' में लेख है कि "दोहदके
दिग्० मुनियों अमणोंकी गुफा" (दोहद समनानम् खेमम्) X ।

† 'अवशिष्टान् तापसान्' ----- यत्कि १२ JBOER.

‡ वाचस्पे वैश्याः, इत् ६१

+ Ibid p. 04

x Ibid p. 27

इस प्रकार खरहगिरि-उद्वगिरिके शिलालेखोंसे ईस्वी-पूर्व दूसरी शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके कल्याणकारी अस्तित्वका पता चलता है ।

खरहगिरि-उद्वगिरि पर जो मूर्तियाँ हैं, वे प्राचीन और नए हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वका पोंष्य होता है । वह अथवा दिगम्बर मुनियोंका मान्य तीर्थ है ।



मथुराका पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियोंका

अन्तर्गम बहुमान्य और कल्याणकारी होना प्रगट है । वहाँकी प्रायः सब ही प्राचीन मूर्तियाँ नए-दिगम्बर हैं । एक स्तूपके शिखरमें लैलमुनि नामपीछी व अमएबल किये दिखाये गयेहैं - । उन पर के लेख दिगम्बर मुनियोंके शोहरत हैं, यथा:—

“नमो अर्हतो वर्धमानस आराये गक्षिकार्यं लोष शोमि-
काये धितु समस्य सावित्राये उवाये मयिकाये बहु (वि) आर्ह-
तो वैचिक्रस आयाग लमा प्रवाशिल (1) पदो पतिस्त्रापितो
दिगम्बानम् अर्हता यतनेसहामातरे मणिनिधे धितरे पुत्रेण
सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुत्राये ।”

अर्थात्—“अर्हत् वन्देमान् को नमस्कार । अनर्थोंकी साविका आरायगक्षिक लोषशोमिकाकी पुत्री नादाय मक्षिका

चतु ने अरुची माना, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुलुम्ब सहित
आईका एक मन्दिर, एक आवास-सभा, हात और एक शिला
निम्न आईकोंके पवित्र स्थान पर स्तथाये ।^१

इसमें शानश्रीमा श्राविधाने अमर्षी-दिगम्बर मुनियों
का भक्त तथा विप्रैय-दिगम्बा मुनियोंके भिन्न एक शिला
बनाया जाना प्रगट किया गया है । एक आवासघट परके
लोचमें ही अमर्ष-दिगम्बर मुनियोंका उल्लेख है । प्लेट नं०
२८ परके लोचमें भी ऐना ही उल्लेख है । तथा एक दिगम्बर
मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है :—

“.....सं० १५ त्रि ३ वि १ अस्या पूर्वार्ध
.....द्विष्य नो कार्य जयमूर्तेस्व शिषीनिर्ग अर्ध
संभामिके शिषीम अर्ध चतुस्ये (निर्व्यर्त्त) नं.....
अस्य धीतु.....३.....यु वेणि श्रेष्ठिभ्य धर्म-
पत्तिवे महिसेनस्य... (मातु) कुमरमितयो दर्न भग-
वतां (म) मा सध्व तो अठिका ।”

अर्थात्—“(सिद्धं ।) सं० १५ प्रोषाके तीसरे महीने में
एहसे दिगम्बर, मगयलकी एक चतुसुर्धरे प्रतिमा कुमरमिता
के शानरूप, जो.....की पुत्री,की बहू, श्रेष्ठि
वेणि की प्रथम पत्नी, महिसेन की माता थी, मेदिहकुलके

* श्राविधानमा से शिला आवासघट—प्लेट, पृथ ४ पृ० ३०१

† आवासघटी आवासघट—प्लेट, पृथ ४ पृ० ३०१

‡ JOAN, Plate No. 28

आर्य अथमूर्तिकी शिष्या आर्य संगमिकाधी प्रति शिष्या बसुका
की रचकानुसार (अर्पित हुई थी)”

इसमें दिगम्बर मुनि अथमूनिका वल्लोख 'आर्य' विशेष-
णसे हुआ है । ऐसे ही अन्य वल्लोखोंसे वहाँका पुरातत्व
तन्कात्मीय दिगम्बर मुनियोंके सम्माननीय व्यक्तित्वका परि-
चायक है ।

अदिच्छुत्र (वरेली) पर अदिच्छुत्र (वरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि ।	अदिच्छुत्र (वरेली) पर एक समय नागवंशी राजाओंका राज्य था
---	--

और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे । वहाँ के कटारी सेढा
की खुदाई में डा० फुडरर सा० ने एक समूचा समामंदिर
खुदा निकलवाया था । वह मंदिर ई० पूर्व प्रथम शताब्दिका
अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथजीका मन्दिर
था । इसमें से मिली हुई मूर्तियां सन् ६६ से १५२ तक की हैं,
दो नम्र हैं । वहाँ एक ईंटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी
मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर विम्ब प्रकार लेख था :—

“महाचार्य इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिरुस कोट्यपी ।”

आचार्य इन्द्रनन्दि वसु समय के प्रख्यात् दिगम्बर
मुनि थे ।

* बीर, वर्ष ३ प्र० ११०

† संश्लेषणा, पृ० ३१-३२ (General Cunningham)
found a number of fragmentary naked Jain statues,

कौशाम्बी के पुत्रत्व में
विशाम्बर-सूत्र।

कौशाम्बी का पुत्रत्व
श्री दिगम्बर मुनियों के
अस्तित्वका बोधक है।

वहाँसे कुशानकालका मधुरा जैसा श्यामपट्ट मिला है; जिसे
पता शिवमित्रके राज्यमें सर्व शिवमन्दि की शिष्या बड़ी स्व-
चिरा बलदासाके कहने से शिवपाकितने सर्वेश्वरी पूजाके लिये
स्थापित किया था। इस वस्तुसे उस समय कौशाम्बी में
एक घटन् दिगम्बर और संघके रहने का पता चलता है।

कुशानकाल पुनःकालीन लेख
दि० मुनियों का बोधक है।

कुशीक (मोरचपुर) से
आंतपुरासतल गुप्तकालमें
दिगम्बर धर्मकी प्रथा-

गतका बोधक है। वहाँ के पापासु-मन्त्रमें नीचेकी ओर तीन
तीर्थहूँ और भाषुआँकी नग्न मूर्तियाँ हैं और उस पर निम्न-
लिखित शिवालेख है + १—

“पस्वाचन्मानभूमिर्दृपति—कृत शिगः पत-
घातावधृता । गुप्तानां वैश्वस्य प्रविशुनयशससस्य
सर्वोत्तमदोः ॥ राज्ये शकांचमस्य चित्तिप-कृत-भतेः मरु-
न्दगुप्तस्य शान्तेः । इयं निर्मलदृशोत्तरक—कृत-तमे
त्येष्टु मासे प्रपन्ने—क्यालेऽन्मिन् प्राय-रत्ने ककुभ इति

some inscribed with dates ranging from 56 to 159
A. d.¹

‡ संवत्संक्रान्ति, ५७ २७

+ पूर्व, १० ३-४

जवैस्ताधु—संसर्गपूते पुत्रो यस्त्रांमिदस्य प्रचुर-गुण
निवेर्माद्विद्योमो महार्कं तस्मिन् कद्र-लोमा पृथुलमतिवश
व्याज्जतत्यन्य संज्ञो मद्रस्तस्यात्मज्ञो—भुद्भूदिल—गुरव-
तिष्ठु मायशः प्रीतिमान्या ॥ इत्यादि”

भाव यही है कि संवत् १४१ में प्रसिद्ध तथा साधुओं
के संसर्गसे पवित्र ककुभ ग्राममें ब्राह्मण-गुरु और यतियों को
प्रिय मद्र नामक विग्र रहते थे; जिन्होंने पांच अर्हत्-शिष्य
विरहित कएये थे । इससे स्पष्ट है कि उस समय ककुभ ग्राम
में दिगम्बर मुनियोंका एक वृक्ष संघ रहता था ।

राजगृह (विहार) का
यनसू (विहार) के पुरातन में
दि० मुनियों की छापी ।
पुरातनवसी गुप्तकालमें
वहाँ दिगम्बर मुनियोंके
बाहुल्यका परिचायक है । वहाँ पर गुप्तकालको निर्मित अनेक
दिगम्बर जैनमूर्तियां मिलती हैं और निम्न शिलालेख वहाँ
पर दिगम्बर जैन संघका अस्तित्व प्रमाणित करता है :-

“निर्वाणसामाय तपस्वि योग्ये सुमेसुहेऽहंत्वतिमाप्रतिष्ठे ।
आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवो चिसुक्चये कारय दीर्घतैः ॥”

अर्थात्—“निर्वाणकी प्राप्तिके लिये तपस्वियोंके योग्य
और श्री अर्हणकी प्रतिमासे प्रतिष्ठित सुसमुकामें मुनि वैरदेव
को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त
हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित
किया ।” इस शिलालेखके निकट ही एक नग्न जैन मूर्तिका

* SPCIV, plate II (b)

निम्न भाग उभेरा हुआ है, जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है † ।

पलाश के पुष्पमय में
दिगम्बर मुनि ।

शुभकाल और उसके
बन्धु कई शताब्दियों
तक पलाश, आसाम

और ओड़ीसा प्रायोंमें दिगम्बर जैनधर्म यह प्रचलित था ।
अब जैन मूर्तियों वहाँ के कई जिलोंमें बिखरी हुई मिलती हैं ।
पहाड़पुर (गढ़वादी) कुलनासमें एक जैनकेन्द्र था † । वहाँसे
प्राप्त एक ताम्र लेख दिगम्बर मुनियों के संबंधको प्रोत्साहित है ।
उसमें उद्धृत है कि "गुहसं- १५६ (खन् ४७६ ई०) में एक
ब्राह्मण धर्मरक्षिने निर्ग्रन्थ विहार की पूजा के लिये बटगोइसी
ग्राममें भूमिदान दी । निर्ग्रन्थसच आचार्य गुहचन्दि और इन
के शिष्यों द्वारा स्थापित था ।"[†]

आश्विन-पक्षाओं के रात्रियों
में दिगम्बर मुनि

देवगिरि (बाबवाड़) से
प्राप्त काश्मिरी राजाओं
के ताम्रपत्र ईस्वी पाँचवीं

शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके वैभव को प्रकट करते हैं । एक
लेख में है कि महापाला आश्विन धी कृष्णवर्माके राजकुमार
एक देवधामनि जैन मन्दिरके लिये बापनीय लकड़के दिगम्बर
मुनियोंको एक सेव दान दिया था । दूसरे लेखसे स्पष्ट है कि

† 'निग्रन्थसच', पृ० १६
† IHQ, Vol VII p. 441
+ Modern Review, August 1931, p. 150

“काङ्कडकंठी भी शम्भिवर्माके पुत्र का इन्द्रमहाराज सुमेध्वर-
वमनि अपने राज्यके तीसरे वर्षमें परजुरा के आचार्योंको दास
दियाथा”। तीसरे श्लोक में कहा गया है कि “इसी सुमेध्वरवर्मा
ने शैल मन्दिरों और विष्णुस्थ (विष्णुमन्दिर) तथा श्वेतपट्ट (श्वेतार्थ-
मन्दिर) सङ्घोंके साधुओंके व्यवहारके लिये एक काङ्कडक नामक
ग्राम अर्पण किया था †।”

व्यवहिरि (मिस्रसा) में पाँचवीं शताब्दीकी बनी हुई
शुफाके हैं, जिनमें जैनसाधु ध्यान दिया करते थे। उनमें श्लोक
भी हैं ‡।

चन्द्रगाम्भी शुफाओं में दि० मुनियों का अस्तित्व	अश्वमेधा (जानदेश) की प्रसिद्धशुफाओंके पुरातत्त्व से ईस्वी सप्तवीं शताब्दि में विष्णुमन्दिर जैसे मुनियोंका अस्तित्व प्रमाणित है। वहाँकीशुफा सं० २३ में विष्णुमन्दिर मुनियोंका छह चित्रित है। सं० ३३ की शुफाके भी विष्णुमन्दिर मूर्तियाँ हैं। x
--	--

चन्द्रगाम्भी की शुफा	चन्द्रगाम्भी (चौजापुर) में सन् ६५० ई० की जैनशुफा उस जमानेमें विष्णुमन्दिर मुनियोंके अस्तित्वकी स्रोतक है। उसमें मुनियोंके ध्यान करने योग्य स्थान हैं और बहु मूर्तियाँ अङ्कित हैं। †
-------------------------	---

† IA. VII 33-34 व चन्द्रगाम्भी, पृ० २२६

‡ चन्द्रगाम्भी, पृ० २०

x चन्द्रगाम्भी, पृ० ६२-६३

+ Ibid. p. 108

चातुर्वर्ण्य-भंग विष्णुदत्तके
सेव्य वं दिगम्बर मुनि ।

लक्ष्मणेश्वर (बाइबाइ) की
संभवस्त्रीके शिवा सेवसे
प्रसट है कि संकतीर्षका

उद्धार पश्चिमीय चातुर्वर्ण्यशो राजा विक्रमादित्य द्वितीय
(श्राब्द ६५६) ने कराया था और जिनपूजाके लिये श्री देवेन्द्र
महाशक्तके शिष्य मुनि एकदेशके शिष्य अणुदेश पंडितको मुनि-
दान दां थो ! इससे विक्रमादित्यका दिगम्बर मुनियोंका सक्त
होना प्रगट है । वहाँके एक अन्य लेखसे मूलसूक्तके श्री राम-
चन्द्राचार्य और श्रीविजयदेश पंडिताचार्यका पता चलताहै* ।
सद्व्यंग्यता वहाँ उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैनसङ्घ किय
माइ था ।

स्वोय को गुफायें
वं दिगम्बर मुनि

ईश्वीआठनीं एसाभिद्वी निर्मित
एतोराकी जैन गुफायें भी उस
समय दिगम्बर मुनियोंके विहार

और धर्म प्रचारकां प्रगट करती हैं । वहाँकी इन्द्रसभा नामक
गुफामें जैन मुनियोंके प्प्राण करने और उपदेश देने योग्य कई
स्थानहैं और वममें अनेक नव मूर्तिकां अस्तित्वहै । श्रीपाहुयति
गोमहेश्वरामोकी भी अज्ञात मूर्ति है । "अगम्यायसना"—
"छोटा कैलास" आदि गुफायेंभी इसी दहकी हैं और उनसे
तत्कालीन दिगम्बरत्वकी प्रचलताका परिचय मिलता है ।†

* Ibid. pp. 124—125

† Ibid., pp. 168-171

सौचि (वैश्यागम) के
 पद्यवाचक विज्ञानों
 में दिग्गम्य भूमि ।
 पुरातात्विक दिग्गम्य भूमिओं
 की मूर्तियों और वनशा
 बर्णन मिलता है । वहाँ एक आठवीं शताब्दिका विज्ञानज्ञ
 है, जिससे प्रकट है कि "नैलेपतीर्यको कारेयशाखाम् आचार्य
 श्री सुख महारक थे, जिसके शिष्य विद्वान् गणकर्मि थे और
 उनके शिष्य इच्छको जीतने वाले श्रीमुनि इन्द्रकीर्ति स्वामी
 थे; वनशा शिष्य मेरुका बड़ा पुत्र राजा पृथ्वीवर्मा था,
 जिसने एक जैनमंदिर बनवाया था और उसके शिष्य भूमिका
 दान दिया था" । एक दूसरे खर् हरी के लेखसे विदित है कि
 कुन्दुर जैन शाखाके गुरु कति प्रसिद्ध थे; उनका चौथे राष्ट्रराज
 शांत ने १५० मत्तर भूमि उस जैनमन्दिरके शिष्ये दी जो उन्होंने
 सौचिमें बनवाया था और उतनी ही भूमि उसी मन्दिर को
 उतनी ही निधि देने दी थी । उन दिग्गम्य (चारों)का नाम
 था बहूपति श्री था और वे व्याकरणकार्य थे । उस समय
 भी रविचन्द्र स्वामी, अर्द्धवन्दी, सुमचन्द्र, महारकदेव, मीनी-
 देव, अमाचन्द्रदेव मुनिपद्य विद्यमान थे । राजाकसम् की श्री
 पद्मदेवी जैनधर्म के ज्ञान ७ अक्षरों में इन्द्राक्षी के समान
 थी । वह दिग्गम्य भूमियोंको भक्तिमें हृष्ट थी ।

चातुर्वर्णात्मिकता के वेद
 में दिग्गम्य भूमिों का लक्षण ।
 एक अन्य लेख वही
 पर चातुर्वर्ण्य राज
 विक्रम के १२ वें

रत्न-वर्षका जिजा हुआ है, जिसमें विमलहिकित्त विद्यम्बराचार्यों के नाम दिये हुए हैं :-

“वृत्तान्तकारण्य मुनि गुणचन्द्र, शिष्य नयनवि, शिष्य श्रीभरतार्य, शिष्य अर्कशीति, शिष्य श्रीभरदेव, शिष्य नेत्रिचन्द्र और वासुपूज्य श्रीविषदेव, वासुपूज्यके लघुशाशा मुनि विद्वान् मङ्गलपात्र थे । वासुपूज्यके शिष्य सर्वोत्तम शत्रुपद्मप्रथ थे । संदिग्धकार्यका अधिकारी गुरु वासुपूज्यका सेवक था ।”

एक प्रकार अपरोक्त लेखोंसे होइति मीन उसके भाषपासमें विद्यम्बर मुनिश्रीका वासुदेव और उनकी प्रमाद्यशाही तथा राजमान्य होना प्रकट है ।

गोविन्दराय सुतोय राश्रीर मान्यसेठ के एव ११३ के राज-	चर्कर राजाओं द्वारा मान्य दि० मुनिश्री के शिष्यात्वे ।
---	---

पत्रसे प्रकट है कि गंगवंशी चाकिरराजकी प्रार्थना पर उन्होंने विजयवीरि कुल्लुआचलके शिष्य मुनि अर्कशीतिके राज दिया था । अयोधवर्ष प्रयागने मह १६० में मान्यसेठमें देवेन्द्रमुनिको भूमिदान किया था ।+ इसके दिग० मुनिश्रीका राश्रीर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है ।

मूलगुंड के पुस्तक में दि० सं० ।	मूलगुंड (घाड़वाड़) के ६ वीं—१० वीं शताब्दि का पुस्तकवली वर्धा पर दिग-
------------------------------------	---

म्बर मुनिवोंके प्रमुखका द्रोतक है । वहाँके एक शिला लेखमें वर्धन है कि "जीकारि, सिद्धने जैन मन्दिर बनवाया था, उस के पुत्र नागार्थके छोटे ब्राह्म आचार्यने दान किया । यह आ-
चार्य नीति और धर्मशास्त्रमें बड़ा विद्वान् था । इसने नगरके व्यापारियोंको सम्मतिसे १००० पानके हुणोंके खेतको सेनवंश के आचार्य कनकसेनको सेवामें जैनमन्दिरके लिये अर्पणक्रिया था । कनकसेनाचार्यके गुरु श्री वीर सेनस्थानी थे, जो पूज्य-
पाद कुमार सेनाचार्यके दिगम्बर मुनिवोंके लङ्के गुरु थे, यन्मध्य मन्दिरके शिलालेखसे मूलगुंडके राजा महरसाकी जो भामराको मृत्यु का वर्धन प्रकट है † । मुझ यह कि मूल गुंडमें दिगम्बर मुनिवोंको एक समय प्रधानपद मिला हुआ था—वहाँका शासकभी उनका भक्त था ।

सुन्दी के शिलालेखों में उल्लेखान्व दिगम्बर मुनि ।	सुन्दी (घाड़वाड़) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (१० वीं श०) में पश्चिमीय राष्ट्रवासीय राजकुमार बुद्धगच्छ वर्धन है, सिद्धने उस जैनमन्दिरके लिये दिगम्बर गुरुको दानदिया था
--	--

जिसको उसकी स्त्री दिव्यतन्त्राने सुन्दीमें स्थापित किया था । राजा बुद्धा बहुमण्डल पर राज्य करता था और श्री गणेश का शिष्य था । रानी दिव्यतन्त्रा दिगम्बर मुनियों और आर्यिकार्यों की परम भक्त थी । उसने ही आर्यिकार्योंको समाधि-मरण कराया था । इससे सुन्दीमें दिगम्बर मुनियोंका राज-शास्य होना प्रकट है ।

कुम्भोज बाहुबलि पहाड़ (कोल्हापुर) की दिगम्बर मुनि बाहुबलिके कारख ग्रसिद्ध है, जो वहां हो गये हैं और तिनकी चरख पादुका वहां मौजूद हैं ❀

<p>कोल्हापुर के पुण्यस्थल हैं दिग० मुनि और शिखाधार राजा</p>	<p>कोल्हापुरका पुरा-तत्व दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षका घो-</p>
---	--

तक है । वहांके हरदिन स्मृतिधर्ममें एक शिखाशेष शाका इसर्षी कृताब्दिता है जिससे प्रकट है कि दशहनायक दासी-मरतने राजा जगदेक मल्लके दूसरे चर्क गाल्यमें एक ग्राम धर्मार्थ दियाथा । उस समय थाषनीयसङ्घ पुन्नागवृक्षसूत्रगण रादान्तादिके माता परमविद्वान् मुनि कुमात कीर्तिदेश विरा-चित्तये X । उपरान्त कोल्हापुरके शिखाधार वंशी राजाभी दिग-म्बर मुनियोंके परमभक्तये । वहांके एक शिखाशेषसे प्रकट है कि "शिखाधार वंशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्यने माध

† वर्षासैता ० ४० १२०

* वर्षासैता ०, ५० १२१

X तैरियिज वर्ष ३१ अह १ ५००१

सुदी १५ शका १०६५ को एक श्रेष्ठ और एक मन्थन श्री
 पार्श्वनाथजीके मन्दिरमें अष्टदश पूजाके लिये दिया । इस
 मन्दिरका मूलसंघ देशीयगण पुस्तक पञ्चके अतिपति श्री
 माधनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्बरचार्य) के शिष्य सामन्त
 कर्णदेवके आश्रमस्थ वासुदेवने बनवायाथा । बातके समय
 राजाने श्री माधनन्दि सिद्धान्तदेवके शिष्य माधिकाश्वनन्दि पं०
 के चरण धोये, ये १^१ बनने प्रामसे प्राप्ति शका १०७३ के लेख
 से प्रकट है कि "शिक्षाहार राजा विजयाविराटने जैवमन्दिरके
 लिये श्रीकुन्दकुन्दाम्बयी श्रीकुलचन्द्र मुनिके शिष्य श्रीमाधनन्दि
 सिद्धान्तदेवके शिष्य श्रीअर्हन्दि सिद्धान्तदेवके चरण शोक
 भूमिदान कियाथा †" इनके उस समय दिगम्बर मुनियोंका
 प्रमुख स्पष्ट है ।

**आरटाक शिळा-लेख में चालुक्य राज
 रजित दिगम्बर मुनि—**आरटाक (धाड़वाड़) से एक
 शिलालेख शका १०७५ का चालुक्यराज मुचनेकसहके राज्य
 काकका मिलारै । उसमें एक जैवमन्दिर बननेका उल्लेखहै
 तथा दिगम्बरमुनि श्री कलकचन्द्रजीके विषयमें निम्नप्रकार
 वर्णन है :-

“स्वस्ति धर्म—धियम—स्वाभ्याय—ध्यान—
 मौनानुष्ठान—समाधिशील—गुण—संपन्नरथ कमल-
 चन्द्र सिद्धान्त देव ॥”

† धर्मसौता०, पृ० १५१-१५४

‡ धर्मसौता०, पृ० ७४

इसमें उम मगध के शिवाग्र मुनिवर्षी का विधिनिष्ठा
था वना चलता है ।

**श्वालियर और दृवकुंड के पुरातत्व में
दिग्म्वर मुनि**—श्वालियर का पुत्रात्त ईश्वरी म्याहर्षी
से मोमहर्षी शर्मादि नर बर्षा का दिग्म्वर मुनिवर्षीके सम्बु-
द्धको प्रगट करता है । श्वालियर किले में हम कालकी वनी
हुई अपने दिग्म्वर मुनिवर्षी है, जो वाचक विष्णुनरु ह्यमे
बन बर्षी है । उनका बर्षी मेवमी है, जिसमें दिग्म्वर मुनिवर्षीका
बर्षी मिलना है । श्वालियरके दृवकुंड नामक स्थानसे मिला
हुआ एक शिलालेख सन १००० में दिग्म्वर मुनिवर्षीके संरक्षा
परिचायक है । यह लेख महाराज विक्रमसिंह बलवाहाका
शिलालेख हुआ है, जिसमें काश्मीर शैलीके श्लोक प्रदान किया
था और जो अपने मुद्राविक्रमके लिये प्रसिद्ध था । इस राजाने
दृवकुंडके शिलालेखके लिये राम शिवाका और दिग्म्वर
मुनिवर्षीका सम्मान किया था । ये दिग्म्वर मुनिवर्षी श्रीलाट-
वागटकरके थे और इनके नाम क्रमशः (१) देवनेन (२) कुव
भूषण (३) श्रीकुलभामेन (४) श्रीनिसेन और (५) विजयकीर्ति
थे । इनके श्री देवनेनवर्षी प्रथमवर्षीके लिये प्रसिद्ध थे और
श्रीनिसेन अपनी वाटकलासे विपरीतवर्षीका मद चूर्ण
करते थे ।

+ समालेख, पृ० १५-१६

५ समालेख, पृ० १०-११—“शिलालेखके लिये प्रसिद्ध

खजराहा के लेखों में दि० मुनि—

खजराहाके जैन मन्दिरमें एक लेख संवत् १०११ का है। उससे दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासवचन्द्र) का पता चलता है। वह वाङ्मराना द्वारा मान्य सूर्यार पादिकके गुरु थे।^६

झांझरपाटनमें दि० मुनियोंकी निधि-

धिकार्ये—झांझरपाटन नहरके निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियोंके कई समाधिस्थान हैं। इन परके लेखोंसे प्रगत है कि सं० १०६६ में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री वल्लदेवाचार्यने समाधिभरव किया था।^७

झांझरराज्य के लेखों में दि० मुनि—

झांझर राज्यके नौगमा ग्राममें स्थित दि० जैन मन्दिरमें श्री अमलनाथ जी की एक कायोरत्न मूर्ति है जिसके आसन पर लिखा है कि सं० ११७५ में आचार्य दिग्दर्शनिके शिष्य नरेन्द्रकीर्तिने इसकी प्रतिष्ठा की थी।^८

वाचिस्वभूतपरितोगुरुः केसरेण । सिद्धमूर्तिद्विषोन्ववाधितविष्णु वेनशमाश
अभि । इत्येव प्रभवः त्रिषामवततो हस्तस्य सुखेयमः । ... - - - - -
विष्णुमुपादिमुयो श्रीमोक्षे नृपे सम्यक्वस्त्रेण पविष्ठत शिरोधत्वादिपु-
न्यदात् । सोनेषाम्राजसो अनेह भुजाबोधेयमो वादिनः । राजामोनिधि-
पासो भवन्तः श्री शान्तिसेनो गुरुः ।^९

* महावैष्णव, पृ० ११०

† Ibid p 191

‡ Ibid. p. 195

देवगढ़ (भांसी) के पुरातत्वमें दि० मुनि-
 देवगढ़ (भांसी) का पुनरुद्भव वहाँ तेरहवीं शताब्दि तक दिग-
 म्बर मुनियोंके उत्कर्षका घातक है । सत्र मूर्तियोंके साथ
 गदाइ शंभु श्रेष्ठ है । उन परके लेखोंमें प्रगट है कि ११ वीं
 शताब्दिमें वहाँ एक गुणदेवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे । सं०
 १२०६ के लेखमें दिगम्बर गुणदेवनाथ नामक धर्मधोका
 उल्लेख है । सं० १२२४ का विद्यालेश्वर पण्डित मुनिका वर्णन
 करता है । सं० १२७७ में वहाँ आचार्य जयशंति प्रसिद्ध थे ।
 उनके शिष्योंमें भाववन्दि मुनि तथा कई आदिचार्ये थीं । धर्म-
 वन्दि, कामदेवाचार्य, नागमेवाचार्य, दशावताना माधववन्दि,
 मोहनवन्दि और गुणवन्दि नामक दिगम्बर मुनियोंका भी
 उल्लेख मिलता है । सं० १२२२ को मूर्ति मुनि—आदिचार्य—
 शारदा—आदिचार्य, रामप्रकाश चतुर्विधशुद्धके लिये पनीयी + ।
 मुक्त यह कि देवगढ़में अमान्य कई शताब्दियों तक दिगम्बर
 मुनियोंका हीनहीन रहा था ।

विजांलिया (मेवाड़) में दिग० साधुओं
 की मूर्तियाँ—विजांलिया (पार्श्वनाथ—मेवाड़) का
 पुनरुद्भव वहाँ एक दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षका प्रगट करता
 है । वहाँ पर कई एक दिगम्बर मुनियों की सत्र प्रतिमाएँ पनी
 हुई हैं । एक मालवधम्म पर तोषैकरोंकी मूर्तियोंके साथ दिग-
 म्बर मुनिगणके शनिदिग्ध व चण्डचिन्ह अंकित हैं । दो मुनि-

राज्य शासकत्वाध्याय करते प्रगट किये हैं। उनके पास कर्मबल लीकी रखे हुये हैं। वे अजमेरके चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे X । शिलाशेखोंसे प्रगट है कि वहाँ पर श्री मूलसङ्घके दिगम्बराचार्य श्री बलन्तकीर्तिदेव, विशालकीर्तिदेव, मदनकीर्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और सुमचन्द्रदेव विद्यमान थे -। इनको चौहान राजा पृथ्वी-राज और सोमेश्वरने जैनमन्दिरके लिये ग्राम भेंट किये थे। साराङ्गला बीजोरामें एक समय दिगम्बर मुनि धमावशाकी हो गये थे।

अजमेरीकी गुफाओंमें दि० मुनि—

अजमेरी और अह्रा (नासिक जिला) की जैन गुफायें वहाँ पर १२ वीं—१३ वीं शताब्दिके दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वको प्रकट करती हैं। पांडुलेना गुफाओंका पुरातत्वभी इसी बात का समर्थक है + ।

बेहगामके पुरातत्वमें राजमान्य दि०

मुनि—बेहगामका पुरातत्व वहाँपर १२ वीं—१३ वीं शताब्दियोंमें दिगम्बर मुनियोंके महत्त्वको प्रगट करते हैं, जो राज मान्य थे। वहाँके राष्ट्रराजाओंने जैनमुनियोंका सम्मान किया था, यह उनके शिलोंसे प्रगट है।

X विज्ञान, पृ० ३०१

+ गवाँसला०, पृ० ११३

सार०, पृ० १५३

† ब्यागैला०, पृ० २४—२६

सन् १२०५ के लेखमें बर्णवर्द्ध कि बेलगाममें अब राष्ट्र-राजा कर्दचित्तवर्मा और मल्लिकार्जुन राज्य कर रहेथे तब भी शुभचन्द्र महारकको संशयमें राजा शोभाके बनाए गए राष्ट्रोंके जैनमन्दिरके लिये भूमिदान किया गयाथा। एक दूसरा लेख भी इन्हीं राजाओं द्वारा शुभचन्द्रजीका अन्वयभूमि अर्पण किये जानेका उल्लेख करताई। इसमें चतुर्वर्षीयकी रामीका नाम पत्रावने मिलताई *। सन्मुच उस समय यहां पर दिवम्बर मुनियोंका काफी प्रभुत्वथा।

बेलगामान्तर्गत चान्दूर स्थानमें भी राष्ट्रराजाका एक शिवालय था १००६ का मिलाई जिसका भावई कि "चालुक्यराजा जयकर्णके आधीन राष्ट्रराज मण्डलेश्वर सेन कोल्हूर आदि प्रदेशोंपर राज्य करताथा, तब बल्लभशाहानके पंशवरी को इन रजाओंका अधिपति उसने बना दियाथा। यहांके जैन-मन्त्रियोंको चालुक्य राजा कोल व जयकर्ण द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख मिलताई। इनसे दिवम्बर मुनियोंका मदाव स्पष्ट है।

बेलगाम जिलेके कम्बोले ग्राममें एक प्राचीन जैनमंदिर है, जिसमें एक शिवालय राष्ट्रराजा चतुर्वर्षीय चतुर्थ और मल्लिकार्जुनका विष्णवा हुआ मीलताई। उसमें श्रीशंतिनाथ जी के मन्दिरको भूमिदान देनेका उल्लेखई। मंदिरके मुख भी मूलसंघ कुम्भकुन्दाचार्यकी शक्ति हस्तानी संलक्षणे। इस

* काशीया०, पृष्ठ २४-२५

† Ibid pp. 80-81

वंशके तीन गुरु मल्लघारी थे, जिनके एक शिष्य सैदांतिक नेमिचन्द्र थे। श्रीनेमिचन्द्रके शिष्य शुभचन्द्र थे, जिन्होंने दिग्-म्बर घर्मकी बहुत उन्नतिकी थी। उनके शिष्य श्रीकृष्णिकोर्ति थे।

बेलगामज़िलेमें स्थित रायबाग ग्राममें भी एक जैन शिलालेख राष्ट्रराजा कार्तवीर्य का है। उससे बिदिन है कि कार्तवीर्य ने भ० शुभचन्द्र को शाका ११२४ में गहों के उन जैनमंदिरोंके लिये दान दिया था जिन्हें उसकी माता चन्द्रिका-देवीने स्थापित किया था +। इससे चन्द्रिकादेवीका दि० मुनियों और तीर्थहरोका भक्त होना प्रकट है।

बीजापुर किलेकी मूर्तियां दि० मुनियों की द्योतक—बीजापुरके किलेकी दिग्म्बर मुनियों सं० १००१ में श्री चिन्नयसूरि द्वारा प्रतिष्ठित है X। उनसे प्रकट है कि बीजापुरमें उस समय दिग्म्बर मुनियोंकी प्रधानता थी।

तेवरी की दि० मूर्ति—तेवरी (अजमेरपुर) के राजाधर्मस्थित दि० जैन मंदिरकी मूर्तिपर राजहर्षी शतान्दि का लेख है कि "मानादित्यकी स्त्री राज्ञ वसन करती है" +। इससे वहाँ पर जैनमुनियोंका राजमान्य होना प्रकट है।

दिल्ली के मूर्ति लेखों में दि० मुनि—दिल्ली न्यायमंदिर फटघरकी मूर्तियों परके लेख १५ वीं शता-

‡ Ibid pp 82-83

+ Ibid p. 87 X Ibid p. 108 + दिव्यशा०, पृष्ठ २२२

दि में वहाँ विराजित मुनियोंका अस्मिता प्रकट करते हैं : श्री आदिनाथकी मूर्ति पर लेख है कि "सं० १४२८ ज्येष्ठ सुदि १२ सांमवासरै क्षत्रसंघे माधुगन्धर्षे भ० श्रीवेवसेनदेवासतत्यवे प्रयोदशविषचारित्रेनाहं हनाः सकल विमल मुनिमंडली शिष्यः क्रिष्णभगवतः प्रविष्टाचार्यवर्य श्री विमलसंनयेवास्तेषामुपदेशेन आरसवासान्धये सा० पुररपति । इत्यादि ।" इन्हीं मुनि विमलसंनदी शिष्या अज्ञेया गुणधरी विमलश्री थी, वह बाल उसी मूर्तिपर एक शम्भु मूर्तिपर के लेखसे प्रकट है ।

साखनऊके मूर्ति-लेख में निर्मल्यचार्य—

साखनऊ चौकके जैनमंदिरमें विराजमान श्री आदिनाथकी मूर्ति परके लेखसे विदित है कि सं० १५०३ में श्री भ० सकलशोभिके शिष्य श्री निर्मल्यचार्य विमलश्रीनि पं, जिनका उपदेश श्री विहार चट्टीमें होता था ।

आवस्यपट्टी (पंगाल) के जैनमंदिरमें विराजमान इश्वरधर्म पंथके लेखसे प्रकट है कि सं० १५८६ में आचार्य श्री ग्लेशोर्ति के शिष्य मुनि नानिदशोर्ति विद्यमान थे; जिनकी भक्ति प्रमथे-षाई करनी थी ।०

कलकत्ता की मूर्तियां और दि० मुनि—

यहाँ के एक शम्भु मन्थकान यंत्रके लेखसे विदित होता है कि सं० १६२४ में विहारमें भ० धर्मचन्द्रजीके शिष्यमुनि श्री वाटुनन्दीध विहार और धर्मचक्र होता था ।†

० जैनसंस्कृत, पृष्ठ १५

† जैनसंस्कृत, पृष्ठ २६

एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि—इटावा (मैनपुरी) के जैनमंदिर में विराजमान सम्यकदर्शनपत्र परके लेख से प्रगट है कि सं० १५७८ में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान थे। उन का विहारा संयुक्त-प्रान्तमें होता था † । अज्ञात (एटा) के लेखोंसे मुनिप्राचनंदि और मुनि चर्मचन्द्रकीका पता चलता है ‡ । इटावा नगिर्या जो पर कतिपय जैनस्तूप हैं और उनपरके लेखसे यहां अटारहवीं शताब्दिमें मुनि विनयसागरजीका इना प्रमाणित है + । उक्त पटनाके श्री हरकचंद्र वाले जैनमन्दिरमें सं० १६६४ की बनी हुई एक दिगम्बर मुनिकी काष्ठमूर्ति विद्यमान है X ।

सारांशतः उत्तरभारत और महाराष्ट्रमें प्राचीनकालसे अनेक दिगम्बर मुनि इतने आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्व-विषयक साक्ष्योंसे प्रमाणित है । अतः यह आवश्यक नहीं है कि और भी अनगिनते शिलालेखादिका उल्लेख करके इस ध्या-यनाको पुष्ट किया जाय । यदि सबही जैनशिलालेख यहां लिये जायें तो इस ग्रंथका आकार-प्रकार तिगल-चौगुना बढ़ जाय, जो पाठकोंके लिये असुविधाकर होया ।

† अक्षेपल, पृष्ठ ४६ ‡ Ibid p. 70 + Ibid pp. 90—91

X Mr. Ajitaprasanna, Advocate, Jaipur now reports: "Patna Jain temple renovated in 1964 V. S. by daughter-in-law of Harakchand. On the entrance door is the life-size image in wood of a muni with a Kamandal in the right hand & the broken end of what must have been a plectrum in the left."

दक्षिण भारतका पुरातत्व और दि० मुनि-

अच्छा तो अब दक्षिण भारतक शिलालेखोंके पुरातत्व पर एक नजर डाल लीजिये। दक्षिण भारतकी पारद्वयमलय आदि गुफाओंका पुनरुत्खनन एक अनि प्राचीनकालमें वहाँपर दिगम्बर मुनिपोंका अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुभवामल्ले (क्रावन्कोर) की गुफाओंमें शिवपुत्र, मुनिपोंका एक प्राचीन आश्रम था। वहाँपर दीर्घकाल दिगम्बर मूर्तियाँ अद्विष्ट हैं। दक्षिण देश के शिलालेखोंमें मद्रास और रामनद निलोंके प्रायः प्रसिद्ध प्रशस्तिलिपिके शिलालेख अति प्राचीन हैं। यह यशोवती लिपिमें लिखे हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दिका समझना चाहिये। यह जैनमंदिरोंके पास बिखरे हुये मिले हैं और इनके निकटही तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ भी थीं। अतः इसका सख्त जैनधर्मसे होना बहुत कुछ संभव है। इससे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि में ही जैनमुनि दक्षिण भारतमें प्रचार करने लगे थे। इस शिलालेखोंके अनिश्चित दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनिपोंके संकल्प रखने वाले लौकिक शिलालेख हैं। उन सबमें वहाँ उपस्थित करना असम्भव है। हाँ, उनमें से कुछ एक का परिचय हम वहाँपर अद्विष्ट करना उचित समझते हैं। जिनके अक्षर वेदमाला में ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तकमें किया गया है। अस्तु।

श्रवण वेङ्गगोत्रके शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण—पहले श्रवण वेङ्गगोत्रके शिलालेखों के ही दिगम्बर मुनिगोत्रका महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक सं० ५२२ के शिलालेखसे वहाँ पर भुतकेवली भद्रबाहु और तीर्थलक्षाद् चन्द्रगुह्य परित्यक्त मिश्रता है। इन दोनों महाज्जुमाओंने दिगम्बर-वेपमें श्रवणवेङ्गगोत्रको पवित्र किया था *। शक सं० ६२२ के लेखमें मीनिगुह्यकी शिष्या मागमति को तीव माक्षका वत धारण करके समाधिभरण करते लिखा है। इसी समयके एक अन्य लेखमें चरित धी नामक मुनिका उल्लेख है†। धर्मसेन, यलदेव, पट्टिमिगुह्य, वप्रसेन शुभ, मुखसेन, पेक्षभाज्जु, उल्लिफन्न, तीर्थेव, कुष्माण्ड आदि दिगम्बर मुनिगोत्रका अस्तित्वभी इसी समय प्रमाणित है ‡। शक सं० ८२६ के लेखसे प्रगट है कि गङ्गाराजा मार्गसिंहने अनेक सदाचार्यों लड़कर अपना मुद्राधिकार प्रगट कियाथा और अंतमें अलितसेनाचार्यके निकट बङ्गापुरमें समाधिभरण किया था। +

तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति—शक सं० १०८५ के लेखसे तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनिका तथा उनके शिष्य लक्ष्मणम्बि, माधवेन्दु और त्रिभुवनमस्तका पता चलता है। उनके विषयमें कहा है :—

* मैसूरसं०, पृ० १-२

† Ibid p. 8

‡ Ibid pp 4-16

+ Ibid p. 20

"शुद्धैतम, कपिल-वादि-वनोप्र-बन्धये
 चार्थाङ्ग-वादि-मकगङ्ग-वाहकान्तये ।
 बौद्धोपचादिनिमित्तप्रविभेदमानये
 श्रीदेवकीर्तिमुक्तये कविवादिवाग्मिने ॥"

* * *

"चतुर्भुज चतुर्वर्गकूर्निर्मापागमदुस्महा ।
 देवकीर्तिमुखात्मात्रे नृपतीति सगस्वती ॥"

सचमुच मुनि देवकीर्तिकी अपने समयके अद्वितीय
 कवि, नाटिक और शब्दा थे। ये महाभारतका भाष्य और विद्वान्
 थे और उनके समस्त साहित्य, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती,
 वैश्व व्याप्ति सभी दार्शनिक हान गानते थे। ॥

महाकविमुनि श्री श्रुतकीर्ति—उक्त समयके एक
 अन्य शिवासेवर्मा मुनि देवकीर्तिकी गुरुपरम्परा ही है, जिम्हने
 प्रकट है कि मुनि सतसन्नि और देवचन्द्रके द्वारा श्रुतकीर्ति
 शैविश मुनिने देवेन्द्र चन्द्र विपश्चवादिषोंको पराजित किया
 था और एक चमत्कारी काल्य तन्त्र-शास्त्रदीपनी रचना की
 थी, जो आदिमें अन्तर्गत अन्तर्गत आदिको, दोनों और पढ़ा
 जा सके। हमसे प्रकट है कि उपरोक्त मुनि देवकीर्तिके सिष्य
 वादय-नरेश नार्सिंह प्रथमके प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री
 हुआप थे ॥

श्री शुभचन्द्र और रानी जवककाव्ये—
 यह सं० १०६६ के लेखमें मंत्री नागदेवके गुरु श्री न्यकीर्ति

बोधीन्द्र व चतुर्को गुरुपरम्पराका उल्लेख है † । शुक सं० १०४५ के लेखसे प्रगट है कि होबसाला महाराज यदुनरेण विन्दुधर्द्धने अपने गुरु शुभचन्द्रदेवकी निपछा निर्माय कराई थी । इनकी भाषय अक्षरकल्पेकी त्रैलोक्यमें इतु भ्रष्टा थी और यह विद्यम्बर मुनियोंको दानादि देकर सत्कार किया करती थी + । उनके विषयमें निम्नप्रकार उल्लेख है :—

“दोरेवे अक्षरशिकश्वेगी सुवनदोल् चारिभवाल् शीकदोल् परमश्रीनिमफूलेपोल् सफलदानाक्षर्यदोल् सत्यदोल् । शुभपादाभ्युत्थमकिन्वील् विनयदोल् मन्वकर्मसंक्रन्ददा—
वरिदं मन्विभुतिर्यं पेम्पिनेडेपोल् मत्तन्यकान्ताजनम् ॥”

श्रीगोत्लाचार्य प्रभृत अन्य दिगंबराचार्य

शुक सं० १०२७ के लेखमें है कि मुनि त्रैकात्पयोगीके तपके प्रभाव से एक ब्रह्म-राजस इनका शिष्य होयया था । उनके स्मरणमात्रसे पड़े २ भूत भागते थे, उनके प्रतापसे करलका तैल कृष्ण परिवर्तित होयया था । गोत्लाचार्य मुनि होने के पहले गोरक्षदेशके नरेण थे । नूत चन्द्रिक नरेणके वंश चूड़ा-मणि थे । अक्षरचन्द्रमुनिके शिष्य मेघचन्द्र त्रैविध थे, जो सिद्धान्तमें वीरसेन, तर्कमें अक्षरह और व्याकरणमें फूलपाद के समान विद्वान् थे x । शुक सं० १०४४के लेखमें दगडनायक गङ्गाराजकी धर्मपत्नी सखीमतिके गुण, शील और दानकी

† Ibid. pp. 38—42

+ Ibid. pp. 43—49

x Ibid. pp. 54—58

प्रणीत है। यह दिगम्बरार्थ्य श्री मुमचन्द्रजी की शिष्या थी। इन्हीं आचार्यकी एक अन्य धर्मज्ञा शिष्या रामसन्तान्त्रिण बामुण्डकी स्त्री देवमति थी -। शुक सं० १०६८ के लेखमें अन्य दिगम्बर मुनियोंके साथ श्री मुमचन्द्रीति आचार्य का उल्लेख है, जिनमें सम्मुख बादमें बौद्ध, जैनोंसकादि हों भी नहीं उद्धर करनर था। इन्हीं श्री प्रभाचन्द्रजी की शिष्या विष्णुवर्द्धन वरेशकी पटरानो शान्तसदेवीकी धर्म-परापणनाका भी उल्लेख है। +

शुक सं० १०५० के लेखमें श्री महावीर स्वामीके बाद द्वि० मुनियोंकी शिष्यपरंपराका बयान है, जिनमें धुनकेवाही भद्रयाहू और मन्नाद् चन्द्रमूर्त्यका भी उल्लेख है। कुन्द-कुन्दाचार्यके चाण्डि-मुण्डादिका पश्चिममें एक श्लोक द्वारा करवा गया है।

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य

एक आचार्यकी एक अन्य शिष्यालेखमें मूलसंबन्ध अग्रणी लिखा है। उन्होंने चाण्डिकी श्रेष्ठतासे चाण्डिकादि प्रालकी थी, जिसके पक्षमें यह धृष्यासे चार अक्षुप्त ऊपर चहते थे। श्री समन्तभद्राचार्य श्री के विषयमें कहा गया है :-

“पूर्वं पाटलिपुत्र-भवन-नगरे मेरो दश लक्षिता
पञ्चमासव-सिन्धु-अथ विषये घन्तीपुरे वैदिने।

+ Ibid, pp 67-70 + Ibid, pp 80-81

x Ibid, Intro, p. 140

. प्राप्तेऽहंकरहाटकं बहु-मते विघोरघटं सङ्घटं
 वादात्तर्पी विचराम्यहन्नरपते शार्दूलविशोदितम् ॥७॥
 अहदु-तटमरतिमदिति स्फुट-पट्ट-वाचाट धूर्जटेरपिजिह्वा ।
 वादिनि समन्तमद्रे स्थितपतितथछदसि मूप चास्याम्पेयां ॥८॥”

भाव यहो है कि श्री समन्तमद्रस्वामीने पहले पादलि-
 पुव नगरमें वादमेरी कलाई थी । उपरान्त वह मालव, लिधु,
 पड्याव, कांचीपुर, विदिशा आदिमें वाद करते हुये करहाटक
 नगर (कराड) पहुँचे थे और वहाँ की राजसभामें वाद-वार्जना
 की थी । कहते हैं कि वादी समन्तमद्रकी उपस्थितिमें चतु-
 राईके साथ स्पष्ट, शीघ्र और बहुत बोलने वाले धूर्जटिभी
 जिह्वा ही अब शीघ्र अपने विषयमें झुल जाती है—उसे कुछ
 बोल नहीं आता—तो फिर दूसरे विद्वानोंकी वो कथा ही क्या
 है ! उनका अस्तित्व तो समन्तमद्रके सामने कुछभी महत्व
 नहीं रखता । सचमुच समन्तमद्राचार्य जैनधर्मके अनुपम रत्न
 थे । उनका वर्णन अनेक शिखा लेखोंमें गौरवरूपसे किया गया
 है । विष्णुकुण्डलु नरसीपुर तास्तुकेके शिखासेक सं० १०५ के
 निम्न पद्यमें उनके विषयमें डीक ही कहा गया है कि :—

समन्तमद्रस्तस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः ।

धीरायसोश्वरस्याग्रे निर्जिहा येन विद्रिपा ॥

अर्थात्—“वे समन्तमद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी
 (बनारस) के राजाके सामने अनुओंको—मिथ्यैकान्तवादियों
 को—परास्त किया है, कितने श्रुतिपात्र नहीं हैं ! वे सभीके
 ज्ञान श्रुति किये जानेके योग्य हैं ।”

शिवशेखरि नामक राजाने श्री समन्तभद्रजीके उपवेगने ही जैनेन्द्रोप दोहा प्रहणके थी ।

श्री चक्रमीव आदि दिगम्बराचार्य—

दियम्बराचार्य श्री चक्रमीवके विषयमें ज्योत्सल श्रवणवेव-
गांधीस्य शिमा लेख पठाना है कि वे कृ मान तक 'अथ' शब्द
का अर्थ करने वाले थे । श्री वाक्केनरी गुण विमल्लस्य सिद्धा-
नके स्याद्वकृत्ता थे । श्रीवद्वैद्य चूड़ाप्रणि कायरके कर्ता
कवि उगडी द्वारा स्तुत थे । भ्वायो मंदेश्वर प्रहणकसीद्वारा
पूजित थे । अकमल स्वामी यौडोंके विजेताथे । उन्होंने साहस
गुरु नरेणके मन्सुप, दिगम्बरोत्तम नरेणकी मभामें उन्हें पगल
किया था । विमलचन्द्र मुनिमें शैव वास्तुपनादिथादियोंके जिये
'शुभममदुर' के मधवद्वार एक नाटिक जया दिखा था । एक
वादिमहाने कृष्णगजके समस्त धाव कियाथा । मुनि वादिगज
ने चालुक्यचक्रेश्वर जयसिंहके कदममें कीर्ति प्राप्तकी थी ।
आचार्य शान्तिदेव हांशशाव नरेण चित्त्यादिक द्वारा पूज्य
थे । चतुर्मुण्डेव मुनिराजने वायल नरेणसे 'भवामो' की
उपाधि प्राप्त की थी श्री आहवमहानेजने उन्हें 'चतुर्मु-
ण्डेव' कपी मन्मादिन नाम दिया था । गर्ज यह कि यह शिवा
लेख दिन० मुनियोंके गौरव-भाषामें समन्वित है ।*

दिराम्बराचार्य श्री योपतन्दि—शुभ सं०
१००२ (सं० ५१) के सिद्धा संश्लेषे ज्ञात आता है कि मूल सङ्घ

देहोपपन्न आचार्य गोपबन्दि बहु प्रसिद्ध हुए थे । 'वह बड़े भारी कवि और उर्ध्वप्रबोध थे । उन्होंने वैश्वकर्माकी, वैसी ही कर्मणि की थी वैसी गङ्गानरेणोंके समथमें हुई थी । उन्होंने घूर्त्तिकाकी जिह्वाको भी स्थवित कर दिया था ।' देशदेशान्तरमें विहार करके उन्होंने सांख्य, बौद्ध, जार्वाक, जैमिनि, ब्रह्म-यत आदि विषयोंको हीनप्रथम बना दिया था । वह परम-तपके निवाण, प्राणीभावके द्वितीय और जैन शासकके सकल कर्मापूर्य चन्द्रमा थे † । होयसल्लवणेश परेपङ्क उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें मेट दिये थे । x

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र—एसी शिष्या लेखमें मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषयमें लिखा है कि वे एक सफल वादीये और धारानरेश मौजने अपना शोध उर्ध्वके पवित्र चरणोंमें रक्खा था †

श्री दामनन्दि—श्री दामनन्दिमुनिको भी एक शिष्या लेखमें एक महावादी प्रगट किया गया है, जिन्होंने बौद्ध, नैगयिक और वैश्याओंको शस्त्रार्थमें परास्त किया था। महावादी 'विष्णु-सह'को परास्त करनेके कारण वे 'महावादि विष्णुसहस्ररु' कहे गये हैं । *

† कैलिसं०, पृ० ११० 'वप्यस्यो निवाण, वसुपैरुद्रुभजैरशासना-
मन-परिपूर्ण-सकशासम — उर-पशार्थ-शास्त्र-वित्तर-क्यामिराम
गुध-रु-विमुक्त गोपबन्दि ।'

x कैलिसं०, पृ० ३६२ † कैलिसं०, पृ० १२८

* 'बौद्धोन्नीपर-सम्याः क्यायिक-कल-कुल विष्-विष्णुः ।

श्री दामनन्दिमुनिः पुद्-पहावादि-विष्णुसह-सह ॥१६॥'

—कैलिसं०, पृ० १२८

श्री जितचन्द्र—श्री जितचन्द्र मुनिको यह शिवालेख व्याकरणमें पूरवपाद, रक्षमें महाबलद्व और माहित्यमें मादि क्वाता है ।†

चालुक्यनरेश-पूजित श्री वासवचन्द्र—
श्री वासवचन्द्र मुनिने चालुक्य नरेशके कटकमें 'वासव-सर-म्वती' की उपाधि प्राप्तकी थी, यहमी इस शिवालेखसे प्रगट है । अथाहाद् श्री नरेश शास्त्रमें यह श्लोक ये ।‡

सिंहलनरेश द्वारा सम्मानित यशः-
कीर्त्ति मुनि—श्री यशःकीर्त्ति मुनिसे उक्त शिवा लेख मार्थक नाम पत्राना है । ये विशाल कीर्त्तिको क्लिये हुये अथाहाद्-मूर्त्त ही ये । शैलादि वादिर्षीको उन्हींने पगस्त किया था । तथा सिंहल-नरेशने उनके पूरवपादोक्त पूजन कियाथा । †

श्रीकल्याण कीर्त्ति—श्री कल्याण कीर्त्ति मुनि

† जितेन्द्र पूरव (पाद) कफनसमवपयो व महाबलद्व ।

‡ उादिने मागविस्वात्कवि-कनक-महापाद-शामित्त-मन् ।

वोते वावे व पूरवे तिसि विरिसि व संपति कम्पेति मूर्ति ।

म्पेयान्शुषोर्गणकन्पादिशपद जितचन्द्रे तित्तुमेवचोद ॥

‡ वैश्वानर, १०११६—“चालुक्य-कटक-मध्ये नाम-साल्मर्तिरिति एतदिं शान् ।”

† “श्रीमाश्वतःशोर्हि-शिकाकधीति । (त्याहा-द-तकनो-व-विचोपनामर्त्त) ।

पौददि-वादि-द्विप-कुम्भ-शेरी श्री सिंहलापीश-नृतागर्भे चय-

को उक्त शिलालेख जो शौंके लिये कल्याणकारक प्रगट करता है। यह शास्त्री आदि वाद्यियोंको दूर करनेमें प्रतीय है।*

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र वड़े सैद्धान्तिक यत्नाये गये हैं। वे नील मुट्टो अन्नका ही आहार करतेथे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिग्भस्वर मुनियोंकी गौरव-गाथाको जाननेके लिये एक अच्छा साधन है।—

वादीन्द्र अभयदेव—शक सं० १३२० (सं० १०५५) के शिलालेखमें श्री अनेक दिग्भस्वराचार्योंकी कौस्तुभ गाथाका पता है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने वीदादि परवादियोंको प्रतिमाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चादकीर्तिके विषयमें कहा गई है।†

होयसाल वंशके राजगुरु दि० मुनि—शक सं० १२०५ (सं० १२६)में होयसाल वंशके राजगुरु महा भयदत्ताचार्य भावर्तुदि का उल्लेख है; इनके शिष्य वेदगोत्र के जोहरी थे।‡

योगी दिवाकरान्दि—सं० १३६ के शिलालेख में योगी दिवाकरान्दि उद्या उनक शिष्योंका वर्णन है। एक

* कल्याणकीर्तिके वादामुद्रापत्र-कल्याण-कावक ।

† अकिन्पारि-महाशाला निद्रोदन-दुर्दर. ३ -वैशिशं, पृ० १२६

+ "मुष्टि-अप-समित्तयान-वृष्टा शिष्ट-विय चित्तुस्त्रिमुनीन्द्र ।"

* वैशिशं, पृ० १६७-१७०

‡ Ibid., p. 233

गणेश नामक महामहिम्नाने उनसे दीक्षा लेकर समाधिभरण किया था । X

एकसौ आठवर्ष तपकरनेवाले दि० मुनि-
 चं० १५३ शिखारोत्र प्रकट करता है कि कालान्तरके एक मुनि-
 राजने कठव्रत पर्यन्त एक सौ आठ वर्ष तक तप करके
 समाधिभरण किया था । -

गर्ज्ज यह है कि अथर्व वेदशास्त्रके अथः सब ही शिखा
 लेश दिग्मन्त्र मुनियोंकी कौत्ति और यशको प्रकट करते हैं ।
 राजा और राज्ञ सब ही का उन्होंने उपकार किया था । रघु-
 नेश्वरमें पहुँच कर उन्होंने श्रीरामको सम्पन्न सुखाया था । राजा
 गणेश, श्रीगुरुप, सबही उनके भक्त थे ।

दक्षिण भारत के अन्य शिखा लेखों में
दिग्० मुनि—अथर्व वेदशास्त्रके अनिर्दिष्ट दक्षिण भारत
 के अन्य स्थानोंमें भी अनेक शिखा लेख मिले हैं, जिनसे दिग्-
 मन्त्र मुनियोंका गौरव प्रकट होता है । उनमें से कुछका संग्रह
 प्रो० शंभुशिविरावने प्रकट किया है, जिससे विदित होता है कि
 दिग्मन्त्र मुनि एतद्विशालोत्थीमें यम-निषम-स्वाध्याय-श्वात
 धारद-भीतानुष्ठान-तप-समाधि—श्रीगुरुप—सम्पन्न किये
 गये हैं * । उनका यह विशेषत्व उन्हें एक सिद्ध-योगी प्रकट
 करता है । प्रो० सा० उनके विषयमें लिखते हैं कि :—

X Ibid., p 291

+ Ibid., p 303

* SSLJ, pt. II p. 6

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and ncharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra-Karnata desa. They were not only the leaders of lay and ascetic disciples, but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands." †

आचार्य—“उक्त शिलालेख-संग्रहसे उन महान् दिगंबर बुद्धिवां और आचार्योंका परिचय मिलता है, जिन्होंने अण्ड्र-कर्णाट देशमें जैनधर्मका सर्वश्रेष्ठ विस्तार किया था। वे मात्र शासक और ब्राह्मण शिष्योंके ही नेता नहीं थे, बल्कि उन क्षत्रिय कुलोंके राजवंशोंके नेता थे कि जिनके हाथोंमें उन देशोंकी मज्जा के मामयकी चागदोर थी।”

दिगम्बराचार्यों का महत्वपूर्ण कार्य—

सबसभ्य दिगम्बर मुनियोंने बड़े २ राज्योंकी स्थापना और उनके संचालनमें गहरा भाग लिया था। पुस्तक (मद्रास) के पुरातत्त्वसे प्रगत है कि एक दिगम्बराचार्यने असभ्य कुटुम्बों को जैनधर्ममें दीक्षित करके सम्य शासक बना दिया था। वे जैनधर्मके महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म सभ्यसे प्रेरित हो कर बड़ी २ सङ्घार्यां सङ्गी थीं। उनसे ही क्या, बल्कि दिगम्बराचार्योंके अनेक राजवंशी शिष्योंने धर्म संप्रसारणमें अपना कुशल-विक्रम प्रगट किया था। जैन शिलालेख उनकी रक्षणावा-

† Ibid., p. 68

‡ OIL, p. 286

झोसे ओतपोन हैं। उदाहरणतः गहमेनारसि ज्ञानचूडामणि श्री चामुण्डरायक्ये हो लेनाजिप, यह जैनधर्मके इह अहानी ही नहीं, बरिइ उसके तत्वके ज्ञाता थे। उन्होंने जैनधर्म पर कई धेर्य ग्रन्थ लिखे हैं और वह धारकके धर्माधारका भी पातल करते थे; किन्तु उन धर्मो उन्होंने एक नहीं अनेक सफल संग्रामोंमें अपनी तबकाका लौहर गारिह कियाथा +। सचमुच जैनधर्म मनुष्यकें पूर्ण स्वाधीनताका सन्देश मुनाता है। जैनाचार्य निगद्ध और स्वाधीन टांकर बड़ी धर्मोपदेश उमकाको देतेहैं ओ जनकल्याणकारी हो। इमीसिधे वह 'धसु धैवकुटाधक' कहे गये हैं। भीरुता और अन्याय तो जैनमनियों के निरुट फटभामी नहीं सधता है।

ग्रो० सा० के उक्त संग्रहमें विशेष उल्लेखनीय दिगम्बर-राचार्य श्री मावसेन धैवेश चक्रवर्ती, जो गदियोंके सिधे मदास्थानक (Tutor to disputant) थे, वह और धरराज के गुरु (Preceptor of Hara king) श्री साध्वन्दि मुनि हैं X। अन्य धोतसे प्रपट है कि—

उपरान्त के शिलालेखोंमें दि० मुनि—

सन् १४५८ ई० में तिल्लोप्रदेशमें दिगम्बरचार्य श्री धोर-सेन बहु प्रसिद्ध हुये थे। उन्होंने तिल्लयत-धरचारकोंके समूह धाहमें विजय पाकर धर्मोचोत किया था और लोगोंको पुना

+ धोर, कें० पृ० २—११

X SSIJ, pt VI pp 61—68

जैनधर्ममें दीक्षित किया था। कारकान्तमें राजा वीरपाण्ड्याने विगम्भराचार्यको आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् १४३२ में श्री गोम्मट-मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जिसे उन्होंने स्थापित कराया था। एक ऐसीही विगम्भर मूर्ति की स्थापना बेरारमें सन् १६०४ में श्री तिमिराज द्वारा की गई थी। उस समयमें विगम्भराचार्यों ने धर्मोद्योत किया था। सन् १५३० के एक शिलालेखसे प्रगट है कि औरंगनगरका शासक विधर्मी होगया था, उसे जैनसन्तु विद्यानन्दिने पुनः जैनधर्ममें दीक्षित किया था।‡

दि० मुनि श्री विद्यानन्दि—इसी शिलालेख से यहभी प्रगट है कि "एन मुनिराजने जारायणपट्टनके राजा नन्दवैद्यकी सभामें नन्दनमंजु मट्टको जोठा, सातवंश राजा केशरीचर्माकी सभामें बादमें विजय पाकर 'बादी' पाया, सातुचदेव राजाकी सभामें महान विजय पाई, विस्मने के राजा नरसिंहकी सभामें जैनधर्मका माहात्म्य प्रगट किया, कारकान्त नगरके शासक सैरव राजाकी सभामें जैनधर्मका प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णरायकी राजसभामें विजयी हुए, कोपल व अम्ब तीर्थों पर महान उत्सव कराये, अश्वमेधयज्ञके श्री गोम्मटस्वामीके चरणोंके निकट क्षात्रने श्रमृतकी वर्षा के समान योगम्बासका सिन्हांत मुनिबोधो प्रगट किया, तिरुसम्भामें प्रसिद्ध हुये, उनकी माहात्म्यसार श्रीवरदेव राजा

(२४)

ने कदवास पूजा करताई और वह संगी गजा और परपुत्र
हस्तदेवसे पूज्य थे । +” वह एक प्रतिमाशास्त्री साधु थे और
उनके अनेक शिष्य दिगम्बर मुनिगण थे ।

सारंग्यतः दक्षिण-भारतके पुरातत्वसे यहाँ दिगम्बर
मुनियोंका उभावस्थासि अस्तित्व एक प्राचीनकालसे पर्यन्त
सिद्ध होता है । इस प्रकार भारत सरदा पुरातत्व दिगम्बर
जैन मुनियोंके महती उत्कर्षका साक्ष्य है ।

[२४]

विदेशों में दिगम्बर मुनियोंका विहार ।

‘India had pre-eminently been the cradle
of culture and it was from this country that other
nations have understood even the rudiments of
culture. For example, they were told, the B-
ddhistic missionaries and Jains monks went for-
th to Greece and Rome and to places as far as
Normy and had spread their culture.’ §

—Prof. M. S. Ramaswamy Iyengar.

श्रेष्ठ पुराणोंके कालसे स्पष्ट है कि बौद्धों और
जैनोंका विहार समस्त आर्यभूमिमें हुआ था । वर्तमानकी

+ धर्मशास्त्र, पृ० १२०—१२१

§ The “Hindu” of 25th July 1919 & JG. 5727

जाती हुई दुनियाँ का समावेश आर्क्टिकलैंडमें हो जाता है †। इसलिये यह मानना ठीक है कि आग्नेय, यूरोप, दक्षिण आदि देशोंमें एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहाँ दिगम्बर-मुनिशैलीका विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बातको प्रकट करते हैं कि पौरुष और जैनमिथुण्य युवान्, राम और नाग्ये एक धर्म प्रचार करते हुये पहुँचे थे !

किन्तु जैनपुराणोंके वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रकट होता है कि दिगम्बर मुनि विदेशोंमें अपने धर्मका प्रचार करनेको पहुँचे थे। भ० महाश्वरके विहार विषयमें कहा गया है कि वे आफनोय, बुकार्थेय, वाल्दीक, पचनधुनि, गांधार क्षापनोय, तार्थ और कर्ण देशोंमें भी धर्म-प्रचार करते हुये पहुँचे थे †। ये देश भारतवर्षके बाहरका प्रकट होते हैं। आफनोय संघपतःआफनोनिथा (Oxiana) है। पचनधुनि युवान् अथवा पारस्यका घांतक है। वाल्दीक बल्क (Balkh) है। गांधार कंधार है। क्षापनोय रेड-सी (Red Sea) के निकटके देश हो सकते हैं। तार्थ-कार्य युवान् आदि प्रतीत होते हैं। इस दृशमें कंधार, युवान्, मिथ्र आदि देशोंमें भगवान्का विहार हुआ मानना ठीक है †।

† मय०, १५६-१५७

→ इतिवसुपुत्र, सर्ग ३ श्लो० ३-७

• भीम, वर्ष ६ पृष्ठ ७

+ सर्वज्ञ०, भा० २ पृ० १०२-१०१

सिफन्दर महाशयके साथ दिगम्बर मुनि कल्याण घुमान के लिये यहाँसे प्रस्थानित होंगये थे और एक अन्य दिगंबर-चार्य घुमान धर्मप्रचारार्थ गये थे, यह पहले छिछो आ चुका है। यूनानी लेखकोंके कथनमें बैक्ट्रिया (Bactria) † और इथ्योपिया (Ethiopia) ‡ नामक देशोंमें धर्मशक्तिके विस्तारका पता चलताहै। वे धर्मग्रन्थ दि० जैतही थे, क्योंकि बौद्ध धर्मका ना सत्राट् इत्येकके उदगमस्थ बिदेशोंमें पहुँचेथे।

अश्वीकाके मिश्र और अश्वीसिनिया देशोंमें भी एक समस्त दिगम्बर मुनियोंका विहार हुआ प्रगट होता है, क्योंकि वहाँ की प्राचीन मान्यतामें दिगम्बरत्वको विशेष आदर मिश्रा प्रमाणितहै। मिश्रमें लक्ष्मी मूर्तियोंकी धरोहरें और वहाँकी कुमारी सेंटमेरी (St. Mary) दिगम्बर साधुके भेषमें रहीथी। साहज्य होतहै कि गणराज्यी बहू अश्वीकाके विच्छेदही थी और जैन-पुराणोंमें यह प्रगटही है कि वहाँ अनेक जैनमन्दिर और दिगम्बर मुनिये †

यूनानमें दिगम्बर मुनियोंके प्रचारका प्रभाव कल्पो हुआ प्रगट होताहै। वहाँके लोगोंमें जैनमान्यताओंका आदर होमयाथा। वहाँ तक कि डायग्लेस (Diagoras) और सम्भवतः पिर्रो (Pyrrho of Ehs) नामक यूनानी ज्ञान

† AL p. 104

‡ AR, III, p. 6. व जैन होतहै वैश्वीय नाम ११ पृ० १

† पृ० १०, पृ० ११०-१०१

वेसा दिगम्बर वेपमें रहेये †। पैरैहोने दिगम्बर मुनियोंके निकट
शिखा ग्रहणकी थी। दूनानियोंने नख मूर्तिवांगी धमार्दियों, जैसे
कि लिखा जा चुकाहै।

जब दूनान और नामके जैसे दून्के देशोंमें दिगम्बर मुनि
गए पहुँचेये, तो भन्ना मगर-वेष्टियाके अरब ईगन और
अफगानिस्तान आदि देशोंमें वे क्यों न पहुँचते ? सचमुच
दिगम्बर मुनियोंका विहार इन देशोंमें एक समयमें हुआथा।
मौर्य सम्राट् सम्रातिन इन देशोंमें जैन धर्मकीका विहार कनाया
था, यह पहले ही लिखा जाचुकाहै। मालूम होनाहै कि दिग-
म्बर मुनि अपने इस प्रयासमें सफल हुयेये, क्योंकि यह पता
चलताहै कि इस्लाम मझाहयकी स्थापनाके समय अघिर्छांश
जैमी अरब झोंडकर दक्षिण-भागमें आ बनेये †। तथा हुएज
सांगके कथनसे स्पष्टहै कि ईस्वी सानवीं शताब्दि तक दिग-
म्बर मुनिगए अफगानिस्तानमें अपने धर्मका प्रचार करते
रहेये ×।

दिगम्बर मुनियोंके धर्मोपदेशका प्रभाव इस्लाम-मझाहय
पर बहुत-कुछ पड़ा प्रतीत होताहै। दिगम्बरत्वके सिद्धांतका
इस्लाम-मझाहयमें मान्य होना, इस बातका सबूतहै। अरबी

‡ K1, Intro p 2 & "Diogenes Laertius (IX. 61 & 68) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return the Elis imitated their habits of life" —EB., XII 759

+ Ar., IX. 264 × इना, पृ: ३०

कवि और कव्यवेत्ता अबु-ल-फता (Abu-l-As; ई० ६७६-१०५८)की रचनाओंमें कैलस्यकी काफ़ी भलाख मिश्रती है। अबु-ल-फता शकमौवी तो नहीं, परन्तु वह म०गर्बीकी छे तरह नहीं मानतेथे कि यह अहिंसकको दूख नहीं पीता चाहिये। मधुघानी उन्होंने कैलसकी तरह निषेध कियाथा। अहिंसा धर्मको पाखनेके लिये अबुल फताने कसबेके जूतोंका पहननाभी बुरा समझया और यह रहना वह बहुत ब्रह्मा समझतेथे। भारतीय सात्त्विकीका अन्तसमय अहिंसावितापर वैदिक संस्कारको मरुद करते देखकर, वह बड़े आश्चर्यमें पड़ गयेथे। इत सब बातोंसे वह स्पष्टई कि अबु ल-फता पर दिगम्बर जैनधर्मका काफ़ी प्रभाव पडा था और उनके दिगम्बर मुनियों को सर्वश्रेष्ठावस्था मानन करते हुये देखा था। वह अवश्यही दिगम्बर मुनियोंके ससर्गमें भाषे प्रतीत होते हैं। उनका अधिक समय बग़दादमें व्यतीत हुआथा।

स्यू (Ceylon) में जैनधर्मकी बति प्राचीनकालसे है। ईसवीपूर्व चौथी शताब्दिमें सिंहलमेंसे पाण्डु राजपते वहाँ के राजसभर अबुधुपुरसे एक जैनमन्दिर और जैनमठ बनवायाथा। निर्ग्रन्थ साधु वहाँ पर निर्वाच धर्मप्रचार करतेथे। इन्कीस राजाओंके राजसभर वह जैनविहार और मठ वहाँ मौजूद रहेथे, किन्तु ई० पू० ६८५ में राजा बहुवामिगिने उनको बरु कराकर उनके स्थानपर बौद्ध विहार बनवायाथा *।

(२३६)

बसपरसी, दिगम्बर मुनियों ने जैनधर्मके प्राचीनकेन्द्र सङ्घ या सिद्धलक्ष्मीपको बिसफुश्रही नहीं छोड़ दियाथा । बच्चकाकमें मुनि धशःकीर्ति इतने प्रमाथशाली हुयेथे कि तजःशालीन सिद्धल नरेकने उनके पादःपश्रीकी शर्चा कीपीी ।

सारांशतः यह प्रकटहै कि दिगम्बर मुनियोंक विहार विदेशोंमेंभी हुआथा । भारततर जनताकामी उम्होंने कत्याथा कियाथा ।

(२५)

मुसलमानी बादशाहतमें दिगम्बर मुनि ।



"O son, the kingdom of India is full of different religions... .. It is incumbent on thee to wipe all religious prejudices off the tablet of the heart; administer justice according to the ways of every religion." —Babar.

मुसलमान और हिन्दुओंका पारस्परिक सम्बन्ध—ई० ८वीं—१०वीं शताब्दिसे अरबके मुसलमानों ने भारतवर्षपर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दियाथा, किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहाँ पर नहीं अमेथे । यह तूटमार फरके जो मिला उसे लेकर अपने देशको लौट जातेथे । इन

† वैशेषिके पृ० ११५ ०) ‡ QJMS, Vol. XVIII p. 116

प्रारंभिक आक्रमणोंमें भारतके स्त्री पुरुषोंकी एक बड़ी संख्यामें हत्या हुई थी और उनके धर्ममन्दिर और मूर्तियोंमें खूब तोड़ीगई थीं । निम्नलिखितमें जिस रोज़ दिल्ली फतहकी वस रोज़ वस ने एक लाख भारतीय कैदियोंको शोध दम करवा दिया + । सचमुचप्रारम्भमें मुसलमान आक्रमणकारियोंमें हिन्दुस्तानको घेतनदृ तयाद् किया, किन्तु अब उनक बह्दां पर वैर जमने लीर वे वहां रहने जमे तो बह्दोंने हिन्दुस्तानका होकर रहना हीक समझा । यहाँकी मजाकों संगोपित रचना बह्दोंने अपना मुख्य कर्तव्य माना । बाबरने अपने पुत्र हुमायूँ को यही शिक्षा दी कि "सागतमें अनैक मनमनान्तरद्वै, इसलिये अपने हृदयको धार्मिक पक्षपातसे भाफ रख और अपनेक धर्मकी रियाजोंके मुताबिक इत्साफ कर" एगियाम हुमायूँ यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर विश्वास और प्रेमका बीज पड़ गया । जैनोंके विषयमें आ० डॉ० हेल्मुथ वॉन ग्लाजेराप कहते हैं कि "मुसलमानों और जैनोंके मध्य हमेशा वैरमत्त सम्बन्ध नहीं था" (यहिक) मुसलमानों और जैनोंके बीच मित्रताका भी सम्बन्ध रहाई + । "हमी मैत्रीपूर्ण सम्बन्धकाही यह परिश्राम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहोंके राज्यमें भी अपने धर्मका पालन कर सकेंगे ।

+ Elliot III. p. 186: "100000 in fidelis, numerous idolaters were on that day slain."

—Maljusat: Timur.

+ L.J., p. 66 & पैप०, पृ० ६६

ईस्वी दसवीं शताब्दिमें जब अरबका सौदागर सुलेमान
 वहां आया तो उसे दिगम्बर साधु बहु-संख्यामें मिले थे, यह
 पहले ज्ञाना जा चुका है । गुरु यह कि मुसलमानोंने आतेही
 वहां पर नये दरवेशोंको देखा । महमूद गज़नी (१००१) और
 महमूद गौरी (११७५) ने अनेक बार भारत पर आक्रमण
 किये; किन्तु वह वहां ठहरे नहीं । ठहरे ही वहां पर 'गुलाम
 खानदान' के सुल्तान और उन्हींसे भारत पर मुसलमानों
 बादशाहकी शुरुआत हुई समझना चाहिये । उन्होंने सन्
 १२०६से १२६० ई० तक राज्य किया और उनकेबाद जिलजी,
 तुगलक और लोदी वंशोंके बादशाहोंने सन् १२६० से १५२६
 ई० तक वहां पर शासन किया ।*

मुहम्मद गौरी और दिगम्बर मुनि—

इन बादशाहोंके जमानेमें दिगम्बर मुनिगण निर्वाच धर्म-
 प्रचार करते रहे थे, यह बात लैन एवं अन्य श्रोतोंसे स्पष्ट है ।
 गुलाम बादशाहोंके पहलेही दिगम्बर मुनि सुल्तान महमूदका
 ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके थे † । सुल्तान मुहम्मद-
 गौरीके सम्बन्धमें तो यह कहा जाता है कि उसकी बेगमने

* Oxford. pp 109—130

† 'कलकत्तापुराद्वारवर्षावसरे यथाधिराजपरमेश्वर उषन गय-
 त्तिरोमधि महम्मदशाहसहाह सुराशक्तमस्या पूर्वादिक्किरादिमिपातेनाष्टदिश
 वर्षाशक्तान्तेजोमयीवृत्तवीरस्वामिराम् ।' —अर्थात्--"कलकत्तापुर के

दिगम्बरस्य श्रीं दि० मुनिः

७५



स्वर्णसि १००८ मुनि चन्द्रश्रीनिधी मशाल। [पृ० २६६]

[पेन्नक दया का चित्र]

दिग्म्बर आचार्यके वर्जन किये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय दिग्म्बर मुनि अपने प्रभावशालीये कि वे चिन्तनी आत्मकारियोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे ।

गुलाम बादशाहत में दिग्म्बर मुनि—

गुलाम बादशाहतके अन्तमें भी दिग्म्बर मुनियोंका अस्तित्व मिश्रता है। मूलसंघ सेतलपुरमें उन् समय श्रीदुर्लभसेनाचार्य, श्री धरसनाचार्य, श्रीपेण, श्रीलक्ष्मीसेन, श्री सोमसेन प्रभुन मुनिपुंगव आदिवासी पा रहे थे । श्री दुर्लभसेनाचार्यने अरु, कन्नड़, काश्मीर, मैसूर, द्राविड, गौड़, केरल, तैलंग, उड़ आदि देशोंमें विद्वान् करके विधर्मों आचार्योंको हननमें किया था +। इसी समयमें ओकायासंघमें मुनिश्रेष्ठ विजयचन्द्र तथा मुनि यशोवर्ति, अमरवर्ति, महासेन, कुन्दर्षीनि, त्रिभुवनचन्द्र, रामसेन आदि हुये प्रनीत होते हैं x ! आखिरमें श्री अकलकचन्द्रजी दिग्म्बर वेदमें सं० १२५० तक रहे थे ।—

अकलकचन्द्रजी मनेज्वा स्वामी एकराजकीसे श्रेष्ठ महम्मद बादशाह क अथ मराठ्ठा की पुरिसे तथा एउ होने से १८ वर्ष की उमरमें से स्वर्ग गय हुए थे अकलीर श्वासी हुए ।

—*ऐतिहास*, भा० १ कि १-१ पृ० ३३

‡ *IA*, Vol XXI p 361 — "Wife of Muhammad Ghori desired to see the chief of the Digambaras"

+ *ऐतिहास*, भा० १ कि १-१ पृ० ३३

x *Ibid*, किता ३ पृ० २८६

+ *ऐतिहास*, पृ० १०

खिलजी, तुग़लक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि—खिलजी, तुग़लक और लोदी बादशाहोंके राज्यकालमें भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे। काष्ठासंघमें श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी माह्वसेन आदि मुनियण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माह्वसेन अथवा महासेनके विषयमें कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अलाउद्दीनसे सम्मान पाया था *। इतिहाससे प्रगटहै कि अलाउद्दीन धर्मकी परवाह कुछ नहीं करता था। बख़र राधा और चेतन नामक ब्राह्मणोंने उसको और भी बरग़्ज़ा रक्खा था। एकदा उन्हीं दोनोंने बादशाहको दिगम्बर मुनियोंके विरुद्ध कहा सुना और उनकी बात मान कर बादशाहने जैनियोंसे अपने शुकको राजदरवारमें उपस्थित करनेके लिये कहा। जैनियोंने निपत कालमें आचार्य माह्वसेनको दिल्लीमें उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिणकी ओर से बर्दा हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगम्बराचार्य—
आचार्य माह्वसेन दिल्लीके बाहर स्मथानमें ध्यानरुद्ध तिष्ठे

* "(The Jam) Acharyas' . . . by their character attainments and scholarship . . . commanded the respect of even Muhammedan Sovereigns like Allauddin and Auranga Padusha (Aurangzeb)."

थे कि वहाँ एक सर्वदेशीय असेत सेठ-पुत्र दारु-कर्मके लिये जाया गया । आचार्य महागुरुने उपचार आत्मने उल्लसत शिर-प्रभाव करने योग-फलसे हूँ कर दिया । इस पर उनकी प्रसन्नता अपने अद्भुत हो गई । बादशाह अलाउद्दीनने भी यह सुना और उसने उन दिव्यगचार्यके दर्शन लिये । बादशाहके राजदरबारमें उनका शोभाचरणी पर्यटन वादियोंने हुआ । जिसमें उनकी विभ्य रही । उन दिन महामैत्र म्यांमने पुनः एकवार म्यांमरकी अखण्ड लडा मान्य वर्षकी गानधानी दिल्लीमें आरंभित कर दी थी । ॥

इन्हीं दिवसगचार्यकी शिष्य परम्परामें विजयसेन, लक्ष्मण, धेरांनसेन, अन्नदीति, कालकीर्ति, धर्मकीर्ति, श्रीरामकीर्ति, कुमारसेन, देवचन्द्र, वरुणदि, यज्ञकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, अक्षकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्बर मुनि हुए थे । इनमें श्रीरामकीर्ति जो विद्वेष प्रत्यात थे ।†

मुस्लाम अलाउद्दीनका अपरनाम मुहम्मदशाह या X। वन (५१० ई० के एक शिवाकेशमें मुनि विद्यानन्दके गुरुपरम्परीग भी आचार्य सिद्धनन्दिका उत्सव-है । वह अड़े नैवादिष्ट थे और उन्हीं दिवसोंके बादशाह महमूद खनिश्वर की सभामें यौद्ध व अम्पोंकी वादमें हराया । यह बात अफन

† पंतिम०, पृ० १, कि० ४ ५० १०६

† Ibid. X Oriental p 130

शिक्षालेखमें है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीनके संबंध में हुआ प्रतिभाषित होता है। +

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बादशाह अलाउद्दीनके निकट दिगम्बर मुनियोंको विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। विश्वाके श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन श्रावककी भी उन्नत अलाउद्दीन करता था † और उसने श्वेताम्बरचार्य्य और रामचन्द्रसूरिको कई भेटे अर्पण की थीं +। सब ध्यान तो यह है कि अलाउद्दीनके निकट धर्मका महत्त्व न कुछ था। उसे अपने राज्यका ही एक मात्र ध्यान था—उसके सामने वह 'शरीरगत' को भी कुछ न समझता था। एक दफा उसने नव-मुस्लिमोंको तोपद्म बना दिया था x। हिन्दुओंके प्रति वह क्यादा उदार नहीं था और जैन लेखकोंने उसे 'वृन्' लिखा है। किन्तु अलाउद्दीनमें 'मनुष्यत्व' था। उसीके बल पर

+ मसौदा, पृ. १२१, 'सुवतान' शब्दके जैनशब्दोंने सुरिकत्व लिखकर बादशाहोंको मुनिराजक प्रकृत किया है।

† वैदिक, भा० १५ पृ० १३२

+ जैय, पृ० १६८

x "He (Alau-uddin) was by nature cruel and implacable, and his only care was the welfare of his kingdom. No consideration for religion (Islam) ever troubled him. He disregarded the provisions of the Law. . . . He now gave commands that the race of "New-Muslims" should be destroyed."—*Tarikh-i-Firozshahi*.
—Eliot. III, p. 205

वह अपनी प्रशंसा प्रसन्न रख सका था और विद्वानोंका सम्मान करनेमें सफल हुआ था । +

तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनि गण—

सं० १५६२ में ग्वालिपरमें महामुनि श्री शुण्णकीर्तिजी प्रसिद्ध थे। मेदपाद् देशमें सं० १५३६ में श्री मुनि रामसेनजी के प्रशिष्य मुनि सोमकीर्ति जो विद्यमानमें और उन्होंने 'पञ्चोत्तर चरित्' की रचना की थी। श्री 'मद्रवाहु चरित्' के कर्ता मुनि गणनन्दिनी इसी समय हुए थे। वस्तुतः इस समय अनेक मुनिजन अपने दिगम्बर धर्ममें इस देशमें विचर रहे थे ।

लोदी सिकन्दर निजामखां और दिगं-
वराचार्य विशालकीर्ति—लोदी खानदानमें सिकन्दर
(निजामखां) बादशाह सन् १५२६ में राजसिंहासन पर बैठा

+ मुसलमान खतखानों ने कसब की किसी कथा दी थी । नाव, कसबा यदि पेंडर समझे थे । समझे गयेमें सत्यवर्तिनमें पाठ्यरचना थी । विद्वान् कसबी हुए थे । ('About the patronage of the Sal-
tan among learned and great men (continued))

—Eliot, III. 206

* मैट्रि, भा० १२ पृ० २१३

† 'बर्हमदाय्यागरे परो श्रीपरसेन ई गण प्रतीशुषायायैक भीमा
रुष श्रीससेवेति । निर्मित सभ्य शिष्येषु श्री सजोपर शक्ति श्री सोमकीर्ति
मुनिवर्तिनोदशापोपतावुनाकोपद् विरुजंरुषैर्द्विपिणितानासक' संसत्तपेति
पंधव्या दीपकम्दिनका दिवसे शीतसम्पद् चरे ३ इत्यदि ४"

था। हमसमयके गुरु श्री विश्वाम्बरकीर्तिमी लगभग एसी समय हुये थे। उनके विषयमें एक सिद्धांतकेसे पाया जाता है कि उन्होंने सिद्धन्दर बादशाहके समक्ष वाद किया था + । यह वाद लांदो सिद्धन्दके दरबारमें हुआ प्रगीत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्बर मुनि तत्कमी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहोंके दरबारमें भी पहुँच जाते थे।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्बर साधुओंको देखा था—जैनसाहित्यके उपरोक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन आंतसे भी होती है। विदेशी यात्रियोंके कथन से यह स्पष्ट है कि गुह्यामसे लांदो राज्यकाख तक दिगम्बर जैनमुनि इस देशमें विहार और धर्मप्रचार करते रहे थे। देखिये तेरहवीं शताब्दिमें यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Marco Polo) जब भारतमें आया तो उसे ये दिगम्बर साधु मिले। उनके विषयमें यह लिखता है कि x ।—

‡ Oxford., p. 180 + मसैल्ला, पृ० १६१ व १२२

x "Some Yogis went stark naked, because, as they said, they had come naked into the world and denied nothing that was of this world. Moreover, they declared, "we have no sin of the flesh to be conscious of, and, therefore, we are not ashamed of our nakedness, any more than you are to show your hand or face. You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness."

—Yule's Marco Polo, II, 366 & HARL, p. 364

“कतिपय बोधी मादरकात् की घूमते थे, क्योंकि, जैसे उन्होंने कहा, वे इस दुनियाँमें नीचे आये हैं और उन्हें इस दुनियाँकी कोई चीज चाहिये नहीं। कात्कर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्बन्धी किसी भी पापका भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी किसी वृथा पर ध्यान नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुँह और हाथ नीचे रखने में नहीं शरमाते हो। तुम किन्हीं शरीरके पापोंका भान है, वह अच्छा करते हो कि अपने मारे अपनी कल्पना बंद करते हो।”

इस प्रकारकी मान्यता दिवम्बर मुनियोगी है। मार्को पोलोका समानम उन्होंने इसका उल्लेख किया है। वह उनके संसर्गमें आये हुए लोगोंमें अहिंसा धर्मकी वास्तवता प्रकट करता है। यहां तक कि वह साप-सर्पों तक श्रद्धा नहीं करते थे। सूँठे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में अहिंसात्मकता होना मानते थे। ईश्वर का गुजरालके जैनो में इन मान्यताओंका होना प्रकट करते हैं *। किन्तु वस्तुतः गुजरालही क्या प्रत्येक देशका जैनी इन मान्यताओंका अनु-

* 'Marco Polo also noticed the customs, which the orthodox Jains community of Gujarat maintains to the present day. They do not kill an animal on any account, not even a fly or a flea, or a louse, or anything in fact that has life, for they say, these have all souls and it would be sin to do so.' (Yule's Marco polo, II 265)
—HARI, p. 265

यायी मिलेगा । अतः इसमें सन्देह नहीं कि भाकों पोलोको जो नौ-साधु मिले थे, वह कैलसाधु ही थे ।

अलबेरूनीके आधारपर रशीदुद्दीन नामक मुख्यमान लेखकने लिखा है कि "मल्लाबारके निवासी सबही श्रमण हैं और मूर्तियोंकी पूजा करते हैं । समुद्र किनारेके सिम्बूर, फक्कूर, मल्लूर, दिब्रि, रुवर्स, जङ्गलि और कुलम नामक नगरों और देशोंके निवासीको 'श्रमण' हैं ÷ ।" यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि 'श्रमण' नामके भी विषयात् हैं । अतः कहना होया कि रशीदुद्दीनके अरुधर मल्लाबार आदि देशोंके निवासी दिगम्बर जैन हो थे, और तब उनमें दिगम्बर मुनिधोंका होना स्वाभाविक है ।

मुग़ल साम्राज्य में दिगम्बर मुनि—

अपरान्त सन् १५२६ से १७६१ ई० तक भारत पर मुग़ल और

+ Rashi-uddin from Al-Biruni writes : "The whole country (of Malabar produces the pan..... The people are all Samanis and worship idols. Of the cities of the shores the first is Sundabar, the Faknar, then the country of Manjarur, then the country of Hih, then the country of Sadarsa, then Jangli, then Kulam. The men of all these countries are Samanis' —Elhot Vol I p 68

इसका मतलब है कि इन भागोंको बौद्ध विद्या है, किन्तु इस समय इन्हीं भागोंमें बौद्धोंका होना असम्भव है । अतः शब्द बौद्धिकोंके अधिकृत दिगम्बर साधुओं के लिये भी व्याप्य होना है ।

सुवर्णशैले गङ्गाशैले राज्य किया था। उनके समयमें ही दिगम्बर मुनिबोध वाहुदय था। पाटोडी (अवधु) के वि० सं० १५५ की प्रशस्तिसे प्रगट है कि उस समय धीचन्द्र नामक मुनि विद्यमानर्ये। नगज बोधके जैनमंदिरमें विराट्प्रतिम एक शय्येत्। गुट्टकके पत्र १६३ पर दो दूर प्रशस्तिसे निर्गन्ध्याचार्य श्री मालिकवन्त्रदेवका अस्तित्व सं० १६११ में प्रमाणित है + । "अथविभंगी"की प्रशस्तिमें सं० १६०५ मुनि सेमधीर्निजा हांता विद्ध है x । मन्त्रमुच बादशाह शावर, हुमायूँ और शेर्शाहके समयमें दिगम्बर मुनिबोध विद्वान् सारे देशमें हांता था। मालूम हांता है कि उन्हींका प्रभाव मन्त्रमुच शय्येष्टों पर पडा था, जिसके फलरूप वे चक्र रहने लगे थे। मन्त्रमुच बादशाह शाहजहाँके समयमें वे एक घड़ी संख्यामें मौजूद थे + । शेर्शाहके समयमें दिगम्बर मुनिबोध का निर्वाच विद्वान् हांता था, यह माल शेर्शाहके अफसर

‡ Oxford, p. 151

‡ "श्री महाशय्येष्टादि विभाग श्रीकर्ममुनि ।" -- शैले, सं० १२ पृष्ठ ५२ ५३ ५६

+ "सं० १६११ पर मु० १.....द्वारा.....श० श्रीविद्यादि मन्त्रे श्री कल्याणदीर्नि कर्णहे श्रीगणेशार्थ.....शय्येष्टादिशय्येष्टादि मन्त्रे श्रीकल्याणदीर्नि कर्णहे....." -- शैले, सं० १२ पृष्ठ ५६ ५७ ५८

x "Ox १६०५ सं०शय्येष्टादि मन्त्रे श्रीकल्याणदीर्नि कर्णहे श्रीकल्याणदीर्नि कर्णहे....." -- शैले, सं० १२ पृष्ठ ५६ ५७ ५८

+ Bernier pt. 315-318

यहिक मुहम्मद आपसीके प्रसिद्ध हिन्दीकाल्य 'फसावत'
(१।६०) के निम्नलिखित पद्यसे स्पष्ट है :-

"कोई प्रह्वचारन पण्य लाये ।
कोई सुदिगंबर आजा खाने ॥"

अक्षर और दिगम्बर मुनि—यद्यथा
अक्षर जलालुद्दीन स्वयं जैनोका पण्य भक्तथा और यदि
दय बस समयके ईसाई लेखकोंके कथनको मान्यतादे तो कह
सकतेहैं कि यह जैनधर्ममें दीक्षित हांगवाथा । निस्सन्देह अ-
ताम्बराचार्य औहीरविजयसूरि आदिष्व प्रभाव वसपर विशेष
पड़ाथा । इस दयामें अक्षर दिगम्बर साधुओंका विरोधी
नहीं होसकता । यहिक अहुतफूझकने 'आरिन-द-अक्षरी'
भाग ३ पृष्ठ ८७ में बतका वस्तुसे स्पष्ट शब्दोंमें कियाहै और
लिखाहै कि वे नंगे रहते है ।

बैराट का दि० संघ—बैराटनगरमें उस समय
दिगंबर मुनियोंका संघ विद्यमानथा । वहाँ पर साक्षात् मोक्ष-
मार्गकी प्रकृतिके लिये यथाज्ञात जिनहिन्दु शोभा पारहाथा ।
यह नगर बड़ा समृद्धशाहीया और वसपर अक्षर शा-
सन करताथा । कवि राममल्लने 'काशीसहित' की रचना

* पादरी फिरो (Firoze) ने लिखाहै कि अक्षर जैन-
धर्मावलम्बी है [He (Akbar) follows the sect of the
Jains]

यहाँके जैनमन्दिरमें कीर्ती ५ । उन्होंने अपने 'अम्बुस्वामी चरित्' में लिखाहै कि मट्टानियाबोसके निवासी साहु डोहा अब तीर्थयात्रा करते हुये मधुग पहुँचे तो उन्होंने वहाँपर ५१४ दिगम्बर मुनियोंके सम्राधि मूचरु प्राचीन स्तूपोंको प्रीर्णशीर्ष दशमें देखा । उन्होंने उनका उद्धार कर दिया और उन की प्राणिष्टा शुभनिधि-चारको चतुर्विधिसंघ—(१) मुनि (२) शार्पिक (३) आषक (४) आविका—एकत्र करने कहाई थी + । इन उल्लेखोंमें स्पष्टहै कि बादशाह अकबरके राज्यमें अनेक दिगम्बर मुनि विद्यमानथे और उनका निर्वाध विहार सारे देशमें होनाथा ।

बादशाह औरङ्गजेबने दिगम्बर मुनिका सम्मान कियाथा—अकबरके बाद मुगल शासकानमें शिवाजी शासक हुये उन मधकंठी शासनकालमें दिगम्बर

‡ "दीर्" वर्ष ३५० व "करी" ५० ११—

"योगद्वितीर्णिलोकेतवितमथ, बादशाहस्यदीर्घा,
 मृदु प्रदाल्दनात् निवृत्तमृदुगता मरुतपादम्वराऽम्बर ।
 सेनासो गतिपादिः दत्तपरद्वार दत्तार्थिभ्यामपुत्रैः-
 कांक्षद्भोक्तव्य भावः समूर्ति नवम्याह्यवेत्तमात्र ॥६३॥
 श्रेय) यमोन्गयो जगति विरपलेऽपानि सन्तानवर्षी
 साधरौगम्भारामो वसप द्द अथाव्यतनवाद्दु नयः ।
 इन्दैनेस्वा नमोन्नु विरपवर्गवर्ष शोम्भरभ्रभताश-
 द्यमिाब्द'माने वरिपविरद्विवा वरुते वाचवामं. ०६३०"

+ अनेकत्र, का० १ पृ० १३६-१४१ "चतुर्विधमहासंघं समाहूय-
 प्रवीचरा ।"

मुनियोंका अस्तित्व मिलता है । औरकृष्णके सदृश कहर बाद-
शाहकी भी दिगम्बर मुनियोंने प्रभावित कर लिया था, यहाँ तक
कि शौर्यश्रेयसे इनका सम्मान किया था x । उस समयके
किन्हीं मुनि महाराजोंका अस्तित्व इस प्रकार है ।

तत्कालीन दिगम्बर मुनि—दिगम्बर मुनि
श्रीशङ्करचन्द्रजी सं० १६६७ में विद्यमान थे । उनके एकशिष्य
ने 'महात्मर कथा' की रचना की थी + । सं० १६८० का किला
दुआ एक गुटका दि० जैन पंचायती बड़ा मन्दिर मैनपुरी के
श्रीशङ्करदासों विराजमान है । उसमें श्री दिगंबर मुनि महेश्वर-
सागरका दर्शक इस समयमें मिलता है ७ । संवत् १७१६ में
महाशय्यावाद्में मुनि श्री शैलपसेने "शतकर्मकी १४८ महा-

x ESIJ, pt. II p. 182. जैन कवियोंने शौर्यश्रेयकी वसुधा
ही की है :-

"शौर्यश्रेय कवीको वन, पायो कविजन पथ समान ।

पञ्चार्थभ्रम जगमें भरो, फेरत जानि वधि की भयो ॥

जाने वन पथ सुख पाय, कये कथा हृष निज गुन गाय ॥"

--कवि विनोदीशाय ।

+ शैल, पु० १४३

७ "सुत मुनि माहिदसेनि नदिशो, मनस अचरतीवासु ।"

—शैल श्लोच गीत-

"मुनि माहिदसेनि सुत सिंह ज्ञान अथ पछार ।"

—दयालु पंचायती-नेमिपुत्र

"मुनि माहिदसेन हई निशि प्रथमा रासो ।

पानि अण्डकनि बोध अथ पनौरी दासो ॥" —श्यामी श्लो

निर्योका विचार" चर्चा ग्रंथ लिखायो † । सं० १६०३ में गुप्त
 देवेन्द्रकीर्तिक का अन्तिम नृ देवविदेशमें लिखता है । वहाँ पर
 दिगम्बर मुनिपौत्रा प्राचीन अयास था † । सं० १७५७ में
 गुप्तकपुरमें मुनि श्री गुप्तसागर और यशःकीर्ति थे । उनके
 शिष्यने महाभारता ध्वजराजका विशेष सहायता कीथी † । कवि
 साजसर्वादिने औरदूबेधकं राज्यमें 'अज्ञानपुराण' की रचनाकी
 थी । वसने कदासद्वर्ग श्री अर्जुन, भावसेन, सदाशुकीर्ति,
 गुणधीर्नि, यशःकीर्ति, जिनचन्द्र, अतकीर्ति आदि दिगम्बर
 मुनिपौत्रा पना खल्ला है × । सं० १७६६ में कवि कुशुल-
 दामजी ने एक मुनि देवेन्द्रकीर्तिकी का इत्येव विद्या है † ।

† "भारत १०१६ वरें कालुग मुनि १२ वीने लिखत मुनि श्री
 वैशव साधनम् ।"

* "देवदेवराज नाम् सार" "गुप्तसद्व भविता मुनिं विभव
 वरान्द्वय । यतो यथे निवीत गुप्तका लिनि इह इन्वृत् ।

गुप्तसद्व मुनिराद निराश्रयं अमर्षि कर्तुंस्त्रियस वितीत य
 मुनिरा यशःकीर्ति । देवेन्द्रकीर्ति कर्तुं विद्यथारि सदा विरै । कदासीमुदास
 वन्दिता सदा विन् गुप्त कर्ति गौरै ।
 सदागर्ते विद्याभिते खेस मुकुट विविगानि ।" —"वपुराण भाष

— "तन्मन्त्रवये संजाले तास्वान गुप्तसागर । ययवी संव संजाली
 यत-वर्तिवर्तयु निः" † —"वैश्या. १० २५६

× "वेदिक, १२-१६४ "धीमन्त्रीकायासुविद्यु विगवाक्यपारि-
 ययुते ।"

‡ "भट्टराज वद लोचै कास—मुनि देवेन्द्रकीर्ति वद तास ।"
 —"कालुगवद अयास

मुनि चर्मकम्प मुनि विरखसेन, मुनि श्रीमूषकाक्ष भी इसी समय पता चलता है +। खान्दलरः यदि जैन साहित्य और मूर्ति शिल्पीका औरभी परिशोधन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगणका परिचय उस समयमें मिलेगा।

आगरमें तब दिगम्बर मुनि—कविचर बनारसीदास जी बाबूशाह शाहजहाँके कृपापाश्र्वोंमें से थे। उन के सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक बार तब कविचर आगरमें से थे तब वहाँ पर दो नए मुनियोंका आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन-सम्बन्धके लिये आते आते थे। कविचर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियोंकी परीक्षाकी थी X। इस घटनेसे उस समय आगरमें दिगम्बर मुनियोंका निर्वाच विहार हुआ प्रकट है।

श्रीच-यात्री डा० बर्नियर और दिगंबर

साधु—धिवेशी विद्वानोंकी छावनीकी एक वक्तव्यकी पोषक है। बाबूशाह शाहजहाँ और औरङ्गजेबके शासनकालमें फ्रांस से एक यात्री डा० बर्नियर (Dr. Bernier) नामक आया

+ श्री मूलसंवेदमाखीये तबे चत्वारकार कर्णेदिसये । आग्नीन्सु-
केनप्रयद्योतु नीन्दः सवर्षकागी मुनि चर्मकम्प ॥” —श्रीनिवसहस्रनाम् ०

X श्री कालसंवेद विषयानुसन्धेदन्वये श्री मुनि विरखसेन ।

विश्वामित्रैः मुनिराट् वसूव श्रीमूषयो जदि नखेन्द्रसिद्ध ॥”

—पंचमहात्म्यक अट०

था । यह सारे भारतमें घूमा था और उसका समागम विच-
रवान् मुनियोंके भी हुआ था । उनके विषयमें यह लिखता
है कि :-

“मुझे अक्सर साधारणतः किसी गाँवके राहगीरों, उन
नड़े कुकीरोंके समूह मिलते थे, जो जंगलोंमें भयावह थे । उसी
देशमें मैंने उन्हें सादा ज्ञान गढ़ा बड़े बड़े शहरोंमें चलते
दिनते देखाया । मर्द, औरत और बड़कियाँ उनकी और वैसे
ही देखतेथे जैसेकि कोई साधु उस हमारे देशकी मन्त्रियोंके ही
करनिष्कलता है जब हम लोग देखतेहैं । औरते अक्सर उनके
बिन्ने पढ़ी विषयमें शिक्षा मिली थीं । उनका विश्वास था कि
वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्योंसे अधिक शोकावान
और धर्मिणा हैं ।”

इयानिबन्ध छात्रि अन्य विदेशियोंके भी उन दिग्गज
मुनियोंके इसी रूपमें देखा था । इस प्रकार एन उदाहरणोंसे

“I have often met, generally in the territory
of some Rajp, bands of these naked fakirs, hideous
to behold” “In this time I have seen them shame-
lessly, walk stark naked, through a large town, men,
women and girls looking at them without any more
emotion than may be excited when a hermit passes
through our streets. Females would often bring them
alms with much devotion, doubtless believing that
they were holy personages, more chaste and discreet
than other men.” —Bernier, p. 317

यह स्पष्ट है कि मुख्तयमान बावसाहोंने भारतकी एक प्राचीन प्रथा, कि साधु नद्रे रहें और नद्रे ही सर्वत्र विहारकरें, को सम्माननीय दृष्टिसे देखा था । यहां तक कि अतिपय दिग्गजर जैनाचार्योंका उन्होंने खूब आदर सत्कार किया था । तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदासजी भी अपने 'सर्वांगयोग' नामक ग्रन्थमें इन मुनियोंका उल्लेख निम्नशब्दों में करते हैं + 1—

“केचित्त कर्म स्थापदि जैना, केश कुंचार करदि अति फैना ।”

केवलुं चन किया दिग्गजर मुनियोंका एक खास मूल-गुणहै, यह लिखाही जा चुका है । इससे तथा सं० १८७० में हुये कवि साक्षीजीके निम्न उद्धरणसे तत्कालीन दिग्गजर मुनियोंका अपने मूलगुणोंको पालन करनेमें पूर्वतः दृष्टचिन्त रहना प्रमट है 1—

“घारें दिग्गजर रूप भूप सब पद कों परसैं;
दिये परम वैराग्य मोक्षमार्ग को दरसैं ।
जे भवि सेवें चरण तिन्हें सम्यक् दरसार्थें;
करैं आप कल्याण सुचारुभावत भावैं ॥
पंच महावत धरें धरें शिवसुन्दर नारी;
निब अरुमौ रसतीत परम-पदके सुधिचारी ।
दयलक्य निजधर्म गहैं एतप्रयधारी ॥
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग-वक्तिधारी ॥”

दियम्बरत्न और दि० मुनि



स्वर्णदि १००८ मुनि श्री चान्तकपीठिनी । [पृ० २६७]

ब्रिटिश-शासनकाल में दिगम्बर मुनि ।



"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and We do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interference with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure."

—Queen Victoria †

महागाना विक्टोरियामें अपनी १ नवम्बर सन् १८५८ की घोषणामें यह शान स्पष्ट करती है कि ब्रिटिश-शासनकी दृष्टिक्रियामें प्रत्येक जाति और धर्मके अनुयायीको अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यनाओंको पालन करनेमें पूर्णस्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न करेगा । इस अवस्थामें ब्रिटिश साम्राज्य के अर्न्तगत दिगम्बर मुनियोंको अपना धर्मपूजन करना सुव्यवसाय्य होता चाहिये और वह प्रायः सुखम रहा है ।

गत ब्रिटिश-शासनकालमें हमें कई एक दिगम्बर-मुनियों के होनेका पता चलता है । सन् १८५० में झाका शहरमें श्री

† Royal Proclamation of 1st Nov. 1858

नरसिंह नामक मुनिके अस्तित्वका पता चलता है + । इटावाके आसपास इन्ही समय मुनि विनयसागर व उनके शिष्यगण धर्मप्रचार कर रहेथे । लगभग पचास वर्ष पहले लेखकके पूर्वजोंने एक दिगम्बर मुनि महागजके दर्शन जयपुर रियासतके फागी नामक स्थान पर कियेथे । वह मुनिराज वहाँ पर दक्षिणकी ओरसे विहार करते हुये आयेथे ।

दक्षिण भारतकी गिरि-गुफाओंमें अनेक दिगम्बर मुनि इस समयमें ध्यानध्यानरत रहेहैं । उन सबका ठोक २ पता पालेजा कठिनहै । उनमेंसे कतिपयजो प्रसिद्धिमें आगये वन्हीं के नाम आदि प्रकटहैं । उनमें श्रीचन्द्रकीर्तिजी महाराजका नाम उल्लेखनीयहै । वह संभवतः गुरमंडपाके निवासीथे और जैनधर्ममें तपस्या करतेथे । वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं । उनके विषयमें विशेष परिचय ज्ञात नहींहैक ।

किन्तु उत्तरभारतके लोगोंमें साम्प्रत दिगम्बर मुनि श्रीचन्द्रसागरजीकाही नाम पड़से-पड़क मिलाताहै । वह फल-जन (सतारा) निवासी हुमसुलाहीय एकजी नामक आवकथे । सं० १९६६ में वन्होंने कुम्हवाड़ग्राम (सोलापुर) में दिगंबर

+ "संस्कृत भद्रकाल्य शतक व सतर वस्तु य
वाका सहर सुवामथा, केव धन के मॉदि । जैनधर्मकाक जिद्धा काक शक्ति
सुहाई । '..... वातु शिष्य विनयी विनुव धर्मधंद सुवर्षत । मुनि नर-
सिंह विनेपविधि पुस्तक यह विस्तृत ॥"

--दि० जैन कथा मंदिर का एक बुकका

* दिवै०, वर्ष ६ भाद्र १ पू० २३

मुनि श्री जिनप्यास्वामीके समीप शुकनकके मत बारण किये थे । सं० १६२६ में भातगपात्रनके महोत्सवके समय उन्होंने दियंपर मुनिके महामनोंको बारण करके तल्लमुद्दामें सर्वत्र विहार करना प्रारंभ कर दिया । उनका विहार उत्तरमात्रमें प्रागगतक हुआ प्रतीत होनाहै । †

सन् १६२१ में एक अन्य दिग्गजर मुनि श्री अमन्दसागर भोजा अस्तिाव सद्वपुर (राजपूताना) में निवृत्ताहैं । श्रीशुभम देव केजरियाजीके दर्शन करनेके लिये वह गयेथे, किन्तु कर्मचारियोंने उन्हें जाने नहीं दियाथा । उसपर, उपर्युक्त ज्ञाया ज्ञानकर वह ध्यानमादकर बहो बैठ गयेथे । इस सत्याग्रहके परिणाम-स्वरूप गजपती ओरसे उनके दर्शन करने देनेकी व्यवस्था हुईथी । ‡

किन्तु इसके पहले दक्षिण भारतकी ओरसे श्रीअनन्त-कीर्तिजी महाराजका विहार उत्तरभारतमें हुआथा । वह अताग, कानस आदि शहरोंमें होते हुए शिबिरबोधी बंदना को गयेथे । आखिर अतियर राज्याम्तर्गत मोरेना स्थानमें उनका असाधारण स्वर्गवास साध हुआ पंचमी सं० १६७६ को हुआथा । जब वह ध्यानलीनथे तब किसी भक्तने उनके पास आगधी अंगीठी रखदीथी । उस आगसे वह स्थान ही आल-भई होनथा और उसमें सब अस्वास्थ्य मुक्तिथी और शरीर

† Ibid. p. 18—20

‡ दिवंग, वर्ष १४ अह २-१ पृ० ७

द्वय होगया । इस उपसर्गको उन धीर धीर मुनिजीने सम-
 मावसे सहन कियाथा । उनका जन्म सं० १६४० के लग भग
 विद्वान्कार (कारकज) में हुआथा । वह मोरेनामें संस्कृत और
 सिद्धान्त का अध्यापन करनेकी नियतसे उदरेये, किन्तु अमा-
 न्यवश यह अज्ञात काल-कवलित हुंगये ।

श्री अनन्तकीर्तिजीके अतिरिक्त उस समय दक्षिण-
 भारतमें श्री चन्द्रसागरजी मुनि मशिद्वी, श्रीसन्तकुमारजी
 मुनि और श्रीसिद्धसागरजी मुनि तैरवातके होनेकामी पता
 चलताहै+ । किन्तु पिछले पाँच-छै वर्षमें दिगम्बर मुनिमार्गकी
 विशेष वृद्धि हुईहै और इस समय निम्नलिखित संघ विद्यमान
 है, जिनके मुनिगणका परिचय इस प्रकारहै :-

(१) श्री शान्तिसागरजी का संघ—यह संघ इस
 समय उत्तर भारतमें बहुत प्रसिद्ध है । इसका कारण यह है
 कि उत्तर भारतके कतिपय परिहसतण्य इस संघके साथ हो
 कर सारे भारतवर्षमें भूमे हैं । इस संघने गत चातुर्मास
 भारतकी राजधानी दिल्लीमें व्यतीत किया था । उस समय
 इस संघमें दिगम्बर-मुद्राको धारण किये हुये सात मुनिगण
 और कई ब्रह्मक-ब्रह्मचारी थे । दिगम्बर साधुओंमें श्रीशान्ति-
 सागर ही मुख्य हैं । सं० १६२८ में उनका जन्म बेरगाम जिले
 के देनापुर-भोज नामक ग्राममें हुआ था । शान्तिसागरजी को
 तब जोग सात गोंबा पाठोक्त करते थे । उनकी नौ वर्षकी

+ दिलौ, विशेषतः धीर लि० सं० १४६३

आधुनिक एक पांच वर्षकी कन्याके साथ उनका प्यार हुआ था। और इस घटनाके ७ महीने बाद ही वह बाल-पत्नी मरण कर गई थी। समय बह बराबर ब्रह्मचर्यका अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य-भावमें मग्न रहने लगा। जब वह अठारह वर्षके थे, तब एक मुनिगणके निकटसे ब्रह्मचारी पदको उन्होंने ग्रहण किया था। स० १६६६ में उत्तरप्रान्तमें विराजमान दिगम्बर मुनि श्री देवेन्द्रकीर्तिजीके निकट उन्होंने जुल्लक का वन ग्रहण किया था। इस घटनाके चारवर्ष बाद संवत् १६७६ में कुंभोजके निकट बाहुचलि नामक पहाड़ी पर स्थित श्री दिवाकर मुनिब्रह्मकीर्तिस्वामीके निकट उन्होंने पैरकपद धारण किया था। स० १६७६में बंगालमें पंचकल्याणक-महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गयेथे। तिस समय शैवालकहवाणक महोत्सव सम्पन्न हो रहा था, उस समय उन्होंने भोगोके निर्ग्रथ मुनि महात्माके निकट मुनिजीवा ग्रहणकी शीघ्र। तबसे वह बराबर एकान्तमें ध्यान और तपका अभ्यास करते रहेथे। उस समय वह एक दासे मयम्बीथे। उनकी धान्त मनोकृति और योगविद्याने उत्तर भारतके विद्वानोंका ध्यान उगड़ी ओर आकृष्ट किया। कई पंडित उनकी संगतिमें रहने लगे। अन्त में उनके शिष्य कई उदासीन भावक हो गये, जिनमें से कतिपय दिगम्बर मुनि और पैरक-जुल्लकके ब्रह्मचर्य पालन करने लगे। इस प्रकार शिष्य-समूहसे वेष्टित होने पर उन्हें 'आचार्य' पद

से सुशोभित किया गया और फिर यन्त्रोंके अग्निद्व संकेत वा नी
 राम पूर्णचन्द्र औदरीने एक यात्रा-व्यय सारे भारतके तीर्थोंकी
 घन्नाकेलिये निकालनेका विचार किया । तदनुसार आचार्य
 शान्तिसागरकी अध्यक्षतामेंयह एक तीर्थयात्राके लिये विकल
 पड़ा । महाराष्ट्र के सांगली-मिर्जळ आदि जिल्लामतोंमें जब यह
 सङ्घ पहुँचा था तब वहाँके राजाश्राने उसका अच्छा स्वागत
 किया था । निजाम सरकारने भी एक नाम दुरुम निकाल
 कर इस सङ्घको अपने राज्यमें कुशलपूर्वक विहार कर जाने
 दिया था । मोपल्ल राज्यमें डोकन वह संघ मजबूत होता
 हुआ श्री शिखरजी करवगी सन् १६२७ में पहुँचा था । वहाँ
 पर बड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था । शिखरजी से यह
 संघ फरवी, जवळपुर, जखनठ, कामपुर, झंसी, आगरा,
 धौलपुर, मथुरा, पुरीगोजाबाद, पटा, हाथरस, अलीगढ़, दिल्ली-
 नापुर, मुसफ्फरनगर आदि शहरोंमें होता हुआ दिल्ली पहुँचा
 था । दिल्लीमें वर्षा-योग पूरा करके अब यह संघ अजमेरकी
 ओर विहार कर रहा है और उसमें वे साधुगण मौजूद हैं :—

(१) श्री शान्तिसागरकी आचार्य (२) मुनि चंद्रमागर
 (३) मुनि श्रुतसागर (४) मुनि वीरसागर (५) मुनि नमिसागर
 (६) मुनि ज्ञानसागर ।

(२) दूसरा संघ श्री सूर्यसागर जी महाराजका है, जो
 अपनी साधुगी और धार्मिकताके लिये प्रसिद्ध है । सूर्यमें

इस संबंध का विद्यमान चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय
 : इस संबंधमें मुनि सूर्यसागरजी के अतिथिक मुनि अत्रितसागर
 जी, मुनि चर्मसागर जी और ब्राह्मणारी भगवानदास जी थे।
 सूर्यमें भय इस संबंध का विहार बड़ी और हो रहा है। मुनि
 सूर्यसागरजी पृथ्वी दृष्टान्त और हवागंगासागरके नामसे प्रसिद्ध
 थे। वह पोरबंदर जलिके भास्वराश्रम निवासी थावक थे।
 मुनि शान्तिसागर जी ज्ञानके उपवेद्य सं निरूप्य साधु
 हुये थे।

(२) नोस्ता संबंध मुनि शान्तिसागरजी ज्ञानों का है,
 जिसका वह चातुर्मास ईदमें हुआ था। तब इस संबंधमें
 मुनि प्रसन्नसागर जी, प्र० फलसागर जी और प्र० लक्ष्मी-
 चंद जी थे। मुनि शान्तिसागरजी एकत्रमें पाल करनेके
 कारण प्रसिद्ध हैं। वह ज्ञानी (कैपुर) निवासी दशा-द्वन्द्व
 ज्ञानिके गुरु हैं। भाउव छुफ्त १४ सं० १९३६ को उन्होंने
 दिग्भ्रम-शेष चारण किया था। उन्होंने सुखिया (धर्मसागर)
 के उद्युक्त कूरसिद्ध जी मध्य सं जैनधर्ममें दीक्षित करके एक
 आदर्श-कार्य किया है।

(४) मुनि आदिसागर जी के चौथे संबंधने उद्घाटने
 : विद्यमान वर्ष पूर्ण की थी। इस समय इसके साथ मुनि मरिच-
 सागरजी व सुल्लक श्रीसिद्ध जी थे।

(५) यह चातुर्मासमें श्री मनीन्द्रसागर जी का पांचवां
 संबंध मांडवी (सूरत) में मौजूद रहा था। उनके साथ श्री

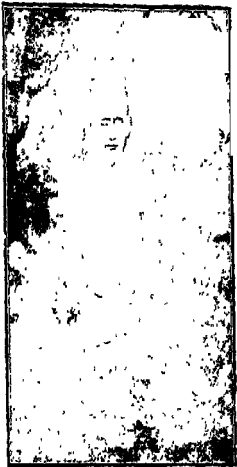
वेवेन्द्रसागरजी तथा विजयसागरजी ये । मुनीन्द्रसागर जी
हजितपुर निवासी और परवार जातिके हैं । उनकी आयु
अधिक नहीं है । वह थी शिपिन्जी आदि तीर्थोंकी चम्दना
कर चुके हैं ।

(३) दुहा संघ श्री मुनि पायसागरजी का है, जो
दक्षिण-भारतकी ओर टी रहा है ।

इनके अतिरिक्त मुनि सागसागरजी (सैराबाद), मुनि
आनन्दसागरजी आदि दिग्म्बर साधुपण एकत्रमें ज्ञान-
ध्यानका अभ्यास करते हैं । दक्षिण-भारतमें उनकी संख्या
अधिक है । ये सबही दिग्म्बर मुनि अपने प्राच्य-वेपमें मारे
देशमें विहार करके धर्मप्रचार करते हैं । ब्रिटिश भारत और
रियासतोंमें ये बेरोकटोक घूमे हैं, किन्तु पतञ्जल काठियावाड़
के कमिश्नरने अज्ञानतासे मुनीन्द्रसागरजीके संघ पर कुछ
आदर्शियोंके घेरेमें चलनेकी पाषण्डी लगा दी थी, जिसका
विरोध अखिल भारतीय जैनसमाजने किया था और जिसको
रद्द करानेके लिये एक कमेटीभी बनी थी ।

सब बातों यह है कि ब्रिटिश राजकी नीतिके अनुसार
किसीभी सरकारी कर्मचारीको किसीके धार्मिक मामले में
हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है और भारतीय कानूनकी
रू से भी प्रत्येक सम्प्रदायके मनुष्योंको यह अधिकार है कि
वह किसी अन्य सम्प्रदाय या राज्यके हस्तक्षेप बिना अपने
धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन निर्विघ्न-रूप से करे ।

निगम्यत्स श्री दि० मुनि



श्री १००८ आचार्य सान्निभागत श्री (वृत्त १४६)
[वर्तमान विचारधारा मुनि]

दिग्गज्जैन मुनियोंका मन्त्रयोग कोई नई बात नहीं है। प्राचीनकालमें जैनधर्ममें उसकी मान्यता सबसे श्राद्ध है और मान्यते मुख्य धर्म तथा राज्योंमें उसका सम्मान किया, यह बात पूर्व-गुप्तोंके अवलोकनमें स्पष्ट है। इस अवस्थामें दुनियाकी कोईसी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक विश्वासको गेक नहीं सकती। जैन साधुओंका यह अधिभ्युक्ति कि वह सारे बहनोंका स्वाग करे और सुख्योंका यह दृक है कि वे इस नियमको अपने साधुओं द्वारा निर्दिष्ट वाले आनेके लिये व्यवस्था करें; जिसके बिना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभ है।

इस विषयमें ब्रिटिश राजकी नज़रों पर विचार किया जाय तो प्रमट हांश्राट्टिक सिवी कौन्सिल (Privy Council) ने सुबन्दी सम्प्रदायोंके अनुष्योंके लिये अपने धर्मसम्बन्धी हस्तुओंको आम नदकोपर निकालना आवश्यक कर दिया है। निम्न उदाहरण हमाराके प्रमाण हैं। सिवी कौन्सिलने फर्रुखसत बनाम मुहम्मदखानके मुकद्दमेमें नय किया है कि :—

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that they do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the thorough fare or breaches of the public peace, and the worshippers in

a mosque or temple, which abutted on a high-road could not compel processions to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there." (*Manzar Hasan Vs. Mohamud Zaman*, 23 All. Law Journal, 179).

भावार्थ—'प्रत्येक सम्प्रदायके मनुष्य अपने धार्मिक लुलूखोंको ग्राम रास्तोंसे लेजानेके अधिकारीहैं, यद्यत्कि उस से साधारण जनताको गन्तके व्यवधान करनेमें दिक्कत न हो और मस्जिदके इन मूचगाओंको पाबन्दीभी होगई हो जो उससे रास्तेकी रुकावट और अशान्ति न होनेके सिरे स्थित की हों। और किनी मस्जिद या मन्दिरमें, ओगस्तेपर स्थितहो, पूजा करने वाले लोग लुलूख निकालने वालोंको जब कि वह मन्दिर या मस्जिदके पामले निकलें. मात्र इस कारण कि उस समय वहां पूजा होरहीहै उनको लुलूखी पूजाको रन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।'

इस सम्बन्धमें "पारथसार्दी आर्यगर बनाम चिन्नकृष्ण आर्यगर" की नज़ीरभी दृश्यहै। (*Indian Law Report, Madras, Vol. V p. 309*) यद्दम् चेहू बनाम महाभाणीके मुकद्दमेमें वही वस्तु साफ़ शर्तोंमें इससे पहिलेगी स्वीकार किया जा चुका है। (*ILR. VI p. 203*) इस मुकद्दमेके फैसलेमें १८२०६ पर कहा गयाहै कि लुलूखोंके सम्बन्धमें यह बेखतरा चाहिये कि अगर वह धार्मिकहैं और धार्मिक लोगोंका

मशाल क्रिया जाना डरती है, तो एक सम्प्रदायके जुलूमको दूसरे सम्प्रदायके पूज्य-स्थानके परसमें न निरूपते देना उसी तरहकी सम्झौतें जैसेकि जुलूमके निकलनेके बधन उपासना-मन्दिरमें पूजा बन्द कर देना ।

मुकद्दमा सदागोपाचार्य बनाम रामाराव (II, R VI 1)

314) में भी वही तथ्य उल्लिखित करे है । द्वाह्यभद्र का अर्थ (भा० २३ पृ० १८०) पर शिवो कौन्सिलके उच्च महोदयोंने लिखा है कि 'आगतवर्षमें ऐसे जुलूमोंके जितमें मज़हबी रसम अदा की जाती हैं सरेगद निकालनेके अधिकारोंके सम्बन्धमें एक 'मर्दार' कायम करनेकी जरूरत मासूम हानी है, क्योंकि आगतवर्षमें आला अदालतोंके फैसले इस विषयमें एक दूसरे के खिलाफ हैं । मशाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूमको मुनासिब च उरुगी विनयके साथ शाह-शाह-आमसे निकलने का अधिकार है ? मान्य उच्च महोदय इसका फैसला स्वीकृति में करते हैं अर्थात् लोगोंको धार्मिक जुलूम आम-गमनोंसे ज़ेबावे का अधिकार है ।'

मुकद्दमा शूरमिंद बनाम मरुफार ईसरै हिन्द (Al

Law Journal Report, 1921 (7) 159-162) खैरुफ़ा ३० पुनिस-पेकू न० ५ सन् १८६१ में यह मजलोज़ हुआ कि 'कल-तीष'—धर्मव्या वेनेका मसलव 'मर्दार' नहीं है । मजिस्ट्रेट जिलाकी राबत्री कि गले बजावैकी मर्दार मुपरिन्ते-डेन्टपुनिस ने इस अधिकारसे की थी तो उसे इफ़ा ३० पुनिस-पेकू

की ढ से मित्राया कि किसी हथौदार या रस्मके मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तोंपर किये जायें उनको किसी हदतक सीमित करवे । मैं (जल हार्ड कोर्ट) मतिपूट-द्विषाकी रायसे सहमत नहीं हूँ कि शब्द 'व्यवस्था' का भाव हर प्रकारके बाजे की मनाई है । व्यवस्था देनेका अधिकार उसी मामलेमें दिया जाता है जिसका कोई अस्तित्वहो । किसी ऐसे कार्यके लिये जिसका अस्तित्व हो नहीं है, व्यवस्था देनेकी सूचना विच्छिन्न स्वयं है । उदाहरणतः जानेजानेकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें सूचनासे ज्ञाने जानेके अधिकारका अस्तित्व स्वतः अनुमान किया जायगा । उसका अर्थ यह नहीं है कि पुलिस-कर्मचारान किसी व्यक्तिसे उसके घरमें बन्द रखने या उसका ज्ञाना-ज्ञाना रोक देनेके अधिकारी हैं ।

दफा ३१ पुलिस ऐक्टकी ढ से पुलिसको आम रास्तों, सड़कों, गलियों, घाटों आदि पर जाने-जानेके सवही स्थानोंमें शान्ति स्थिर रखनेका अधिकार है । बनारसमें इस अधिकारके अलुखार एक हुजूम आरो किया यथाया कि सास सम्प्रदायके श्लोण याथावाक्यों (पंक्तों) को, जो इस पवित्र नगरकी यात्राके लिये लोगोंका पथ दर्शन करते हैं, रेवेन्जेशन पर जाने की मनाई है । इस मुकदमेमें हार्डकोर्ट इसाथावादके योग्य जब महोदयसे तदवीज्ञ किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखनेके अधिकारोंके बल पर किसी सास सम्प्रदायके लोगों को किसी सास अण्ड पर जानेकी आम मुमानियत करनेका

मुषगिन्डेन्डेष्ट पुत्रिमकां अचिदात् न धा । इत्त तज्जोत्तके
 कात्तव वटोये डां वसुकुट्टुमा मरकात् वनात्त किञ्चननात्तमे
 विदे नयेहे । (H.R. Mahavamsa Vol. 39 p. 131) शान्ति
 सिद्धि ग्दनेध धाय शान्तिमिषोको धर्मो वन्द करनेका
 नहोहे ५ ।

यदी धिगतियां दि० जैन साधुशान्ति भी मम्मथ ग्दती
 हैं । यह चाहे अनेमे निरामे श्रीर चाहे बुद्धमसी उपसमे,
 मरकागे शरुभगोका कतेअहे कि उनके इत्त ह्दको न रोके ।
 दिवम्भ जैन साधुगत मारे विद्विश गान्त श्रीर हेथीरिच-
 मतमे म्दन्वताले वगयर वृत्तले रहेत, यदी कोरे रोक्त रोक्त
 वही हुं श्रीर न इत्त सम्बन्धमे किन्तीका पांर शिकायत हुं ।
 अनपय मरकागे अकमरीका नां यह सुत्त कतेअहे कि वे
 दिवम्भ मुनियोकां अनेध धर्म गान्त करनेमे सहायता पहुँ-
 चाये । गान्तकमे जिननेमी शान्ति वही हुये अहोवे वही कियाः
 इत्तमिते अय इत्तके विद्वत् विद्विश-आमरु कोरमी वहीव करने
 वे शिकायत नहोहे । उनको नां जैनोंका अनेध धर्म निबांध
 गानते नेना ही अचितहे ।

दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान् ।

“मनुष्य मात्रकी शारङ्ग-त्विति दिगम्बर ही है । मुझे
सर्व नगनाथकी प्रिय है ”

—प० गाँधी

संसारके सर्व-श्रेष्ठ पुरुष दिगम्बरत्वको मनुष्यके लिये प्राकृत सुसंगत और आवश्यक समझते हैं । भारतमें दिगम्बरत्वका महत्व प्राचीनकालसे माना जाता रहा है । किन्तु अब आधुनिक-सभ्यताकी लौहस्थली यूरोपमें भी उसको महत्व दिया जा रहा है । प्राचीन यूनान-वासियोंकी तरह जर्मनी, फ्रांस और इङ्ग्लैण्ड आदि देशोंके मनुष्य को रहनेमें स्वास्थ्य और सदाचारकी वृद्धिदुर्लभ मानते हैं । यस्तुतः बात भी यही है । दिगम्बरत्व यदि स्वास्थ्य और सदाचारका पोषक नहो तो सर्वत्र जैसे धर्मप्रवर्तक मोक्ष-मार्गके साधनरूप उसका अपदेशही क्यों देते ? मोक्षको पानेके लिये अन्य आवश्यकताओं के साथ नंगा-तन और नंगा-भन होनाभी एक मुख्य आवश्यकता है । श्रेष्ठ शरीरही धर्म-साधनका मूल है और सदाचार धर्मकी जान है । तथा यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व श्रेष्ठ स्वास्थ्य शरीर और उत्कृष्ट सदाचारका उत्पादक है । अब मछला कहिये वह परम-धर्मकी आराधनाके लिये क्यों न आवश्यक माना जाय ? आधुनिक सम्य-संसार आज इस सत्यको जान गया है और वह सबका मनसावाचाकर्मणा कृतज्ञ है ।

यूरोपमें व्याप्त सिद्धों सभार्ये दिगम्बरत्वके प्रचारके लिये सुनी हुई है, बिनक राज्यों सन्त्य विंग्गन-वेपमें रहने का अन्याय करने है]। पैटलम स्कूल, पोर्टर्स फोर्ड (ईंग्लैण्ड) में बैप्टिस्ट-डाक्टर इड्रिगीयर, सिड्डीक आदि उच्च-शिक्षा प्राप्त महाशुभाव दिग्बर वेपमें गद्या अपेक्षिते हितकर समझते हैं। एम स्कूलके मंत्री थोबर्गोर्ट (Mr N F. Thoburn) कहते हैं कि :-

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open air and will realize its enormous value to health. (Amrita Bazar Patrika, ४-४-३१)

भाव नहीं है कि एक मासके अन्दर नगे रहनेकी प्रथा विशेष उत्तम हो जायगी और महाशुभाव लोगोंको सुखे-मान करके पहननेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अमिन लाभ होना बह तब प्राप्त होगा।

एक प्रकाश संसारमें जो सम्भवा पुत्र रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि 'मनुष्य जातिकी स्वास्थ्य रखनेके लिये शरीरको निरालम्बि देनी पड़ेगी। सप्रता गंधियोंके लियेही केवल एक महात् शीतल नहीं है, परिक स्वस्थ जीवोंके लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। स्थितजरनेडके नगर लेयसन (Leyden) निवासी डॉ० रोलियर (Dr Roller) ने केवल

नगरचिकित्सा द्वाराही अनेक रोगियोंको आरोग्यता प्रदान कर जगतमें हलचल मचा दी है । उनकी चिकित्सा-प्रणालीका मुख्य अङ्ग है स्वच्छ वायु अथवा धूपमें नंगे रहना, नंगे टहलना और नंगे दौड़ना । जगतचिकित्सात् ग्रंथ 'इतसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में नगरताका बड़ा भारी महत्त्व वर्णित है । * वास्तवमें डाक्टरोंका यह कहनाकि जघसे मनुष्य जाति बर्षों के लपेटमें लिपटी है तबसेही सर्दी, जुकाम, छप आदि रोगों का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है । प्राचीन काल में लोग नंगे रहने का महत्त्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे ।

किन्तु दिग्भ्रमरत्व स्वास्थ्यके साथ २ सदाचारका भी पोषक है । इस बातको भी आधुनिक विद्वानोंने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है । इस विषयमें श्री ओलिवर हर्स्ट सा० "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि "अन्ततः अद्य समाज बार्डेविलके पहिले अध्यायके महत्त्वको (जिसमें आदम और हन्नाके नंगे रहनेका जिक्र है) समझने लगी है और नगरताका भय अथवा सूझी कलजा मन से दूर होती आ रही है । कलसने भरमें बीसों पेसी सोसाइटियां कायम हो गई हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नगरा-वस्थामें स्वच्छ वायुका उपयोग करते हुये नाना प्रकारके खेल खेलते हैं । वे लोग नग्न रहना प्राकृतिक, पवित्र और सरल

विगम्यस्त्र और दि० मुनि



श्री १००८ मुनि शक्तिप्रकाश जी कृतम् (पृ० २७१)
[सप्तमः विगम्यस्त्र मुनि]

समझते हैं। शताब्दियों से जिसके द्विपे उद्यम हो रहा था, वह यही पवित्रताका आन्दोलन है। वह पवित्रता कैसी है ? इसको स्वयं इनके निवास-स्थान गेलान्ड (Gelande) के देखनेसे जाना जा सकता है, जबकि वहां सैकड़ों स्त्री-पुरुष, बालक-शालिकार्ये आनन्द-मय स्वाधीनताका उपभोग करते दृष्टि पड़ें ! ऐसे दृश्यके देखनेसे मन पर क्या असर पड़ता है, वह बताया नहीं जा सकता ! जिस प्रकार कोई मैना कुम्हेका आदमी स्नान करके स्वच्छ दिव्यार्द्र दे, ठीक ठसी तरह वह दृश्य सब प्रकारके सूक्ष्म अतर्क्य-विषोसे हृदय दिखाई पड़ेगा। ऐसे पवित्र मानवोंके सामने जो वस्त्रधारों होगा वह लपटको प्राप्त होजावगा। ऐसे आनन्दमय शांता-करण्ये..... ताजी हवा और सूपका जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उसको सर्वसाधारण मच्छी तरह जान सकते हैं, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मीक लाभ होता है, वह विचार के बाहर है। यह क्षान्ति दिनों दिन बढ़ रही है और कमी अवनत नहीं हो सकती। मामलोंकी उत्पत्तिके द्विपे यह सर्वोत्कृष्ट मंड अर्जनी संसारको देगा, जैसे वसने आधेसिक-सिद्धांत उसे अर्पण किया है। वर्षोंमें जो अमी इन सौसाहटियोंकी असा दूर धो उसमें सिन्ध २ नगरोंके ३००० सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित न्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिलके मेम्बरोंने अपनी २ स्त्रियोंके साथ देखा था। उन स्त्रियोंके माथ उसे देखकर बिह्वन्न पड़ल गये। नज़रताका विरोध करने

के लिये कोई हेतु नहीं है, जिसपर वह टिक सके । जो इसका विरोध करता है, वह स्वयं अपने भाषोंकी गन्दगी प्रगट करता है । किन्तु यदि वह इन लोगोंके निवास स्थानको गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा । वह देखेगा कि सैकड़ों स्त्री पुरुषों—माता, पिता और बच्चोंके कैसी पवित्रता प्राप्त करती हैं ।[†]

अतएव पाश्चात्य विद्वानोंकी अनुभव पूर्व गवेषणासे दिगम्बरत्वका महत्त्व स्पष्ट है । दिगम्बरत्व मनुष्यकी आदर्श स्थिति है और वह धर्म मार्गमें उपादेय है, यह पहिलेगी सिद्धा जा चुका है । स्वास्थ्य और सदाचारके पोषक नियमका वैज्ञानिक धर्ममें आदर होना स्वभाविक है । जैनधर्म एक धर्म विधा है और वह दिगम्बरत्वके सिद्धांतका प्रचारक अनादि से रहा है । उसके साधु इस प्राकृतवेपमें शोकधर्मके उत्कृष्ट पातक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहे हैं, जिनके सम्मुख सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्य और सिक्न्दर महान् जैसे शासक नतमस्तक हुये थे और जिन्होंने सदाहो शोकका कल्याण किया, ऐसेही दिगम्बर मुनियोंके संसर्गमें आये हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान्भी आज इन तपोधन दिगम्बर मुनियोंके चरित्रसे अत्यन्त प्रभावित हुये हैं । वे उन्हें राष्ट्रकी बहुमूल्य वस्तु समझते हैं । देखिये साहित्याचार्य श्रीकन्तोमल जी एम० ए० आज उनके विषयमें लिखते हैं कि "मैं जैन नहीं

हैं, पर मुझे जैनसाधुओं और गृहस्थोंसे मिलनेका बहुत अवसर मिला। जैनसाधुओंके विषयमें मैं बिना किसी संकोचके यह सभ्यताहै कि हममें शान्तिही कोई ऐसा साधुहो, जो अपने प्राचीन पवित्र ग्रन्थोंसे सिखाए। मैंनेतो जितने साधु ऐसे बचसे मिलने पर चिन्तनं यही प्रभाव पडा कि वे धर्म, त्याग, अहिंसा तथा सद्गुणोंकी भृतिहैं। उनके मिलकर यही प्रभावता होतीहै” ७। अज्ञानी विद्वान् थीं परदाकान्त सुखोपा-
ध्याय एम० ए० इस विषयमें कहतेहैं :-

“चौदह आन्तरिक और दशवाह्य परिमल परि-
त्याग करकेसे निर्मल्य होतेहैं।..... सब वे अपनी
नतावस्थाको विस्मृत होजातेहैं तबही अवसिन्धुसे बार
हो सकते हैं।.....(उनको) कलावस्था और मन
सुनिष्ठा बनाकर आधीतत्व सम्प्राप्त सिद्ध करतीहै,
क्योंकि मनुष्य आदिम अवस्थामें नश्यते।”

महाराष्ट्रीय विद्वान् श्रीवासुदेव गोविन्द आपटे जी०
एम० ने एक ध्यावधारणमें कहाया कि “जैनग्रन्थोंमें जो पवित्रता
कहा गयाहै वह अत्यन्त अद्भुतहै, इसमें कुकुम्भो शहा श्या
है।” प्रो० डा० जे० ए० राय, एम० ए०, पी० एच० जी०
कहातेहैं कि + :-

“(The Jaina) faith helped towards the for-
mation of good and great character helpful to

* रिपु०, पृ० १३

† जी०, पृ० १३१

‡ जी०, पृ० १०

+ SSLJ pt. II p. 80

the progress of Culture and humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc.”

भावार्थ—“जीवधर्म संस्कृति और मानवसमाज की उन्नतिके लिये अकृष्ट और महान् चरित्रको निर्माद्य करनेमें सहायक रहा है। इस धर्मके आचार्य सदाकी भांति तपश्चरय और आत्मविकासका उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।”

ईसाई मिशनरों ए० ह्यूबोर् सा० ने दिग्म्बर मुनियोंके सम्बन्धमें कहाथा कि :—

“सबसे उच्चपद जोकि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिग्म्बर मुनिका पद है। इस अवस्थामें मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने स्वामके बलसे परमात्माका मानो अंश होजाता है।..... जब मनुष्य निर्वाणो (दिग्म्बर) साधु हांजाताहै तब उसको इस संसारसे कुछ प्रयोजन नहीं रहना और वह पुण्य-पाप, नेकी-बदी को एक ही दृष्टिसे देखताहै—उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होतीहैं। न वह किसीसे राग और न द्वेष करताहै। वह बिना कुछ मालूम किये सर्व प्रकारके उपसर्गोंको सहन कर सकताहै।..... अपने आत्मिक भावोंमें जो भीचाहो उसको क्यों इस संसारकी और उसकी निस्कार क्रियाओंकी चिन्ता होगी !”

एक अन्य महिला मिशनरी भी स्वीडेन्सगने अपने ग्रंथ "हार्ट ऑफ जैनीज्म" में लिखा है कि—

"Being rid of clothes one is also rid of a lot of other worries. no water is needed in which to wash them. Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keep us away from salvation. To obtain it we must forget nakedness. The Jain Nirgranthas have forgot all knowledge of good and evil. Why should they require clothes to hide their nakedness?" (Heart of Jainism, p. 55)

भावार्थ—'बस्त्रों की झुलझुलसे छूटना, इबारों अन्य कंसकटोंसे छूटना है। कपड़े धोनेके लिये एक दिगम्बर वेपीको पानीकी जरूरत नहीं पड़ती। बस्तुतः पारपुरुषका भावही—कमनाका ध्यानही मनुष्यको मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पानेके लिये मनुष्यको तपताका ध्यान भुञ्जाना चाहिये। जैन निर्ग्रन्थोंने पारपुरुषके भावको मुखा दिया है। सत्ता उन्हें अपनी कमता छियानेके लिये बस्त्रोंकी क्या जरूरत ?'

सन् १८२७ में गद्य कथावस्तुमें दिगम्बर मुनिसंघ पहुँचा तां थी अलफ्रेड जेकबर्गी (Alfred Jacob Shaw) नामक एक ईसाई विद्वान् ने उसके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकोंमें समोदशिखिर पर दिगम्बर मुनियोंके ध्यान करने कायत पढ़ा ज़रूर था लेकिन ऐसे साधुओंको देखनेका

अबसर अजिताश्रममें ही मिला । वहाँ चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्वामें लीन थे । आगतीं जलती हुई जून पर बिनाकिसी ह्लेशके वह ध्यान कर रहेथे । उनसे पूंछा तो उन्होंने कहा कि 'हम परमात्मन्वरूप आत्माके ध्यानमें लीन रहते हैं । हमें बाहरी दुनियांकी बातों और दुःख-सुखसे क्या मतलब' ? यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूँ पर तो भी मैं कहूँगा कि इन साधु-श्रीका सम्मान हर सम्प्रदायके मनुष्योंको करना चाहिये । उन्होंने संसारके सभी सम्बन्धोंको त्याग दिया है और एक मात्र मोक्षकी साधनामें लीन हैं ।[†]

सबसे अधिक इन विद्वानोंका उक्त कथन दिगम्बरगण और दिगम्बर मुनियोंकी सदिमाका स्वतः श्रोतक है । यदि विचार-शील पाठक तनिक इस विषय पर सम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नताके महत्त्व और नग्न साधुओंके स्वरूपको मोक्ष प्राप्तिके लिये आवश्यक जान जायेंगे । कविधर चन्द्रावनके शब्द स्वतः उनके हृदयसे निःसृत पढ़ेंगे :—

“चतुर नग्न मुनि दरसत,

भगत बस्य कर सरसत ।

हुति शुति करि मत हरसत,

तरल नयन अत्र धरसत ॥”

उपसंहार ।

बाबू जन्मोद्धारकायापन्नये विवक्षिता ।

निर्गोहस्तत्र निगम्य पांच त्रिपुरोत्थैः ॥ —परि अष्टापर *

'यह शरीर बाह्य परिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियोंके विषयोंमें अमिताया रचना अन्तरङ्ग परिग्रह है । जो साधु इन दोनों परिग्रहोंमें समत्व-परिग्रह नहीं रखता है, परमार्थसे बड़ी परिग्रह-रहित मिला जाता है । तथा बड़ी निर्बाध बगल या मोक्षमें पहुँचनेके लिये पांच अर्थात् वित्त गमन करनेवाला माना जाता है ।' इसका कारण यह है कि मोक्षमार्गमें विरत रहन करनेकी सामर्थ्य एक मात्र ब्रह्मात्मरूपकारी निर्मन्थ ही के है । जो मनुष्य शरीर-रक्षा और विषय कर्माणोंकी चिन्ताओंमें फँसकर पटाधीन बना हुआ है, मला वह साधु-पदको कैसे धारण कर सकता है ? और अब दिगम्बर-बेषको धारण करके वह साधु नहीं होसकता तो फिर इसका विरत मोक्षमार्ग पर गमन करना अथवा मोक्ष-पद को पानेका कैसे सम्भव है ? इसीलिये विगम्भगत्वको महत्त्व देकर मुमुक्षु शरीर से नास्त तोड़ लेते हैं और बगे तन तथा लये मन होकर आत्म-स्वातंत्र्यको पातेते हैं । शास्त्र-मुमुक्षुके दिखाने काँसा यही एक रात्रमार्ग है और इसका उपदेश प्रायः संसारके सबही मुख्य २ मत प्रवर्तकोंने किया था !

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे जरा इस ग्रन्थ पर विचार

कीजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्वकी महिमा ! जिसका मत्त शरीरमें अटका हुआ है, जो लज्जाके बन्धनमें पड़ा हुआ है और जो साधु-देवको धारण करकेमो साधुताको नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्वके महत्त्वको क्या जाने ? मनकी छवि—साधुकी विशुद्धता—ही मुमुक्षुके क्रिये आत्मोन्नतिके कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्षको दित्ताने वाली है । किन्तु मनकी यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावटमें लक्ष्मी हो सकती है ? वस्त्रादि-परिमलके मोहमें अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्मल-पदको पा सकता है ? इसीलिये संसारके तत्त्ववेत्ताओंने हमेशा दिगम्बरत्वका प्रतिपादन किया है । मगधाव क्षुप्रभदेवके निकटसे प्रचारमें आकर यह महत् सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओंका आत्मकल्याण करता आ रहा है और जब तक मुमुक्षुओंका अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्याण करता रहेगा !

दिगम्बरत्व मनुष्यको रंकले रास बना देता है । उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है । लेकिन दिगम्बरत्व खाकी संया-चन नहीं है । वह मंगे होनेसे कुछ अविड है । नीचे तो पशुमी है, पर उन्हें कोई नहीं पूजता ! इसका कारण है । वह यह कि मानव-जगत जानता है कि पशुओंको अपने शरीर ढकने और विवेकसे काम लेनेकी तमोज्ञ नहीं है । पशुओंने विषय-विचार परमो विजय नहीं पाई है । इसके विपरीत दिगम्बरभुतिके सम्बन्धमें उसकी धारणा है और ठीक धारणा

द्विगम्बरत्त श्रीर दि० मुनि



श्री १००८ मुनि वेमतागर जी
[वर्तमान द्विगम्बर मुनि]

है जैसेकि पूर्ववृत्तोंमें हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि वे साधु जनसे ही वैसे नहीं होते बल्कि उनका प्रथमी विपयविचारोंसे बना है । दिगम्बररथका गहन्य उसके बाह्याभ्यन्तर रूपमें वर्णित है । इस गहन्यको समझकर ही मुमुक्षु दिग्बर वेपका पारथक्य के विचार विचलित होनेका सधून देते हैं और श्लात्मकद्वेष करते हुए नगतके योगोंका हित साधते हैं । श्री श्रुतमदेश दिग्बर मुनिहो वे जिन्होंने संसारको स्रम्पता और धर्मका पाठ पढ़ाया ! श्री सिंहवन्दि आचार्य दिग्बर वेपमे ही विचरे ये जिन्होंने महर्षयर्षा स्थापना कराई और उन स्रियोंको वंश नका धर्मका रक्षक बनाया ! कल्याणकीर्ति आदि सुविगध नहे बाधुही ये जिन्होंने भिषग्दर महात् जैसे विदेशियोंके मनको मोह विधा था और उन्हें भारतमत्त बनाया था ! वे दिग्बर श्रुतिही ये जिन्होंने अपने लक्ष्यदानका सिक्का युता-नियोंके निर्माण अमा दिया था और उन्हें वाचमें निभदस्थान को पहुँचा दिया था ! श्री वादिराज और वासवकाट्ट जैसे दिग्बर मुनि श्री-श्रीरत्नाके आगार ये कि उन्होंने रघुशुभमें जाकर बाह्याशोंका धर्मका स्वरूप समझाया था ! और श्री सयम्भसत्राचार्य दिग्बर साधुही ये जिन्होंने चारं देशमें विहार काके दान-सूर्यको प्रकट किया था ! सम्राट् चन्द्रगुप्त, सम्राट् अशोकवर्ष प्रभृति महिमाशाली नर-रत्न अपनी अनुस राज-सत्तोंका हात मानकर दिग्बर श्रुति हुए थे । वे सब उदाहरण दिग्बरत्व और दिग्बर मुनियोंके महात्

और गौरवको प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियोंके मूलगुणों को संख्या-परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदोंमें ज्ञात-श्रोत दिव्यधर-गौरवका ध्येय है। सचमुच दिगम्बर मुनि, श्रीशिवमतज्ञान वर्मानके शब्दोंमें * "धर्म-कर्मकी भङ्गकारी हुई प्रकाशमान सूरतियाँ हैं। वे विशाल हृदय और अप्याह समुन्दर हैं जिसमें माणवी हितकामनाकी लहरें ज्वार-शोरसे उठती रहती हैं। और सिर्फ मनुष्यही क्यों ! उन्होंने संसारके प्राणी मानवी भलाईके लिये तबका त्याग किया। प्राणोद्दिनाको रोकनेके लिये अपनी हस्तीको मिटा दिया। वे मुनियोंके जवरदस्त रिफार्मर, कृपादस्त उपकारी और बड़े ऊँचे दर्जेके बका तथा प्रचारक हुये हैं। वे हमारे राष्ट्रीय इतिहासके कामती रत्न हैं। इनमें त्याग, वैराग्य और धर्मका कमाज—सब कुछ मिश्रता है। वे 'जिन' हैं, जिन्होंने मोहमायाका और मन और कायाको जीत लिया। साधुओंकी नम्रता देखकर महा क्यों नाक-भौं सकोइते हो ? उनके भावोंको क्यों नहीं देखते ? सिद्धांत यह है कि आत्माको शारीरिक बन्धनसे और ताउल्लूकताकी पोषिमसे आज़ाद करके विहङ्गुल नंगा करलिया जाय, जिससे उसका निजरूप देखनेमें आवे।" यह बजड़ है इन साधुओंके साहिरदारोंके रसोरिवाजसे परे रहने की ! यह ऐशकी बात क्या है ? ईश्वर-कुटोमें रहने वालों को अपना जैसा आदमी समझ जाय, तो यह गृहणी है या नहीं ? इस-लिये आसो सब मिस्रकर राष्ट्र और लोकके फ़थाणके लिये स्पष्ट घोषणा करो और कविधर वृन्दाधनकी तानमें तान मिला कर फहो —

'सत्वपन्थ निर्धम दिगम्बर !'

परिशिष्ट ।

तुर्किसतान के मुसलमानों में तम्बूल आदि को इन्होंने देखा था, यह बात पहले लिखी जा चुकी है। मिच तुर्की गार्नेट की पुस्तक "Mysticism & Magic in Turkey" के सम्बन्ध से प्रकट है कि "सैय्यद मा० ने एक जेठ तुर्की के एक और मास्टर की बातें कही थीं जो यथार्थ और कह दिया कि वह किसी का बनाया नहीं। इस घटना से ४० दिन तक तो कहीं सा० उस गुप्त संदेश को छुपाये रहे; किन्तु फिर उसको दिल में छुपाये रखना असंभव जानकर वह अगल को भाग गये (पृ० ११०)"। इन उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद सा० ने राजे-मारफत अर्थात् योग की बातें बताई थीं, जिनको बाद में सूफी दरवेशों ने अन्ततः बनाया था। इन दरवेशों में 'अबालुद्दीन' और 'अन्दाल' श्रेणीके फकीर विद्वज्ज नहो रहते हैं। मि. जे पी. ब्राउन नामक साहसिकों एक दरवेश-मिश्रिते अलिफतकी की त्रिवारतमाह में मिले हुए एक 'अबालुद्दीन' दरवेश का हाल कहा था। उसका नाम अबालुद्दीन फकीर था। उसका शरीर मञ्जोले फुदका था और वह बिल्कुल नंगा (Perfectly naked) था। उसके घाह और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमजोर था। उसकी उम्र लगभग ४०-५० वर्ष की थी (पृ० ३६)। इन दरवेशों के सम्बन्ध में ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं बेरोकटोक श्रमते हैं—कमी अर्द्धनग्न और कमी पूरे नंगे वे होनाते हैं। जितने ही यह अहसुत हीनते हैं उतने ही अधिक पवित्र और मेक वे मिले जाते हैं। (The result of this reputation for sanctity enjoyed by Abdals is that they are allowed to

wander at large over the country, sometimes half-clothed, sometimes completely naked.) वे अपने बाल का प्रयोग सूत्र करते हैं। चर और साधियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में जा रमते हैं। वहीं वनफलों पर मुक़ाबल करते हैं। जंगल के खूबान जानवरों पर वे अपने अन्धकारबल से अधिकार कमा लेते हैं। सायबस्ता तुर्किस्तान में यह तंगे इरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप में तंगे रहने का विचार हिमो दिव बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में इस की खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष अन्त जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे हैं। देखिये, २ फरवरी के "स्टेड्समैन" अज्ञाकार में यह ही बात कही गई है।—

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air at exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and binahed at else where, is now seriously studied as probably the way to a saner morality."—The Statesman, 2.2.32.

भारतवर्ष में अब रहनेका महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में अब नही बात दुहराई जा रही है।

अनुक्रमणिका ।

अकच्छ	...	पृष्ठ ५६	अजित सेनाचार्य	१७६, २५८
अकबर	...	२५०-२५६	अजितप्रसाद वकील	... २२६
अकम्पन गणधर	...	६५	अजितमुनि	... १७६
अकलकण्ठ	...	२४६	अजिताश्रम	... २८६
अकलकण्ठ देव	...	१८५	अजातशत्रु	८७, ६३, १०१
		१८६, १८८, २२३	अर्जुन	... ६७, १४४
अकलीक स्वामी	...	२६३	अज्ञेय (Agnēy I)	११६
अकलीति	...	१७६, २१५	अण्डविक्रमपुर	... १७५
अकिञ्चन	...	५६	अतिथि	... ३०, ५७
अग्निभूति गणधर	...	६४	अथर्ववेद	... १६, ३१, ७७
अद्वैतेश्वर	...	१४५	अथेन्स (Athens)	११७
अङ्ग	...	८३, १२६, २७६	अनामकलीति	२५१, २६०, २६५
अङ्गपूर्वधारी	...	६३	अनगर	... ५७
अभ्युत्तराय राजा	...	१८१	अनन्तकिन	... ८३
अचेलक	...	६, ५३,	अनन्तनाथ	... २९०
		५६, ५७, ६२, ६९, ६३	अनन्त धीर्य	... १५०
अवन्ता	...	२१२	अतुलपुर	... २७५
अजमेर	...	१५१, २२२	अनेकान्त	... १७
अथरिका	...	१८३	अनैमत्तै-पट्टमल्ल	... १६७
अजितसामर	...	२७१	अण्डकृतस (Ousakrta)	१११

अंबनेरी	...	२२२	अरव	...	३४, ३७,
अपरिग्रही	...	५८	१५३, १७४, २४४, २४६, २४८		
अपोलोवमल	...	११७	अरमोनिवा	...	४१
अफगानिस्तान	...	२४४	अरस्तु		३३
अफरोका	...	२४३	अरिए-नेमि	...	७६, ८०
अशुभ-मला	...	२४४	असलमन्दि शैव	...	२०
अशुभ-कश्चिमगिस्तानी		४१	असैनन्दि	१७३, २१४, २१८	
अशुभ-कश्चल	...	२५८	असलफेड लोकत्व शा		२८५
अश्वत्थ	...	३६	असलवेरुतो	...	२५६
अश्वीनिमिषा	...	२४३	असलफेड वेवर	...	७७
अमयकीर्ति	...	२४६	असलघर	...	२२०, २४०
अमयकुमार	...	८८, ९७	असलाउद्दौन	...	२५०-२५३
अभयदेव वादीन्द्र	...	२२६	असलीगंज	...	२२६
अभयनन्दि	...	१८८	असलीगढ़	...	२७०
अमरसिंह	...	१२६	असलूराजा	...	१५०
अमरीका	...	२४२	असलहार	...	१५, २०
अमलकीर्ति	...	१७१	असलधून	...	२२, २३, २६
अमितगति आचार्य		१४१	असलन्वी	...	६३, १०१
अमोघधर्म सम्राट्	...	१७४,	असलिनोठ-कौशुण्डीवर्मा		१६८
		१७५, १८३, २१५, २८६	अशोक	...	१०८,
अम्बा	...	१३६	१०६, २०४, २०५, २४३		
अयोध्या	...	१३६	असलस्टवेश	...	८६

(२६५)

सङ्ग	...	२०	आनन्दसागर ...	२६४, २७२
असार्ध-श्लोका	...	१४०	आनन्द ...	११५, ११६, १३८,
अदमदावाद	...	३६		१६३, १७३
अहोरात्रि-संब	...	१७०	आर्ष	...
अद्वैत	...	१३६, २०८	आर्य	...
अद्वैत-संज्ञ	...	१४६	आर्यशास्त्र	...
अद्वैत	...	४८, ४९, ६३, ७८	आर्यशास्त्री	...
आकर्मिक	...	२४२	आर्यशास्त्र, कवि	...
आकर्मिक	...	२४२	आर्यशास्त्र	...
आकर्मिक	...	२४२	आर्यशास्त्र	...
आकर्मिक	...	२४२, २६७, २६०	आर्यशास्त्र	...
आकर्मिक	...	११६	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	४५, २६६	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	४७, ४८	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	४०, ४६	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	६३, ६६, ६१,	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	१६४, २०४	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	६४	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	१, २, २००	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	१६, १७, १६, २२५	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	१४, १५, २०	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	२७१	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	६७	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	२०	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	६८, ६४	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	२१७	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	२७५-२७६	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	३६, ४०	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	३७, ४१, ४३, २४४	आर्यशास्त्र	...
आचार्य	...	१२२, १६७	आर्यशास्त्र	...

ईहर	...	२७१	उन्दाग का पुत्र आमरकार	...
ईरान	...	६७, ११२, २४४		१३१-१३२
ईरान	...	२, ४१, ४४, ४७	उपक आजीविक.	...
इग राजकुमार	...	१७६	उपनिषद्	...
इगपेक्षवस्तुटी पाण्ड्यराज	...			२०, २२
		१६५	उपाध्याय	...
इज्जंतकीर्ति मुनि	...	१८३	उपाध्याय प्रो० ए० एन०	१८२
इज्जंत-इज्जंतो,	...	१०७, ११६,	उमास्वामी	...
		१२३, १२७, १२६, १३०,	ऋक्संहिता	...
		१३१, १३५, १४०, १४३,	ऋग्वेद	...
		१४८, १५३, १६७	ऋग्वेद	...
इज्जंत के विष्णुस्यारथ	...		ऋग्वेद	...
		१३५, १४३	ऋग्वेद	...
इत्तर-शुद्ध	...	५०, ५४	ऋग्वेद	...
इत्तराध्ययन-शुद्ध,	...	८	ऋग्वेद	...
इत्तरशुद्ध	...	१७७	ऋग्वेद	...
इत्तर प्राय	...	२१६	ऋग्वेद	...
इत्तराव	...	२७१	ऋग्वेद	...
इत्तराविति	...	२१२	ऋग्वेद	...
इत्तराव	...	८८	ऋग्वेद	...
इत्तरपुर (इत्तरपुर)	१६५, २६७		ऋग्वेद	...
इत्तरसेन मुनि	...	१४४	ऋग्वेद	...

वेत्तक ...	४६, ५०, ६६, २६६	कनीज ...	१२६, १३६
वेत्त-बालोत्त	१२२, १२४, १६५	कन्वार ...	२४२
वेष्टिषा ...	२४२	कान्दगमसुक ...	६७
शोडशवेव ...	१०८	कनिष्क ...	१२०
शोडशपरवर्षी ...	१००	कपिष ...	१३६
शोडीसा ...	२११	कमलकीर्ति ...	२४१
शोडशपरवर्षी ...	२००	कमलाशील बौद्ध ...	१८
श्रीकृष्णवेव ...	३४, ४१-४२, २५६-२६२	करकस्तु ...	१६९, १७४
ककुम ...	२०६	कनच ...	२०२
कदुवाहे ...	१४२	कर्णदिक ...	१४५, १४६, १८७, १८६
कन्दनी ...	२६०	कर्णनाजा ...	१५२
कटवय ...	१०८, २३७	कर्ण-सुवर्ण ...	१३७
कटारीखेडा ...	२०८	कर्म-सन्धासी ...	२७, ९८
कस्तूरमय ...	१३८	करदाटक ...	२३२
कण्ठकि ...	१६४, १६५	कतचूरी ...	१५२, १५२, १७६
कसमराजा ...	११४	कवयकाल ...	१४
कवच ...	६८, १६६, १७०, १७२, २११	कज्जलचंय ...	१६४, १६६
कनकमट मुनि ...	६०, १७५	कृत्तमा ...	४९
कनकचन्द्र ...	२१६	कल्याणकीर्ति ...	२३५, २८६
कनकखेन ...	२१६	कल्याण मुनि ...	१११, ११२, २४३

कलहोले	२२३	काश्मीर	१०१, २४६
कलारमत्युक्त	६७	काष्ठा संघ	२२५,
कलिंग	१०१, १२१, १२२, १२४, १२५, १२६, १२७, १६५, २०५, २४६	कीर्तिवर्मा	२२३
काकतीय वंशी	१६६	कुटिचक	२२, २६
काञ्चीपुर	१२३, १८५- १८८, २३२	कुन्ध-सुन्दर	१७१
कामपुर	२७०	कुणिक	८७
काठियावाड़	२७२	कुरडग्राम	८५
कापालिक	२३	कुरदतपुर	२६१
कामवेश सामन्त	२१८	कुदेष श्रीखर	१२४
कारक	१६२, १७६, २४०	कुन्ति मोज	१४५
कार्य	२४२	कुन्दकीर्ति	२४६
कार्तवीर्य	२२३, २२४	कुन्धकुन्दाचार्य	६, १६, ६१, १६५, १७१, १८३, १८६,
करेपशाखा	२१४	कुन्ध	१८७, १६२, २३१
कसन्त्र	२१७	कुन्धूरयाजा	२१४
कसबङ्ग ग्राम	२१२	कुन्मोज-चाहुयलि	२१७, २६६
कालिदास	१४२, १८६	कुन्म मेला	३६
कावेरीम्मपट्टिनम्	१६५	कुमुदचन्द्राचार्य	१४८
कायतोय	२४६	कुमार कीर्तिदेव	२१७
काशी	८६	कुमार पाल सन्नाट	१४१
			कुमार मूषण	२१६

(२६६)

कुमार सेनाचार्य	२१६, २५०	कोटिखिन्ना	...	१२२	
कुमारी-पर्वत	१९३, १९६, २०२	कोल्हापूर	...	८५, ६४	
कुसल	...	१६५, १०४	कोल्हापूर	...	१०३
कुसुम	...	३७	कोल्हापूर	...	१७३, १०९,
कुसुमवती	...	२२६			१०६, २१७
कुसुमबाग	...	१४६	कोल्हापूर सेठ	...	१६४, १६५
कुसुम	...	२३८	कोल्हापूर	...	६५
कुसुमचन्द्र	...	१२६, २१८	कोल्हापूर	...	८६, ६३, १२२, १३८
कुसुम	...	२०६	कोल्हापूर	...	८६, २०६
कुसुम	कोल्हापूर	...	१००, २२०
कुसुम	...	११२, २०६	कोल्हापूर	...	२०२
कुसुम	...	१७०	कोल्हापूर	...	१२०, २०६
कुसुमचन्द्र विद्यामठ	१३३	कोल्हापूर	...	११६, १२१, १२३,	
कुसुमबाग	...	१००	कोल्हापूर	...	१२४, १२९, २०५
कुसुमवती मदारराजाचर्य	२११	कोल्हापूर	...	२५८, २५०	
कुसुम	...	२४६	कोल्हापूर	...	४२
कुसुम	...	१३६, ४६, ७६	कोल्हापूर	...	१००, २०६
	१३५, १६५, २५६	कोल्हापूर	...	२१२	
कुसुमवती जी	...	२६७	कोल्हापूर	...	१२४
कुसुम	...	६४	कोल्हापूर	...	१६३
कुसुम	...	२२३	कोल्हापूर	...	६५, ६१
कुसुम	...	१०५, १०७	कोल्हापूर	...	६५

बसो	५६	गुडगिरि राजा	...	१२५
बान्धार	२४२	गुडर जैनी	...	१२३
बाल्मी महम्मदा	...	१, ४, २४५		गेल्लैन्द	...	२६१
भ्राह्मेताप्य, प्रो०	२४७	गोआ	...	१६६
भ्राह्मिचर ६म, ६६, १५२, १५३, २१६, २४४, २५२, २६७				गोपलान्दि	...	२३३, २३४
गिरिनार	...	१२३, १४५		गोमहूदेव	...	१८०
गिरिनार	...	१०७, १६६, १८४		गोमहूखर	...	१८८
गुडपल	...	१२०, १४५-१४७, १७३, २५४		गोनाध्याय	...	१५६
गुणकीर्ति महास्तुति	...	१५०, २१४, २५२, २६१		गोएलाचार्य	...	२६०
गुणवन्दि	२०५	गोवर्द्धन श्रुतकेवली	...	१०४
गुणमाराचार्य	...	१७४, १८६		गोविन्द तृतीय	...	१०३
गुणवर्मा राजा	१४०	गोविन्दराय राठौर	...	२१५
गुणनाथ	२६१	गौड़देश	...	१५२, २४६
गुणवी विमल श्री	२२५	गौर्वर-नाम	...	६४
गुणवंश	...	१२७-१२८		गंगा	...	३३
गुरमंथ्या	२६६	गङ्गदेव	...	११७
गुरु	६०	गंगराज सेनापति	१७८, २३०	
गुताम	...	२४८, २४६, २५४		गंगवंश	...	१६७
गुहनन्दि	२११	घोषाक्ष, प्रो० शरदचन्द्र	...	१७
				चक्रेश्वरी	...	१३६
				चतुर्भुजदेव	...	२३३
				चन्द्रकीर्ति	...	२६६

चन्द्रगिरि ...	१०८	चिताम्बूर ...	१८१
चन्द्रगुप्त द्वितीय	१२८, १२९, १३०, १३१	त्रिचौग ...	१५१
चन्द्रगुप्त मौर्या	१०६, १०७, ११०, ११०, ११५, २२८, २३१, २८२, २८६	चीनदेश ...	१३५
चन्द्रमत्तार मुनि "	२६६, २६८, २७०	चेन्नई ...	८५, ८७
चन्द्रिकादेवी राजी	२२४	चेदिराज ...	११२
चन्देल ...	१५०	चेर ...	१६४
चम्पापुर ...	१५२	चोला १३१, १६५, १७३, १६३, १६५	
चाकिराज मी ...	२१५	चांसदेय ...	१३८, १४६, १७१
चासुगुडराय	१७६, १८८, २३३	चीहान ...	१३६, १५१, १५२
चाषतपट्टी ...	२२५	कुड-आवश्यक ...	५०
चानकीर्ति आचार्य	२३६	कुडय ...	११६, १२०
चातुष्य ...	१४५, १६३, १७३, १७६, १८३, १८०	कुडसाह मद्याराज	२६१
चातुष्य जयसिंह	२३३	कुशी (उदुपुर) ...	२७१
चातुष्यराज कोल	२२३	कण्ठे कमलरामा ...	२१७
चातुष्यराज जयकर्ण	२२३	कन्नडपुर ...	२७०
चातुष्यराज मधुनैकमल	२१८	कम्पूचीप प्रकृति ...	१४८
चातुष्यराज विक्रमादित्य ...	२१३, २१४	कम्पूस्वामी	१०३, १०४, २५३
		कण्ठे कीर्ति आचार्य	२२१
		कण्ठे वंशित ...	२१३
		कण्ठे वंश	१७०
		कण्ठे	२५
		कण्ठे	११७

जयमूर्ति ...	२०८	अरुण ...	७७, २०२, २०३
जयसिंह नरेश ...	१६०	कौंसी ...	१५१, २७०
जन्मसुद्दीन रुमी ...	३६	अन्नवगपादन	३२०, २६७, २७१
जयचक्रवर्ति ...	२२६, २३०	द्वारविषय ...	२६३
जावासोपनिषद्	१६, २४, ७८	टोडरमल जो ...	१७, ७८
जितशत्रु ...	१२२, १४०	टोडर माह ...	२५६
जिन (जिनेन्द्र) ६, ८०, १५७, १५८		ठाकुर कूरसिंह मुखिया	२७१
जिनचन्द्र ...	२३५, २६१	ठाणसुद्ध ...	५७
जिबदास षष्ठी ...	१८३	डापजिनेस (Diapyses)	
जिनप्यास्वामी ...	२६७		११२, २४३
जिनकिर्ती ...	६०	डेगो-न्यूज़ ...	४
जिनसेन १७०, १७४, १७५, १८६		डुगोई ...	२८४
जिन शासन ...	१३	डाका ...	२६५
जितीमदेश ...	२३३	दूँडारिदेश ...	२६१
जीवंधर ...	८८, १६२	दुपस्वी ...	३२, ३३, ६०
जीवसिद्धि ...	१०२, १५६	तलकाड ...	१७२
जूनामह ...	१२०	तलशिमा ...	११०, ११६, १२०
जैकोषी, मो० ...	२०, ८६	तर्ण ...	२४२
जैवधरी ...	२३६	ताम्रसिद्धि ...	१०४, १३७
जैनाचार्य ...	८, १३, १५, १८	तामिळ १६३-१६६, १६७, २००	
जोगी ...	३४, ३५	तिथिय ...	८४
जर्मनी ...	२७८, २८०, २८१	तिम्मराज ...	२४०

विमूर्त छंद ...	२३७	वाडाबंध ...	५८, १७, १२४
विचमकूडलूनरसीपुट ...	२३२	वामनचिद्वि ...	२३४
वीर्यद्वार ...	३१, ७८, ७६, ८०,	वारणसिन्धो ...	४१
८२, ८३, ८४, ८६, ८६, १२१, १३१,		द्राविड ...	७५, १३८, १४१,
१६२, २०६, २०६, २२७, २४१		१६४, १६५, १८८, २०२, २४६	
तुल्लिकाख्य ...	६५	दिगम्बर ...	६०
तुगुलक ...	२४८, २५०	दिगम्बरख ...	१, २, ३, ४, ६,
तुवाल ...	२४१	७, ६, १३, १४, १५, १६, २०,	
तूरियातीन ...	८२, २३, २६, ३०	२१, २६, ३०, ३१, ३६, ३३,	
तूरियातीनोपनिषद् ...	२८	३६, ४०, ४३, ४४, ४७, ४८,	
तेपनी ...	२२४	४४, ५६, ७८, ८७, ९२, ११३,	
तेषानम ...	१६४	१४३, १४४, २७८, २८०, ४८२	
तैलंग ...	२४६	२८६, २८७, २८८, २८६	
तोहकादियम् ...	१६३	दिव्याष्ट ...	३१
वस ...	६५	दिल्ली ...	४१, १४६, २१४, २४२,
दशावसोपनिषद् ...	२६	२५०-२५२, २६०, २७०	
दक्षिण-भाष्य ...	१६८	दिवसम्बा रानी ...	२१७
दशनायक दासीमरस ...	२१७	त्रिशाकर नन्दि ...	२३६
दण्डिन् कवि ...	१५७, २३३	दीघनिकाय ...	८५, ८६, ६२,
दरचेत ...	३६, ४०, ४३, २४८	६३, २०३	
दशमेय ...	७६, १२२	दुर्लभराज ...	२१६
दहीगांध ...	१०६	दुर्लभसेवाचार्य ...	२४६

दुर्बनीत	... १६८, १८८	दोहव	... २०५
दुर्वासा	... ३०	धनदेव	... ६५
दुषकुम्भ	... २१६	धनक्षय कवि	... १४०
देष	... ६५	धनपाल कवि	... १४०, १४१
देषकीर्ति तार्किक चक्रवर्ती	... २२८, २२६	धनमित्र	... ६४
		धन्वकुमार	... ८८
देषगढ़	... १४०, १५१, २२०	धर्म	... ६, १२, १४, १८, २०,
देषगढ़ के मुनि धर्मोदिआदि			११६, १३०, १३६
:	२२१	धर्मचन्द्र	... १५१, २२६, २६२
देषगिरि	... २११	धर्मभूषण	... १७६
देषगन्धि	... १८७	धर्म स्त्री	... २२१
देषमति	... २३१	धर्मसागर	... २७१
देषराय राजा	... १७६	धर्मसेन	... २६१
देषसुरि श्वेताम्बरचार्य	१४६	धरसेनाचार्य	... १६६, २४६
देषसेन	... २१६	धवल	... ६५
देषेश्वकीर्ति	... १८३,	धारानगरी	... १४०
	२६०, २६६	धात्रीबाहन राजा	... १५२
देषेश्वर मुनि	... २१५	ध्रुवसेन	... ११७
देषेश्वरसागर	... २७२	धूर्जटि	... २३२, २३४
देषधर्मा कादम्ब	... २११	धौलपुर	... २७०
देषीवगण	... २३४	नग्न	... ३१, ७५, ८०
देषीवक धावक	... १८७	नग्नत्व	... १, २, ५, १०, १३

नन्द ...	१०१, १०२, १०३, १०६,	नारद पन्थात्रकोपनिषद् ...	
	११०, ११५, २०२		१४, २४, २६
नन्दवर्द्धन ...	१०९	नारद ...	२४२, २४४
नन्दवास्त कैफियत ...	१६८	नागपत्र ...	२६
नन्दिपेठ ...	८६	नासक ...	६३
नन्दिसंघ ...	१८८, १९०	नासक ...	१४४
नमिसागर ...	२७०	नालदिवार ...	१६६, १६७
नमकीर्ति ...	२२६	नासन्द ...	६२
नयनान्दि ...	१४३, २१५	निगोद ...	१२
नयरसेन ...	२५१	नितिकव्ये ...	२१४
नर्मदा ...	८१	निवाध ...	३०
नरसिंह गंगराज ...	१७५	निर्ग्रन्थ ...	१०, २४, ३१, ६१-
नरसिंह मुनि ...	२६६		६६, ७८, ७९, ८२, ८३,
नरसिंह होयसात ...	१७६		८६, ९०, ९२, ९५, ९६,
नरेन्द्रकीर्ति ...	२२०		१०६, ११६, १२०, १२५,
नहयान ...	१२०		१२८, १३१, १३२, १३५-
नक्षत्र ...	११७		१३८, १७०, १९४, १९६,
नागदेव ...	२१०		२०४, २०७, २१२, २२५,
नाथमती ...	२२८		२२६, २४५, २७१, २८२
नागवंशी ...	२०८	निर्ग्रन्थ नासपुत्र	६६, ६७, ६३
नागासाधु ...	३६	निर्ग्राम ...	२७०
नामि या नामिराय ...	१४, ३१	निरावार ...	६६

निखेस	...	६१	पद्मलादेवी	...	२१४
निखक	...	६०	पद्मसीभावक	...	२१६
निखिलकार (कारकल)	...	२६८	पद्मावत	...	२५८
नेपाल	...	८६, २४६	पद्माचती रानी	...	२२७
नेमिचन्द्र-नेमिचन्द्राचार्य	...	१४२, १५०, १७६, १८१, १८८, २१५, २९४	पनिचव्वेराजकुमारी	...	१७६
नेमिदेश	...	२२०	परमहंस	...	१५, २०, २२, २३, २४, २६, ३०, ३३, ३४, ३५, ४८
नेमिनाथ	...	८२	परमहंसोपनिषद्	...	१८, २४
पञ्चतंत्र	...	१५७	परमार वंश	...	१४०, १४४
पञ्च पद्माङ्गी	...	१०२	परमूरके साचार्य	...	२१२
पञ्चाव	...	११६, ११८, ११९, १३६, २०१, २३२	परवादिमस्त	...	२३६
पटना	...	१५२, २२६	परवार	...	२७२
पदिहार	...	१३६, १५२	परल्लववंश	...	१७१
परद्वारि वेहू राजा	...	१८१	परसेनदी	...	६३
पदिहित महासुमि	...	१८१	पडासपुर	...	१२८, २११
पतञ्जलि	...	१६	प्रत्याख्यान	...	५०, ५३
पद्मनाभकायस्थ	...	१५१	प्रतापसेन	...	२५०
पद्मनन्दि	...	१४६, १५१, २५१	प्रतिक्रमश्च	...	५०, ५३
पद्मपुराण	...	१७, ६५, ८१	प्रतिमा	...	४६
पद्मप्रभ	...	२१५	पृथ्वी	...	६४

(३०७)

पृथ्वीवर्मा ...	२१४	पार्श्वनाथ ...	२४, २१, १०४, १२१,
पृथ्वीराज चौहान	१५१, २२२		१६२, २०२, २०८, २३८
प्रभाचन्द्राचार्य ...	१४२, १६७	पारामार	...
प्रभाचन्द्रदेव	२१४, २३१, २३४	पारामिक	...
प्रभाव	...	पारा	...
प्रयाग	...	पारिजातराज	...
प्रयोग चन्द्रोदय ...	१५८	पारिकेलरी	...
पाषाण	...	पारिजातवास्तु	...
पाटिकपुत्र ...	५, १३०	पारिकान्ति	...
पाटलिपुत्र १०१, १२५, १५७,		पारिजात	...
	२३२	पारिजात	...
पाटोदी ...	२५७	पारिजात	...
पाण्डव	...	पारिजात	...
पाण्डवरेणु ...	२६३	पारिजात	...
पाण्डु	...	पारिजात	...
पाण्डुकाम्य ...	२४५	पारिजात	...
पाण्डवमलय	...	पारिजात	...
पाण्डव	...	पारिजात	...
पाण्डु विष्णु	...	पारिजात	...
पाण्डवगुरु सुनि	...	पारिजात	...
पाण्डव सती	...	पारिजात	...
पाण्डव	...	पारिजात	...

! पदन्तात्रार्थ	...	१४५	बगुदाव	...	२४५
पुष्पमिश्र	...	११५	बहु या बह्माल	...	१०७, १२६,
पुष्पसेन मुनि	...	१८८	१२८, १३७, १५१, १५२, २११		
पुष्कर	...	१६४	बनगड	...	११६
पुन्यपाद्विद्याभगवाय	१६८,		बनवासो	...	१६६, १७०
	१८५, १८६, १८७, १६०		बनारस	...	६३, १३६, १४०,
पुष्पकाश्यप	...	६१	१६६, २००, २३२, २६७		
पुष्पक	...	२५२	पत्तारसोदास कवि		२६२
पेरियपुराणम्	...	१६६	बभ्रुवृत्ति	...	१३६
पेक्षावर	...	१३५	बर्निषर	३४, ४१, २६२, २६३	
पैरैहो	...	२४३, २४४	बर्लिन	...	२८१
पोदनपुर	...	१६१	बल्लभ	...	२४५
पोरवाड	...	२४१	बलदेव	...	२२०
प्रोपधोपवास	...	४६	बल्लनन्दि	...	१४६
प्रोष्ठिष्ठ	...	१०६	बल्लात्कारण	...	२१७, २२३
फतहसागर प्र०	...	२७१	बल्लासराय	...	१७६
फल्लरन	...	२६६	बल्लकौर्ति	...	२१२
फाली (जयपुर)	...	२६६	बभ्रुवृत्त	...	२२
फाणान	...	१३०-१३२	बल्लदत्त	...	१२४
काम्ना	३४, ४१, २६२, २७८		बल्लपुर	...	१३६
फौरोझाबाद	...	२७०	ब्रह्माण्डपुराण	...	६५
बकमीच	...	२३३	ब्रह्मावर्त	...	१५

वारिष्ण	.. ७५, २८०	वेदिकूया	... २७३
वाम्यकवि	... १३४	वयवतित्त्वान्म व्र० ...	२७१
वाश्यायी	... २१२	वदकल	... १८०
वायव	२१६, २४६, २४७, २५७	वदकलद्व	... १८०, २३५
वायवमुनि	... २०५	वदकनियामोच	... २५६
वायवपुत्र	.. २३६, २३५	वदकमेव	.. २०७
वासव	.. १७६, १७७	वदकपुत्र	.. १२६-१३१
वायववचनद्व	२२०, २२६, ०१५	वदकपुत्रके विगमनार्थ	१२४
वायवन्दि मुनि	... , २२५	वदकला	.. ६४
वायवपति	२४, १६१, २१३, २१७	वदक्याद्व	.. १०६, १०७, १६५,
वायवपति व्याकरणार्थ	२१४		२२८, २३१
विक्रम	... १७६, १७७	वदक	... ४५
विजोषिषा	१५१, २२१, २२२	वदकवृत्तिस	.. ७६
विदिया	... २३२	वदकवृत्त	.. ११७, १५५
विदिया	.. २४५, २७२	वदक	... १४, २६, २७
वीरवपुर	.. २२४	वदक	... ३२, १५४
वुट	८३, ८४, ८६, ८८, ८९, ९०,	वदक	... २६६
	९६, १२४, २०३	वदक	... १५, ३१, ७६, ८०
वुदधोर	... ५७	वदकगामो	.. २१६
वुदधिविद्व	... १२३	वदकवर्ष	... २४, २६८, २७५
वेदकव सङ्ग	... २७६	वदकवन्दि मुनि	... २२१, २३६
वेदकगाम	१८२, २२२-२२४, २६८	वदक	... २६१

भाषसेन वैवेक ...	२३६	मधुग ...	१०४, १२०, १२३,
भिक्षुक ...	६६		१२७, १३०, १३६, १४०, १६६
भिक्षुकोपनिषद् ...	२७, २६		२०२, २०६, २०६, २५६, २७०
मीमंसेन ...	१४०	मदनकीर्ति मुनि	१४४-१४५
भूतबलि ...	१२०, १४५	मदनवर्मदेश ...	१५०
भैरवदेवी ...	१८०	मदनसा राजा ...	११६
भोजपरिहार ...	१३६	मद्रविप्र ...	२०६
भोज या भोजरसमा ...	१४०,	मदुरा ...	१६६, १७३, १८८,
	१४२, १४३, २३४		१६५, १६७, २२७
भोपाल ...	२७०	मध्यदेश ...	१३०, १५०
भोसली के निम्नान्ध मुनि	२६६	मन्तरगुह्री ...	१८१
भक्तनकात्र पं०, ...	१७	मनु ...	१४
भक्तसिंहगोपाल ...	६०, ६१	मनेन्द्र ...	११६
भगवदेश ८४, ६२, ६४, १०१,		भगवेषी ...	३२
	११६, १२३, १२६	भक्त ...	७७, २०२-२०३
भण्डिकाचंड ...	६९	भलावार ...	२५६
भजिमनिकाय ...	८५, ८६	भक्तिक मु० जायसी ...	२५८
भक्तिफलशु ...	६५	भक्तिका ...	६३
भक्तिपुर ...	१८०	भक्तिकचर्चन ...	२२३
भक्तिमोक्षलौ १६६, १६९, १६४,		भक्तिसागर ...	२०१
	१६६	भक्तिपेक्षाचार्य ...	१६०
भक्तिसागर वादी ...	१५२	भक्तनी ...	३६

महोत्सव	...	१८३	महोत्सव	...	१७१
महोत्सव गजरी	...	२४८	महोत्सव	...	२१०
महोत्सव सौरी	...	२४८, २४९	महोत्सव	...	३३
महादेव	...	१७	सृष्ट्यर्थमा	...	११८
महाभारत	...	८०	सृष्ट्यर्थमा	...	२१२
महाभारत	...	१४६, १४६, १८०, १८३, २७०	मायानि	...	१७१
महाभारत	...	८३, ८४, ८५, ८६	मायानि	...	२१८, २२६, २३६
महाभारत	...	५०, १४६	मायानि	...	२७१
महाभारत	...	७०	साधुसंघ	...	२५७
महाभारत	...	८३, ८३	साधुसंघ	...	२१८
महाभारत	...	३१	साधुसंघ	...	१६१
महाभारत	३०, ६३, ६३, ७५, ७६, ७७, ८३-८५, ८६, १००, ११६, १५२, १५२, १६०, १६५, २०२, २३१, २४२, २४६, २४३		साधुसंघ	...	१६७
महाभारत	...	१७४, १७५	साधुसंघ	...	१८७
महाभारत	...	१४१,	साधुसंघ	...	१४२
	२४६, २५०, २५१		साधुसंघ	...	१७२, २१५
महाभारत	...	२५१	साधुसंघ	...	२६४
महाभारत	...	२५१	साधुसंघ	...	२६४
महाभारत	...	२५१	साधुसंघ	...	८१, १५६
महाभारत	...	२५१	साधुसंघ	...	२५४, २५६
महाभारत	...	२५१	साधुसंघ	...	१७६, २१८
महाभारत	...	२६१	साधुसंघ	...	१३८, १७१

मालव या मालवा ११८, १२०,	मेदपाट	...	१४६, २५३		
१४०, १४५, १४८, २३२	मेहिककुल	...	२०७		
माहरण	...	७०	मैनपुरी	...	२२६
मिथिलापुरी	...	६५	मैत्रेयतीर्थ	...	२१४
मिरज	...	२६०	मैसोर	...	१७७, १८०
मिथ	...	४५, २४२, २४३	मोरेवा	...	२२७, २६८
मुगुल	...	२५६, २५६	मोहनजोदरो	...	२०१, २०३
मुजफ्फरनगर	...	२७०	मौनीदेव	...	२१४
मुष	...	१४०, १४२	मौर्व्य	...	१०५, १०६, ११५
मुण्डकोपनिपद	...	४६, ७६	मौर्व्यकलाहण	...	६५
मुद्रारक्षित माटक	१०२, १५६		मौर्व्यपुत्र	...	६५
मुनि	...	७०	मौर्व्याल्पदेश	...	६५
मुनीश्वरसागर	...	२७१	यजुर्वेद	...	३०, ७४, ७५, ७८
मुहम्मद	...	३७, ३८, ४३	यति	...	७०, २७७
मुहम्मदशाह	...	२५१	यघन	...	११८, ११६
मूर्तिनाथनगर	...	१६६	यवनश्रुति	...	२४२
मूत्रगुंठ	...	२१६	यशाकीर्ति	...	२४५, २४६, २६१
मूत्रगुण	...	५०, ५४, ६२	यशनन्दि	...	१२६
मूत्रसंघ २१८, २२२, २२३, २३१,			यशोदेवनिर्गुणाचार्य	...	६८
२३३, २४८			यशोधर्मन् राजा	...	१३४
मेगास्थनीज़	...	१०६, १६०	यापनीय	...	१७०, २११, २१७
मेघचन्द्र	...	२३०	याज्ञवल्क्योपनिषद्	२२, १६, ३०	

बुधिष्ठ	...	८४	राडी	...	२१५
यूनान	११०, १११, ११७, २४२,		राधो-शेनव	...	२५०
		२४३, २४४, २४८	रामचन्द्र	७६, ८४, १२२, १६२	
यूरोप	...	२४२, २४८	रामचन्द्राचार्य	...	२१३
वेग्यान	"	२६०	रामचन्द्र धृति	...	२५२
योगी	...	१६, २६, ५४, ७०	रामचन्द्र		२२७
योगीन्द्रदेव	...	७१, २३०	रामसंग	...	२४६, २४३
गृ या गृ	...	१८३, २१४,	रामायण	...	७६, ८०
		२२२, २६७	रायराजा	...	१४७
रुद्रगजमेन	...	२२३	रावण	...	१६२, २४३
रणकेतु राधा	...	१४०	राष्ट्रकूट	१४५, १६३, १७२-२७४,	
रत्नकरगडक भाषकाचार	...			१७६, १८५-१८६	
		४६, ६०	राजस	...	१०२
रत्नकोर्णि	...	१५२, २२५	रुद्रसिंह क्षत्रप	...	१२०
रविचन्द्र	...	२१४	रेड मी	...	२४२
रवीन्द्रदीप	...	२५६	राम	...	११६, २४२
राहस, मि०	...	१७२	गोलियर डा०,	...	२७६
राचमल्ल सत्यवाक्य	१७६, १८८		कसानक	२२५, २५७, २७०, २८५	
राजगृह	२३, ८२, ६२, ६३, ६५,		राज्ञ	...	१६२, २१६,
	१०४, १२७, १३६, १३८, २१०			२४३, २४५, २४६	
राजपूत	...	१३६	ललितकोर्णि	...	२२४, २२५
राजमल्ल कवि	...	२५८	बसिठपुर	...	२७२

कक्षमय	...	१२२	बहादुर	...	१८३
कक्षीचन्द्र	...	२७१	बराहमिदिर	...	१२६, १५७
कक्षीवास	...	१५६	बलुमूर्ति	...	६४
कक्षीमति	...	२३०	बसुविष	...	६५
कक्षीसेव	...	२४६	बाबर	...	१४६
कक्षीश्वर	...	२१३	बातवसन	...	७०
कालघागटगण	...	२१६	बादिदेवसूत्रि	...	५८
कालकस	...	२०५	बादिराज	...	१६०, २३३, २८६
कालकीत कवि	...	२६४	बादीभखिह	...	१८८
कालमचि कवि	...	२६१	बामदेव	...	२६
कालिघात	...	१७६	बामन	...	२०
कालि पुराण	...	३२	बायुपुराण	...	८२
कालिचि	...	७७, ८५, ६७, २०९, २०३	बायुमूर्ति	...	६४
कालपाल राजा	...	१५२	बारामगर	...	१४०, १४८, १५२, १५७
काली	...	२४८, २५०, २५४	बारानगर के आचार्य	...	१४६
कालामिनी राजा	...	२४५	बारिदेव	...	८८
कालदेश	...	६५	बारुषी	...	६४
कालमगधर	...	६४	बासुकी	...	२४२
कालम	...	१६६	बासुदेव	...	१२०
कालाधर	...	२८३	बासुदेव आपटे	...	१२०
कालमार	...	८५, २०६	बिकटोरिया	...	२५५

विक्रमादित्य ...	११६, १७३	विक्रमादित्य होयसाह	२३३
विक्रमसिंह कन्नगादा	६१६	विक्रमसागर ...	२२६, २६६
विक्रमफोर्णि ...	२१६	विपुलाचल ...	१०४, १३९
विक्रमचन्द्र ...	२४६	विमलकीर्ति ...	२२५
विक्रमसेव ...	२१३	विमलचन्द्र ...	२३३
विक्रमनगर ...	१६३, १७६	विमलनाथ ...	१३१
विक्रमपुर ...	१४१	विमलसंत ...	२२५
विक्रममूर्ति ...	२६४	विलांची ...	१७६
विक्रममागा ...	२७२	विलिङ्गमत ...	४
विक्रमसेन ...	२५१	विषसन ...	१७६
विक्रमादित्य ११७, २१७-२१८		विशाखा ...	१०६
विक्रमाश्वी ...	६५	विशाखकीर्ति ...	१४४,
विक्रमदेव व विष्णुवर्द्धन १७०,		१४५, १८०, २२६, २५४	
२३०, २३१		विश्वसेन ...	२६९
विद्यानन्दि ...	१४६,	विष्णु ...	१५, ३२, ८०, ८१
१८६, २४०, २५१		विष्णु भट्ट ...	२३४
विष्णुचक्र ...	८८, १०४	विष्णु पुगाण ...	२०, ६१, ८०
विदेह ...	८७	वीरनन्दि ...	१४६
विष्णुभार ...	१०८, १०६	वीर पाठक्य ...	२४०
विन्ध्य घर्मा ...	१४४	वीर सागर ...	२४०
विन्ध्यचन्द्र ...	१४४	वीरसेन १७०, १८६, २१६, २३६	
विक्रमादित्य ...	१७३	वीरपुत्रराय ...	१८०

बुद्धगर्भ	...	२१६, २१७	शान्तिनाथ	...	२२३
बृहार्थ	...	२४२	शान्तिराजा	...	१४८
बृन्दावन कवि	...	२८६, २८७	शान्ति वर्मा	...	२१२
बृषभाचार्य	...	१६६	शान्तिस्वागर	२६८, २७०, २७१	
बृहदरथ मौर्य	...	११५	शान्तिसेन	...	१४२, २१६
बेङ्गिराज	...	१७३	शान्तिभद्र	...	८८
बेद	...	२०, २१, ३०, ३१, ७५, ८०, १६८	शाहजहाँ	...	४१, १६२
बेणु राजा	...	८१, ८२	शिष	...	१७, ४२, १६७
बेसूर	...	१६२, २४०	शिषकोटि	...	१८७, २३३
बैरदेव	...	१३२, २१०	शिषनमिद	...	२०६
बैराम्यसेन	...	२६०	शिवपालित	...	२०६
बैराट	...	२५८	शिवमित्र राजा	...	२०६
बैशाखी	८५, ८७, ६३, ६७, ६६		शिववत्सलाक्ष वर्मण	...	२६०
बाक	...	११६, १२०	शिवस्वाम्यवर्मा	...	१७१, २३३
बाकटाक	...	१०३	शिष्टनाग वंश	...	१०१, १०३
बाबाजीक	...	८८	शुक्लाचार्य	...	५, ६, २६
बाभू	...	३२	शुक्ल ध्यान	...	१६, ७८
बाभारजुप्राज	...	२१४	शुभाकीर्ति	...	२३१
बाभार देवी	...	१७७, २३१	शुभाचन्द्र	...	१२६, १४०, १४८, २१४, २२३, २२४,
शान्तिस्वीति	...	१४०		...	२२६, २३०, २३१
शान्ति देव	...	१७७	शुभादेव	...	२२०

शुद्धमूर्च्छी	...	२७५	सुतसुनि	...	२२०
शोभासिंह	...	२७५	सुतसागर	...	२७०
शरण	६३, ७१, ७६, ७६, ८२, ८६,		धैरिच विम्वहार	...	८८
	१२७, १६३, १६७, २०१,			६७, १२८, २३३, २३७	
	२४१, २४३, २५६		धैर्याससेन	...	२५१
शबल वैद्यगोत्र	८४, १०८, १६२		शोभ्याह	...	२५७
	१८०, २२७		श्वेतकेतु	...	२४, २६
श्रावक	...	४६, ५०, १२६, २७२	श्वेताम्बर	६३, ६६, ९८, १७५	
श्रावली	...	६७, १२७, १३१,	शोपागिरि राव	...	१७०, १६२,
		१३६, १४०			२६७, २८१
श्रीचन्द्र	...	२५७	सकलकीर्ति	...	२२५
श्री घराचार्य	...	२१५	सकलकम्प	...	१७६, २३०
श्रीपाठ गुरु	...	१६०	सकलसुत	...	१३१
श्री मूरुष	...	२६२	सकलपुराण	...	३२, ८२
श्रीमद्भागवत	...	१५, २०	स्तीकेसन	...	६०, २८५
श्रीमूलमन्डारक	...	२१४	सत्य लोक	...	२९
श्री वरदेव आदि रात्रा	२४०		सूर्य	१०४, १०५, १२०, १३६,	
श्रीवन्देव	...	२३३		२०६, २०८, २२३, २५६	
श्री विजयशिवसुगोत्र वर्मा	६८		सदागोपाचार्य	...	१७१
श्री शिपिर जी	...	२७०, २७२	स्यविर	...	७१
श्रीपेरा	...	२४६	स्यूलमद	...	१०३
शुतकीर्ति	...	२५१	सचकुमार	...	२६८

सम्यस्त	...	७१	सांची	...	१३१
सम्यासोपनिषद्	२१, २२, २८		सातगोंडाशाटीत	...	२६८
समतद	...	१३७	स्थानेश्वर	...	१३६
समिति	...	५०	साधु	...	५५, ७१
समन्तमद्	...	२११-३, २८६	सामारिक	...	५२
सम्प्रति	...	१०६, १४४	सामंमकीर्ति	...	२५३
सम्बन्धर अक्षर	१६७, १६८		सायणाचार्य	...	६५, ७७
सम्मोह विग्रह	...	२८१	साल	...	१६७
सुरमद शरीर	...	४१, ४२	सावित्री	...	२०२
सल्लोचना	...	११२, ११७, १७५, २४५	स्वामी महेश्वर	...	२३३
स्वर्ग लोक	...	२६	साहसदुंग	...	२३३
सदस्यकीर्ति	...	२५१	सिकन्दर निज़ाम लोदी	१५३, २५४	
संकाश	...	१३१	सिकन्दर महान्	१३३, १११, ११२, १४०, २४२, २८२	
संघ	...	२६८, २७०-१	सिद्धबत्तम् कैफियत	...	१६६
संघमी	...	७१	सिद्धराज	...	१४६
संयुक्तनिकाय	...	४२, २०२	सिद्धलापर	...	२३८
संवर्तक	...	२४, २६	सिद्धसेनदिवाकर	१२७-१२८	
संसार	...	७, २, १०, ११, १३, १५	सिद्धार्य	...	८५
साकल	...	११६	सिंधुराज	...	१४१
सांगली	...	२७०	स्विटो कनिष्ठस्योमेस	...	३३
सांख्य	...	२१			

विद्वान्मण्डल ...	२७६	सूर्यवंश	..	१६७	
विद्वान्मणि		सूर्यवागर	...	२७०-२७१	
विद्वान्	..	१६४	सेठ वासीराम	..	२७०
विद्वान्मण्डल	..	१७३-१७६	सेनमण्ड		२७६
विहपुर		१२६	सेनवंश	...	२७७
विह्व सेनापति	...	६६	सेन्ट मैरी	...	४५, २४२
सुभोव	...	८४	सेरिंगका वंश	...	२१५
सुह	..	११५, १२६	सोमदेव सुनि	...	१४२
सुवामण्ड	...	६७	सोमसेन	...	२४६
सुवर्ण	...	६४, ११७	सोमेश्वर राजा	..	१५१, २२२
सुवाम	...	१२४	सोहंशी	...	१४५, १४६
सुन्दरदास कवि	...	२२४	सौमि	..	
सुन्दर सुरि	...	७५	सौराष्ट्र	..	१४६
सुन्दी	...	२१६, २१७	इतारीलाल	...	२७१
सुन्यतिरिक्तर	...	८३	इत्योनामदीपिका	...	१६, १७
सुसमर्थ	...	८५	इषी सहस्र	...	२०५
सुसोमान	...	२४, १५४, २४८	इवीस	...	६८
सुसुम्न	...	१३१, १४०	इदुक्कतो	...	१८०
सुसंश	...	२५४	इम्मीर महापादा	...	१५१
सुरिवाच	...	२५१, २५२	इतिवृत्तपुराण	...	८६, १७४
सुरीपुर	...	१४०	इरिपेख	..	१०५
सुरीविह्व कुलकर्ण	..	२७१	इर्यवर्द्ध	१५३-१५५, १५६	

हरिहर द्वि० ...	१७६	हेमचन्द्र ...	२५१
ह्रस्वा ...	१, २, १८०	हेमांगदेव	२८, १६२
हस्तिनापुर ...	२७०	हैदरअली ...	१८०
हाथरस ...	२७०	होयसाल ...	१७२, १७३, २३६
हाथीसुफा ...	१०२	हण्डक	५६, ५८, ७१-७३, ८०,
हाथीचिकी ...	१६		१०२, १२८, १५६-१५६
हालाख्य माहात्म्य ...	२००	हण्डिय	... १०६
हिन्दू २१, २२, १३६, १५२, १७६		हुन्नक	४६, २६७, २६६
हिमशीतल ...	१८५, १८६,	होमकीर्ति ...	२५१, २५७
	१८८, १३२	विदरसी	... २२
हिमालय ...	१०१	त्रिपिटक	५७
हीरविजयसूत्र ...	२५८	त्रिभुवनकीर्ति	१५१
हुयनसांग ३३, ६६, १३३, १३५,		त्रिमूर्ति मुनीन्द्र ...	२३६
१३६, १३७, १३८, १७१, २४४		त्रिशला	... ८५
हुनायू ...	२५७	हात्	७७, ८५, २०३
हुन्न	... १०६	हाटपुत्र	... ८५
हुविष्क ...	१२०	ज्ञानभूषण ...	१४६
हुमव ...	२६६	ज्ञान वैराग्य सन्धासी	२७, २८
हुमसगढ़ ...	२५४	ज्ञानसन्धासी ...	२७, २८
हुय	... १३३	ज्ञानसागर	२७०, २७२

“श्री चम्यावती जैन पुस्तकमाला” की उपयोगी पुस्तकें

(१) जैनधर्म परिचय—साम्बार्थवर्षथ और जैनधर्म आदि के लेखक, जैनगण्ड के भूतपूर्व सम्पादक पं० अजित-कुमार जी शास्त्री इसके लेखक हैं। पृष्ठ संख्या करीब पचास के हैं। लेखक ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों को इसमें संक्षेप में बतलाया है। जैनधर्म के साधारण धाम के लिये यह बहुत उपयोगी है। मूल्य केवल ७॥

(२) जैनमत नास्तिक मत नहीं है—यह मि० हर्बर्ट वारन के एक अंग्रेजी लेख का अनुवाद है। इसमें जैनधर्मको नास्तिक मतमानने वालों के अत्यन्त आक्षेप का उत्तर लेखक ने बड़ी योग्यता से दिया है। मूल्य केवल ७॥

(३) क्या आर्यसमाजी वेदानुवाची हैं ?—इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतोर्य हैं। इसमें लेखक ने आर्यसमाजियों के अनादि बदायीं के सिद्धांत, मुक्तिसिद्धांत, ईश्वर का निमित्तकारण और सृष्टिकारक व ईश्वरस्वरूप को बड़ी स्पष्टपैति से वेद-विद्वज्ज प्रमायित किया है। पृष्ठ संख्या ४४। कागुज बड़िया। मूल्य केवल ७॥

(४) वेद मीमांसा—यह पं० पुस्तकालाजी हत प्रसिद्ध पुस्तक है। पुस्तकमाला ने इसको प्रचारार्थ पुनः प्रकाशित किया है। मूल्य दूः आने से कम करके केवल २०) रक्का है।

(५) अहिंसा—इसके लेखक पं० कैलासचन्द्र जी शास्त्री धर्माभाषक स्वाहाद् विद्यालय काशी हैं। लेखक ने बड़ी ही योग्यता से जैनधर्म के अहिंसा सिद्धांत को समझते हुए उन आक्षेपों का उत्तर दिया है जोकि विधर्मियोंकी तरफ से जैनियों पर होते हैं। पृ० संख्या ५२। मूल्य केवल ७॥ -

(६) श्रीश्वपभदेवजीकी उत्पत्ति असंभव नहीं है।—

इसके लेखक बा० कामताप्रसाद जैन अलीगंज (एटा) हैं। यह आर्यसमाजियों के "श्रीश्रृंगमयेवजी की उत्पत्ति अमम्भष" प्रकट का उत्तर है। पृष्ठ संख्या ८४; मुख्य १)

(७) वेदसमाख्यान—इसके लेखक पं० राजेश कुमारजी न्यायतीर्थ हैं। लेखकने इस पुस्तकमें, अश्वमेधी से ईश्वर वेदोंको नहीं बना सकता; वेदोंमें असम्भव बातोंका परस्पर विरुद्ध धारों का, अश्वमेधी, हिंसा विधान, मौसमसमय, असम्भव कथन, इतिहास, व्यर्थ प्रार्थनाएँ और ईश्वर का शत्रु पुरुष से प्रदणु आदि कथन हैं; आदि विषयों पर बममोर विवेचन किया है। पृष्ठ संख्या १२४। मुख्य वेद्यक १०

(८) आर्यसमाजियों की गणप्राप्तक—लेखक श्री पं० अनिलकुमार जी, मुल्तान। विषय नामसे प्रकट है। मुख्य १)

(९) सत्यार्थ दर्पण—लेखक पं० अनिलकुमार जी मुल्ताननगर। हमारे यहाँसे यह पुस्तक दूसरी बार आधुनिक परिवर्तन करके ३५० पृष्ठों में ज्ञायी गई है। इसमें सत्यार्थ-प्रकाश के १२ वें समुत्सामका भली प्रकार जड़न किया गया है। प्रचार करने योग्य है। लागतमात्र मुख्य ४।)

(१०) आर्यसमाजके १०० प्रश्नों का उत्तर—लेखक उपरोक्त। विषय नामसे प्रकट है। पृष्ठ संख्या १००। मुख्य ३।)

(११) क्या वेद भगवद्वाणी है?—लेखक—श्रीयुक्त सोहन शर्मा। विषय नाम से प्रकट है। मुख्य १)

(१२) आर्यसमाज की सबल गणप्राप्तक—लेखक श्री पं० अनिलकुमार जी, मुल्तान नगर (पंजाब)। मुख्य १)

(१३) दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि—लेखक श्री बा० कामताप्रसाद जी, अलीगंज (एटा)। मुख्य १)

नोट—इन्के अतिरिक्त आष पुस्तकें भी मेस में छप रही हैं। समाज के श्रीमानों को, चाहिये कि इनका प्रचार देश और विदेश में करें।

—प्रकाशक

